UGC App. No. 64785
Impact Factor: 4.213
ISSN 2348-3857

Research Reinforcement

ISSN 2348-3857

Research Reinforcement

(A Peer Reviewd International Refereed Journal)

रिसर्च रिइन्फोर्समेंट

Volume 6 Issue 1 May 2018 - October 2018

ISSN 2348-3857

Research Reinforcement

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Editor's Desk

Patron

Shri Rajendra Prasad Gupta

RAS (Rtd.), Govt. of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Editor in Chief

Dr. Pankaj Gupta

Assistant Professor, Department of College Education, Govt. of Rajasthan

Editors

Dr. Sanjay Kedia

Assistant Principal, IIERD, Jaipur (Raj.)

Dr. Archana Bansal

Lecturer, Govt. S.S. School, Jaipur (Raj.)

Associate Editors

Dr. Vinod K. Bhardwaj

Assoc. Prof., Dept. of College Edu., Govt. of Raj.

Dr. Shiv Kumar Mishra

Asst. Prof., Govt. P.G. College, Kota (Raj.)

Dr. Jagadeesh Giri

Asst. Prof., University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Ms. Deepshikha Parashar

Asst. Prof., The IIS University, Jaipur (Raj.)

Dr. Shikha Sharma

University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

ISSN 2348-3857

Advisory Board

Prof. Lal Mervin Dharmisiri
Director, NCAS, Colombo, Sri Lanka

Prof. Dr. Mohammad Iqbal
Shah Jalal University of Sci. & Tech., Sylhet, Bangladesh

Prof. B.L. Sukhwal
Wisconsin University, Medison, USA

Prof. Syeda Rozana Rashid
Dhaka University, Bangladesh

Dr. Kedar P. Acharya
UGC, Nepal

Prof. Miroljub Jevtic
University of Belgrade, Belgrade

Prof. P.N. Shastry
Vice Chancellor, Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi

Prof. Kaushal Kishore Mishra
Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

Prof. Uma Gole
Pt. Ravishankar Shukla University, Raipur (Chh.)

Prof. Rajeev Gupta (Rtd.)
University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Prof. Ravindra G. Jayabhaye
Savitrbai Phule Pune University, Pune (Maharashtra)

Prof. K.G. Sharma
University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Prof. P.S. Bhatnagar (Rtd.)
University of Rajsthan, Jaipur (Raj.)

Prof. B.L. Fadia (Rtd.)
JNV University, Jodhpur (Raj.)

Dr. Vimal Prasad Agarwal
Ex-Chairman, RBSE, Ajmer (Raj.)

Prof. M. Pareek (Rtd.)
University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Dr. Inakshi Chaturvedi
University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Prof. S.K. Sharma
Chaudhary Charan Singh University, Meerut (U.P.)

Prof. H.S. Sharma
University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Prof. K.S. Sharma
The IIS University, Jaipur (Raj.)

Prof. B. Srinagesh
Osmania University, Hyderabad (Telangana)

Prof. Archana Purohit
Mata Jijabai Govt. Girls College (Auto.), Indore (M.P.)

Vinay Kumar Sharma
Dean, Faculty of Commerce, UOR, Jaipur (Raj.)

Prof. Virendra Nagarale
SNDT Women University, Pune (MH)

Board of Refrees

Dr. Nandkumar N. Sawant
Principal, Parvatibai Chowgule College, Madgaon (Goa)

Dr. Savita Mishra
Principal, Vidyasagar College of Education, Darjeeling (W.B.)

Dr. Wangshimenla Jamir
Assoc. Prof., Nagaland Central Uni., HQ Lumami (Nagaland)

Dr. Aditi Pednekar
Economics, Jaipur (Raj.)

Dr. Sameena Hameed
Assoc. Prof., SIS, JNU (Delhi)

Dr. Monika Kannan
Head, Geography, Sofia Girls Autonomous College, Ajmer (Raj.)

Dr. Anju Beniwal
Asst. Prof., Sociology, Govt. Meera Girls College, Udaipur (Raj.)

Dr. Iyatta M. Upreti
Principal, Sikkim Govt. College, Rhenok (Sikkim)

Dr. Sherap Bhutia
Asst. Prof., Darjeeling Govt. College, Darjeeling (W.B.)

Dr. Sheenu Jain
Asst. Prof., Jaipuria Institute of Management, Jaipur (Raj.)

Dr. Ibalari Phylla Khongjoh
Asst. Prof., Economics, Synod College, Shillong (Meghalaya)

Dr. Shakti Singh Shekhawat
Asst. Prof., Pol. Sci., Govt. College, Jaipur (Raj.)

Dr. Batskhem Myrboh
Asst. Prof., Pol. Sci., Synod College, Shillong (Meghalaya)

Dr. Ravindra Tailor
Asst. Prof., History, Maulana Azad University, Jodhpur (Raj.)

Virendra Sharma
Asst. Prof., History, Govt. Girls PG College, Ajmer (Raj.)

Dr. Avdhesh Sharma
Asst. Prof., Sanskrit, Govt. Arts College, Chimanpura, Jaipur (Raj.)

Dr. Shivangna Sharma
Assoc. Prof., Sanskrit, Govt. Arts College, Chimanpura, Jaipur (Raj.)

Dr. Vishal Vikram Singh
Vice Principal, Raj. College, Uni. of Rajasthan, Jaipur, (Raj.)

ISSN 2348-3857

Research Reinforcement

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

From the Editor

Dear authors/ readers/ reviewers,

It is my pleasure to welcome you all and wishing you a very happy New Year 2019 in advance.

This Research Reinforcement journal, an initiative, was started to share research works, commenced in the disciplines of social science and humanities. Our focus is to provide platform to young and mature scholars who have been keenly exploring the possibilities to get their research published on one hand, and also to ensure reach upto the pioneer researchers and learners in their respective fields. This journal, which is UGC approved and is moving in its 6th year of its circulation, is attracting academicians from all corners of the country, and even from abroad like Nepal, Sri Lanka and Bangladesh. It is a peer reviewed journal which is academically cooperated by legendary experts from various disciplines as advisor and referees. Research papers and articles from social science and humanities backgrounds are published in this journal. We more prefer the first hand based research and analytical articles in this journal. Besides, we are equally providing space to the research papers based on survey, discussions and reviews.

We expect more scholars to join this platform and make this effort to contribute excellent in academia.

Best Wishes

Dr. Pankaj Gupta

The Editor in chief

ISSN 2348-3857

Research Reinforcement

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Contents

S.No.	Particulars	Page No.
1.	**उच्च शिक्षा, नव उदारवाद : सैद्धांतिक दृष्टिकोण** डॉ. राजेश कुमार जांगिड़ एवं डॉ. अशोक	1
2.	**राजस्थान के प्रजामण्डल आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका** डॉ. संजीव कुमार	8
3.	**इक्कीसवीं सदी : एशियाई देशों की सदी (ब्रिक्स तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेष सन्दर्भ में)** सुरेश चन्द्र काण्डपाल	13
4.	**जलवायु परिवर्तन एवं सतत् पोषणीय विकास** प्रेम सोनवाल	17
5.	**भारत-पाकिस्तान संबंधों में शक्ति असंतुलन और शस्त्र दौड़ की समस्या : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन** रामदास बघेला	22
6.	**भारतीय ग्राम : गांधी व अम्बेडकर विमर्श** डॉ. मोहम्मद कामरान खान	28
7.	**बौद्ध धर्म में धर्मनिरपेक्षता** महेश कुमार दायमा	34
8.	**राष्ट्रीय संदर्भ में नवीन राज्यों की माँग** पूनम अग्रवाल	39
9.	**भारतीय राजनीति में नैतिक मूल्यों का पतन : एक विश्लेषण** डॉ. सुनील महावर	44
10.	**भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक दल तथा धर्म : एक अध्ययन** सुमन शर्मा	48
11.	**मानवाधिकार एवं शोध : राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के सन्दर्भ में अध्ययन** डॉ. अनिल कुमार पारीक	52
12.	**भारत में दलित महिलाओं की मानवाधिकार प्रस्थिति : वर्तमान परिप्रेक्ष्य** चंचल रानी	58

S.No.	Particulars	Page No.
13.	**अफगान समस्या : भारतीय विदेश नीति के परिप्रेक्ष्य में** डॉ. मधु बाला	64
14.	**अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद : लोकतांत्रिक मूल्यों एवं मानव सभ्यता के लिए बड़ी चुनौती** डॉ. धर्मराज शर्मा	69
15.	**ऋग्वैदिक राजतन्त्र - उसकी प्रकृति एवं सीमाएँ** डॉ. कैलाश चन्द शर्मा	74
16.	**इसरो का ऐतिहासिक सफर, उपलब्धियाँ और बदलते परिदृश्य के साथ चुनौतियां** अनिता महला	79
17.	**राजस्थान की सशक्त महिला : एक विकासात्मक अध्ययन (शिक्षा के विशेष सन्दर्भ में)** डॉ. अंजु सुथार	85
18.	**आज का समय और गाँधीवादी कविता** डॉ. विजय कुमार प्रधान	90
19.	**सामाजिक मीडिया : नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन** जय प्रकाश सिंह एवं डॉ. विष्णु कुमार	94
20.	**उत्तर आधुनिकतावादी कहानी का वैचारिक स्वरूप** सीमा सैनी	98
21.	**भारतीय राजव्यवस्था में संसदीय समितियों की प्रासंगिकता : एक विश्लेषण** डॉ. प्रेम सिंह	102
22.	**वर्तमान भारत-चीन सम्बन्ध (डोकलाम के परिप्रेक्ष्य में)** ताहिर अहमद	107
23.	**मानवाधिकार एवं स्त्री विमर्श** डॉ. हरिचरण मीना	111
24.	**डॉ. भीमराव अम्बेडकर के चिन्तन में सामाजिक न्याय की अवधारणा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन** शिप्रा सिंह	115
25.	**लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल का भारत के निर्माण में योगदान** डॉ. हनुमान प्रसाद मीना	120
26.	**अंधविश्वास और चमत्कारों का समाज** डॉ. अर्चना गोदारा	124
27.	**सुशासन एवं सूचना का अधिकार** मुकेश कुमार शर्मा	129
28.	**स्त्री अस्मिता और नासिरा शर्मा** डॉ वंदना बरमेचा	135

Research Reinforcement ❙ A Peer Reviewed International Refereed Journal ❙ ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 ❙ Impact Factor (IIJIF): 4.213 ❙ Vol. 6, Issue 1 ❙ May 2018 - Oct. 2018 ❙ pp. 1-7

उच्च शिक्षा, नव उदारवाद : सैद्धांतिक दृष्टिकोण

Research Reinforcement ISSN 2348-3857

डॉ. राजेश कुमार जांगिड़
सह आचार्य, अर्थशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय जयपुर (राजस्थान)
डॉ. अशोक
सह आचार्य, सामाजिक अध्ययन सेंटर, आर्थिक अध्ययन एवं आयोजन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली

शोध सारांश
नव उदारवाद कुछ ऐसी विशिष्ट पूर्व मान्यताओं पर आधारित है जो सामान्य: शिक्षा के बाजार और खासतौर से उच्च शिक्षा के बाजार पर पूरी तरह लागू नहीं होती है। नवउदारवाद मूलत: एक राजनीतिक वैचारिकी है जो व्यवहार में शासन द्वारा आर्थिक नीतियों के रूप में दिखाई देती है। चूंकि उच्च शिक्षा कुछ हद तक सार्वजनिक वस्तु भी है, यह मेरिट वस्तु भी है, यह उपभोग की वस्तु भी है तथा साथ ही निवेश की वस्तु भी है। उच्च शिक्षा की प्रकृति उपभोग की अन्य वस्तुओं से भिन्न है क्योंकि इससे न केवल व्यक्ति को निजी लाभ मिलते हैं बल्कि इसके सार्वजनिक लाभ भी है।

संकेताक्षर : *नवउदारवाद, उच्च शिक्षा, सार्वजनिक वस्तु, मेरिट वस्तु, उपभोग वस्तु, निवेश वस्तु, वैश्वीकरण, निजीकरण*

उभरती ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्थाएं व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर उच्च शिक्षा के महत्व को रेखांकित करती हैं। आय अर्जन का संबंध औपचारिक शिक्षा के स्तर से जुड़ा हुआ है (बोवेन, 1977)। अध्ययन दर्शाते हैं कि माध्यमिक शिक्षा के बाद की शिक्षा का उच्च वेतन, नौकरी में अधिक गतिशीलता और जीवन की गुणवत्ता के साथ महत्वपूर्ण संबंध होता है (बोवेन, 1977)। देश अपनी आर्थिक नीतियों में उच्च शिक्षा की मुख्य भूमिका पर ध्यान केंद्रित करते हैं। यद्यपि उच्च शिक्षा के विस्तार तथा इसकी बढ़ती लागत के कारण सरकारों की चिंता बनी हुई रहती है। उच्च शिक्षा प्रदान करने की लागत को कम करने की बात को सरकार ध्यान में रखती है लेकिन इसकी गुणवत्ता व मात्रा विस्तार के लिए सदैव बल देने की रही है (स्लॉटर, 2001)। वैश्विक ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्थाओं के मध्य प्रतियोगिता बढ़ने के साथ उच्च शिक्षा गहन छंटनी के अधीन आ गई है (वोठेर्स्पून, 2004)। उच्च शिक्षा के कार्य देशों के अनुसार भिन्न भिन्न है, जो देशों में व्यवस्था का इतिहास, संरचना, शिक्षकों की परंपरागत भूमिका व उत्तरदायित्व एवं अनुभव तथा छात्रों की लगन और अन्य विशेषताओं पर आधारित होती है। यद्यपि देश में उच्च शिक्षा की व्यवस्था देश की विशेषताओं से बंधी हुई है तो भी वैश्विक शक्तियां दुनिया भर में इसकी प्रकृति व उद्देश्य में परिवर्तन ला रही हैं (स्लॉटर, तथा लेस्ली, 1997)। वैश्विक शक्तियां वैश्वीकरण द्वारा उच्च शिक्षा को इसके नामांकन, सार्वभौमिक पहुंच, निजीकरण, वहनीयता, विकेंद्रीकरण और उत्तरदायित्व के रूप में परिवर्तन कर प्रभावित कर रही है।

रोबोटसन (1992) के अनुसार वैश्वीकरण से तात्पर्य वह अवधारणा है जिसने संपूर्ण विश्व को नजदीक ला दिया है तथा विश्व को एक इकाई के रूप में होने की चेतना को गहरा किया है। ब्लूम (2004) कहते हैं कि वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा देश आपस में एकीकृत हुए हैं और इस एकीकरण का माध्यम पूंजी, श्रम, वस्तुओं और विचारों का आदान-प्रदान है। कुछ विद्वान वैश्वीकरण को राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं पर केंद्रित करते हैं तथा कुछ अन्य का मानना है कि वैश्वीकरण सांस्कृतिक और सामाजिक निहितार्थों के लिए महत्वपूर्ण है। वैश्वीकरण के कई पक्ष हैं जिसमें राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रवृतियां भी सम्मिलित हैं (बौमन, 1998)। नवउदारवाद सिद्धांत बाजार की भूमिका पर केंद्रित है तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को कमजोर करता है (फ्रीडमन, 1981)। वैश्वीकरण की इन राजनीतिक और आर्थिक सिद्धांतों की प्रतिक्रिया उच्च शिक्षा के क्षेत्र में देखी जा सकती है। इसके कारण सरकार द्वारा उच्च शिक्षा पर व्यय में कमी, विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में शोध हेतु धन का संकेंद्रण तथा निगम क्षेत्र के साथ संबंधों में विस्तार हुआ है (स्लॉटर एवं लेस्ली)। वैश्वीकरण के कई पहलू हैं लेकिन वैश्वीकरण

का नव उदारवादी दृष्टिकोण आर्थिक व राजनीतिक पहलुओं पर केंद्रित है, और इन पहलुओं नें शिक्षा को सबसे ज्यादा प्रभावित किया है (मोरौ एवं तोर्रेस, 2003)।

वैश्वीकरण के राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं ने उच्च शिक्षा को सर्वाधिक प्रभावित किया है। स्लॉटर तथा लेस्ली (1997) ने वैश्वीकरण की तीन प्रमुख राजनीतिक और आर्थिक सिद्धांतों को रेखांकित किया। इनमें से नव उदारवाद, उदारवाद या पोस्ट कीन्सीयन तथा रेडिकल या पोस्ट मार्क्सिस्ट प्रमुख हैं। इनमें से नव उदारवादी सिद्धांत बाजार की भूमिका पर बल देता हैं तथा कल्याणकारी राज्य के महत्त्व को कम करता हैं। उदारवाद या पोस्ट कीन्सियन दृष्टिकोण राष्ट्र राज्य की अवधारणा पर आधारित है और वह मानता है कि राष्ट्र राज्य तकनीकी विकास, मानव पूंजी निर्माण तथा बाजार को स्वतंत्र करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। इसके विपरीत रेडिकल या पोस्ट मार्क्सिस्ट सिद्धांत के अनुसार दुनिया के विकसित देश तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठन इस तरह की दशाएं दुनिया में बना रहे हैं ताकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्धारा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर श्रम विभाजन को विकसित किया जा सके (चोमस्की 1994)। माध्यमिक शिक्षा के बाद की शिक्षा में वैश्विक आर्थिक बाजार का प्रवेश हो रहा है सेवाओं के व्यापार पर सामान्य समझौता तथा विश्व व्यापार संगठन की चर्चा में शिक्षा के सम्मिलित होने से उच्च शिक्षा एक सार्वजनिक वस्तु की बजाय निजी वस्तु की भूमिका में आ गई है (अलबक, 2004)। इसके कारण वैश्वीकरण के राजनीतिक और आर्थिक प्रतिक्रिया प्रभाव उच्च शिक्षा में देखे जा सकते हैं। इन प्रभावों में उच्च शिक्षा में सरकार द्धारा धन लगाए जाने में कमी, शोध के लिए आरक्षित धन का उपयोग विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों में केंद्रित होना तथा निगम क्षेत्र के साथ संबंधों में विस्तार के विस्तार के रूप में देखा जा सकता है।

नव उदारवाद और उच्च शिक्षा

वैश्वीकरण नवउदारवाद का वाहक है (रोडेज एवं तोर्रेस, 2006)। उच्च शिक्षा पर वैश्वीकरण का प्रभाव नव उदारवाद विचारधारा के द्धारा देखा जा सकता है। उच्च शिक्षा में नव उदारवाद प्रबंधन का संबंध लागत में कमी तथा विश्वविद्यालयों के वाणिज्यीकरण से है (बौमन, 1997)। नव उदारवादी आर्थिक विचारधारा का परिणाम संपूर्ण विश्व में सार्वजनिक सेवाओं के लिए निधियों में कमी के रूप में है। शिक्षा के क्षेत्र में इसका तात्पर्य शिक्षा में सार्वजनिक नियंत्रण को कमजोर होना साथ ही शिक्षा सेवा में निजीकरण को बढ़ावा देना तथा बाजार की शक्तियों पर निर्भरता को बढ़ाना है (बर्मन, 2003 पेज नंबर 253)। वैश्विक स्तर पर उच्च शिक्षा में सार्वजनिक निधियों के कम होने से शिक्षा के संस्थागत व्यवस्था प्रभावित हो रही है। नव उदारवादी यह मानते हैं कि राज्य की तुलना में बाजार अधिक दक्ष है इसलिए जिन वस्तुओं या क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र कार्यरत है उसका निजीकरण किया जाए तथा उस क्षेत्र के लिए बाजार को पूंजी लगाने के लिए स्वतंत्र किया जाए। उच्च शिक्षा में ऐसा करने से यह माना जाता है की उच्च शिक्षा में नवप्रवर्तन होगा तथा धन सृजन अधिकतम होगा। नव उदारवादी विचारधारा व्यक्तिगत आर्थिक विवेकशीलता पर आधारित है तथा यह मानती है कि कमजोर राज्य मजबूत राज्य की तुलना में बेहतर है। जो निजी है वह आवश्यक रूप से अच्छा है तथा जो सार्वजनिक है वह आवश्यक रूप से बुरा है (एप्पल, 2000)। नव उदारवादी विचारधारा में नियमों को कम करने, निजीकरण को बढ़ाने और उदारीकरण करने की नीतियों को प्रोत्साहित करती है। वैश्वीकरण का आधुनिक विकास और नवउदारवाद गहराई से जुड़े हुए हैं। उच्च शिक्षा में निम्न तीन प्रवृतियों में नव-उदारवाद दिखाई देता है। इन तीन प्रवृतियों में निजीकरण, वाणिज्यकरण और निगमीकरण है (केजर, 2004)। उच्च शिक्षा में नव उदारवादी आर्थिक नीतियों की विशेषता पूंजीपतियों तथा तथा निगम क्षेत्र के प्रभाव में वृद्धि के लक्षणों के रूप विद्यमान है। नव उदारवादी विचारधारा का उच्च शिक्षा पर सर्वाधिक नाटकीय प्रभाव शिक्षक की भूमिका और जिम्मेदारियों को प्रभावित करने में प्रकट होता है। निगमीकरण का प्रभाव अंशकालीन शिक्षकों को किराए पर लेने, अनिश्चित अवधि के लिए पूर्ण कालीन शिक्षकों की नियुक्ति, सस्ते तथा लोचशील श्रम आपूर्ति के लिए स्नातक छात्रों की भर्ती आदि के रूप में देखी जा सकती है (एंडरसन, 2002)।

श्रम की लोच शील पूर्ति का व्यवसायिक विचार विश्वविद्यालयों में भी प्रवेश कर गया है। बहुत थोड़ा समूह ऐसे लोगों का होता है जिनको ऊंचा वेतन और लाभ दिए जाते हैं तथा बड़ी संख्या में ठेके पर छात्रों को भर्ती किया जाता है जिनका वेतन भी कम होता है, नियुक्ति असुरक्षित होती है तथा किसी तरह के लाभ नहीं दिए जाते। उच्च शिक्षा में नव उदारवादी प्रवृत्तियों द्धारा छात्रों व संकाय के बीच में अंतक्रिया को कमजोर हुई है (मर्गिन्सन, 2000)। कम से कम लागत पर अधिक से अधिक संख्या में विद्यार्थियों को पढ़ाने तथा मानव पूंजी का विकास करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। मुख्य उद्देश्य लागत को कम करने का रहता है। इस लागत कम करने का एक तरीका जो निजी क्षेत्र अपना रहा है वह यह है कि पूर्णकालिक शिक्षकों की संख्या कम हो तथा अधिक संख्या कम अवधि वाले, विशेषकर कम भुगतान वाले संकायों की भर्ती किया

ISSN 2348-3857

जाना है। शोध संस्थानों में शिक्षकों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि वे बाह्य स्रोतों से वित्त प्राप्त करते हुए शोध कार्य करें। उच्च शिक्षा में इस तरह की वाणिज्यिक पद्धति वाली गतिविधि के बढ़ने का प्रभाव यह हुआ है की शिक्षकों का समय और संसाधन जो छात्रों व शिक्षण पर व्यय होता हो वह कम हो गया है (एंडरसन, 1989) इसके कारण शिक्षण और शिक्षा सेवा का अवमूल्यन हुआ है (मर्गिन्सन, 2002)।

विद्यार्थियों के समूह में विविधता, गैर परंपरागत छात्रों में बढ़ता नामांकन, अंशकालीन शिक्षण तथा प्रथम पीढ़ी के पढ़ने वाले छात्रों को, जिनको शिक्षक के ध्यान की अधिक आवश्यकता होती है पर सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है (रैंडन, 1994)। उच्च शिक्षा पर इस नव उदारवादी विचारधारा का विभिन्न अकादमी क्षेत्रों में असमानता उत्पन्न करने के रूप में प्रभाव हुआ है। विज्ञान, तकनीकी और मेडिकल के क्षेत्र का अधिमूल्यन हुआ है तथा समाज विज्ञान और मानविकी क्षेत्रों का अवमूल्यन हुआ है। नवउदारवाद विचारधारा में विचारकों का मानना है कि नव-उदारवाद से प्रतियोगिता आती है और इस प्रतियोगिता से गुणवत्ता में वृद्धि होती है। नवउदारवादी विचारधारा से मिलने वाले लाभ इसमें निहित मान्यताओं पर आधारित है। जो यह मानता है कि विश्व परिदृश्य में पूर्णता विद्यमान है। जो मानता है कि उपभोक्ता विवेकशील है, उसको चयन की पूरी स्वतंत्रता है। निर्णय करने में आवश्यक सम्पूर्ण सूचना उसे प्राप्त होती है तथा संस्थान उपभोक्ताओं के अभिमान के अनुसार प्रतिक्रिया करते हैं। लेकिन बाजार सीमाओं और राजनीतिक प्रभाव के कारण नव उदारवादी सिद्धांत के ये निष्कर्ष असलियत में रूपांतरित नहीं हुए है। नवउदारवाद के बहुत सारे लाभ जैसे उपभोक्ता सबसे अच्छे उत्पाद का चयन करता है और प्रतियोगिता के कारण गुणवत्ता में सुधार होता है वास्तविकता में परिणित नहीं हुए हैं इसके नकारात्मक दिखाई दे रहे हैं। जैसे, सार्वजनिक क्षेत्र से उच्च शिक्षा में पैसे की कटौती की गई है लेकिन वैकल्पिक स्रोत इतनी तेजी से नहीं बढे हैं। उसके अलावा शीघ्र अधिक लाभ प्रदान करने वाले शिक्षा कार्यक्रम तेजी से बढे हैं और उच्च शिक्षा की निधियां अधिक प्रतिफल संभावना वाले शोध क्षेत्रों में लगी हुई है तथा बजाय स्नातक शिक्षा में निवेश कम हुआ है (कन्दिको, 2010)।

आर्थिक एजेंट प्रतियोगी वातावरण में ही अपना सर्वोत्तम देते हैं (ओल्स्सें आदि, 2014)। नव उदारवादी समाज बाजार सिद्धांतों पर आधारित है। सरकार की उच्च नीतियां निजीकरण और बाजारीकरण से युक्त है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ये नीतियां नव उदारवादी दृष्टिकोण की तरफ जा रही है। नव उदारवादी नीतियां प्रमुख रूप से तीन मान्यताओं पर आधारित है, जो निम्न प्रकार से अभिव्यक्त की जा सकती है। शिक्षा को भी बाजार में उपलब्ध अन्य वस्तुओं की तरह एक वस्तु माना जाता है। विश्वविद्यालयों को एक फर्म (उत्पादक इकाई) माना जाता है। तथा यहाँ माना जाता है कि उच्च शिक्षा में सुधार एवं उत्कृष्टता के लिए उच्च शिक्षा का अन्य वस्तुओं की तरह बाजार का अस्तित्व जरूरी है (चट्टोपाध्याय, 2014)। शिक्षा एक वस्तु नहीं है। यह सम्मानजनक अस्तित्व के लिए आधारभूत है। यह सभी को उपलब्ध होनी चाहिए, जो बाजार के द्वारा संभव नहीं है। शिक्षा व्यक्ति तथा समाज को एक नए ऊंचे स्तर के लिए रूपांतरित करती है (सेन, 2000)। विश्वविद्यालय को एक उत्पादक इकाई (एक फैक्ट्री) की तरह नहीं माना जा सकता। शिक्षा में उत्पादन फलन की अवधारणा लागू करना मुश्किल है। अदा - प्रदा मॉडल, परिभाषित आगत और निर्गत, तकनीकी संबंध तथा कुशलता को शिक्षा तथा विश्वविद्यालय में दक्षता को साकार रूप देने के लिए (बाजार प्रणाली द्वारा) अवधारण संभव नहीं है (मजुमदार, 1983)

यदि शिक्षा के उत्पादन फलन की अवधारणा सही है तो निजी संस्थान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कर सकते थे (चटोपाध्याय, 2012)। शिक्षा की गुणवत्ता एक मशीनीकृत प्रणाली से नहीं मापी जा सकती। यह शिक्षक और विद्यार्थी की प्रेरणा के स्तर पर निर्भर करती है तथा इसकी उपलब्धियां शिक्षक तथा छात्र द्वारा सयुंक्त रूप से किये गए प्रयासों पर निर्भर करती है। शिक्षा के क्षेत्र में सेवा प्रदाता का दृष्टिकोण लागू नहीं किया जा सकता। सामान्यत: यह माना जाता है कि यदि छात्रों की असफलता की दर अधिक है तो शिक्षा की गुणवत्ता ऊंची है (मजुमदार, 1983)। शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षक की कुशलता और उसकी शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता पर निर्भर करती है, जो किसी फैक्ट्री में उत्पादित वस्तु के समकक्ष नहीं है। अच्छे विद्यार्थी व अच्छे शिक्षक सर्वोत्तम संस्थान का चयन करते हैं। शिक्षा में सर्वोत्तम संस्थान को स्थापित करना तकनीक रूप में एक फैक्ट्री स्थापित करने की भांति नहीं है। जिस प्रकार मानव पूँजी का दूसरा प्रतिरूप नहीं बनाया जा सकता उसी प्रकार अच्छे शिक्षा संस्थान का दूसरा प्रतिरूप नहीं बनाया जा सकता जबकि फैक्ट्री का बनाया जा सकता है (चटोपाध्याय, 2012)।

एडम स्मिथ (1776) उपभोक्ता की सार्वभौमिकता पर बल देते हैं तथा विश्वविद्यालयों को असफलता से बचाने के लिए छात्रों और शिक्षकों के मध्य प्रतियोगिता को महत्वपूर्ण मानते हैं लेकिन इस विचार के पीछे जो मान्यताएं हैं कि छात्र बहुत अधिक मेहनती हैं,

उनका उद्देश्य भी स्पष्ट है तथा शिक्षक विद्यार्थियों को प्रसन्न करने के लिए उनको अधिक मार्क्स नहीं देते।

शिक्षक को अभियंता या प्रबंधक नहीं माना जा सकता। शिक्षक की गुणवत्ता उसमें निहित मानव पूंजी पर निर्भर करती है। इससे भी अधिक यह कहा जा सकता है की शिक्षक में निहित प्रेरणा पर ही उस शिक्षक की गुणवत्ता निर्भर करती है। इसलिए एक शिक्षक के निष्पादन का मापन एक गलत प्रक्रिया है। अकादमिक निष्पादन संकेतकों के माध्यम से शिक्षक की गुणवत्ता का मूल्यांकन एक गलत प्रक्रिया है। अकादमिक निष्पादन संकेतकों के माध्यम उसके निष्पादन का मूल्यांकन, पदोन्नति और नियुक्ति शिक्षक और विश्वविद्यालय दोनों की भूमिका को कमतर मानता है। यह प्रणाली भारतीय उच्च शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता को खराब करने वाली है, क्योंकि, यह शिक्षक द्वारा ज्ञान उत्पादन की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण नहीं मानती, जबकि शिक्षक की प्रेरणा तथा उसकी रुचि शिक्षा की गुणवत्ता के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है (दास एवं चटोपद्ध्याय 2014)। अकादमिक निष्पादन संकेतकों के माध्यम शिक्षक के निष्पादन का मूल्यांकन शिक्षकों को हतोत्साहित करती है तथा शिक्षक तथा विश्वविद्यालय की सामाजिक भूमिका को कम करके आंकता है। यहाँ व्यवस्था भारतीय उच्च शिक्षा व्यवस्था को बिगाड़ सकती है। यहाँ ज्ञान सृजन की प्रक्रिया को कमजोर करती है।

उच्च शिक्षा के लिए संपूर्ण नव-उदारवादी ढांचा गलत मान्यताओं पर आधारित है (भूषण, 2009)। नव उदारवादी सिद्धांत गुणवत्ता वृद्धि को प्रबंधन द्वारा प्रेरित मानता है। यह सिद्धांत यह मानता है की उच्च शिक्षा में गुणवत्ता, जिम्मेदारी तय करने से बढ़ सकती है। संस्थानों के मध्य प्रतियोगिता से गुणवत्ता बढ़ेगी। इस प्रकार यह व्यक्तिगत विवेकशीलता का पक्ष लेता है और सामूहिक विवेकशीलता, जो राज्य की है उसको नकारता है। नव उदारवादी मानते हैं कि राज्य प्रबंधकीय विवेकशीलता की शर्तें सृजित कर सकता है। संस्थानिक सुधारों का उदारवादी रास्ता कुछ निश्चित मान्यताओं पर आधारित है। यह मानता है कि सभी पक्ष (छात्र और शिक्षक) समरूप है। इसकी यह भी मान्यता है कि सभी संस्थान (शिक्षक और कॉलेजे) समरूप हैं। सूचना के रूप में बाजार संकेतांक उपलब्ध है। छात्र मांग और पूर्ति द्वारा उत्पन्न बाजार संकेतांक के अनुसार निर्णय लेता है एवं कार्य करता है। यह सिद्धांत यह मानता है कि सभी शिक्षकों को मिलने वाली सुविधाएं समान है और उनके पूर्वाधिकार भी समान है। किसी ग्रामीण क्षेत्र में स्थित महाविद्यालय एवं शहरी क्षेत्र में स्थित महाविद्यालय मैं नियुक्त शिक्षकों, छात्रों एवं संस्थाओ में यह किसी तरह का भेद नहीं मानता। ये मान्यताएं सही नहीं है। पूर्ण प्रतियोगिता का अस्तित्व नहीं होता। छात्रों की पृष्ठभूमि भी भिन्न-भिन्न होती है। प्रवेश, वित्तीय सहायता और अध्ययन प्रणाली के संदर्भ में छात्रों को भिन्न-भिन्न तरह की सहायता की आवश्यकता होती है। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में स्थित महाविद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं में भेद करना आवश्यक है। यह संभव नहीं है कि ग्रामीण तथा शहरी के क्षेत्रों में अध्ययन कर रहे छात्र की प्रतिक्रिया बाजार में उपलब्ध संकेतों पर आधारित हो। उन्हें भिन्न भिन्न तरह के संस्थानिक सपोर्ट की आवश्यकता होती है। एक ही महाविद्यालय में वे छात्र भी आ सकते हैं जो कृषि कार्य करने वाले परिवारों से आते हैं इसके अतिरिक्त उच्च वर्ग के छात्र भी आ सकते हैं। इन भिन्न भिन्न पृष्ठभूमि के छात्रों के लिए भिन्न भिन्न तरह की रणनीतियों की आवश्यकता होती है।

नव उदारवादी संरचना में राज्य की भूमिका को निम्न तरह से परिभाषित की जा सकती है (भूषण 2009)। नव उदारवादी यह तर्क देते हैं कि राज्य का एकाधिकार समाप्त होना चाहिए। प्रवेश की बाधाएं समाप्त होनी चाहिए। अधिक से अधिक निजी सहभागिता के अवसर पैदा करने के प्रयास होने चाहिए। सरकार की भूमिका को आयोजन की बजाय निजी क्षेत्र की भूमिका को बढ़ाने वाली नीति निर्माण के पुनर्सरचना के पक्ष में होनी चाहिए। राज्य के द्वारा बाजार आधारित प्रेरणाओं को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। इसमें राज्य की भूमिका को नकारा नहीं जाता। राज्य की सहभागिता वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में नहीं मानी जाती, बल्कि निजी क्षेत्र द्वारा उत्पादन में सहयोग उपलब्ध कराने की होती है। विश्व में नव उदारवादी सिद्धांत भिन्न-भिन्न अकादमिक रूपों में प्रचलित है जैसे, मानव पूंजी सिद्धांत, एजेंसी थ्योरी, पब्लिक चॉइस थ्योरी, ट्रांजैक्शन कॉस्ट इकोनॉमिक्स तथा कांसेर्वटिस्ट डॉक्ट्रिन ऑफ मोनेटरी आदि। नव उदारवादी सिद्धांत निम्न करणीयों में विश्वास रखता है। (i) प्रशुल्क तथा सब्सिडी समाप्त की जानी चाहिए, (ii) लागत का पुनर्भरण होना चाहिए, (iii) वैधानिक अनिवार्यता जैसी, प्रवेश की बाधाएं नहीं होनी चाहिए (iv) सेवाओं के प्रावधान में ज्यादा से ज्यादा विक्रेता या सेवा प्रदाता होने चाहिए ताकि प्रतियोगिता उत्पन्न हो सके, (v) वस्तुओं और सेवाओं तथा पूंजी के आयात व निर्यात पर नियंत्रण समाप्त होना चाहिए (vi) नियमन बहुत अधिक नहीं होने चाहिए क्योंकि ये प्रतियोगिता को कमजोर करते है। (vii) वस्तुनिष्ठ पैमाने एवं प्रतियोगिता द्वारा उत्तरदायित्व पैदा किया जाना चाहिए। (viii) सामूहिक विवेकशीलता की अपेक्षा व्यक्तिगत विवेकशीलता को अधिमान दिया जाए क्योंकि, सामूहिक विवेकशीलता का

अस्तित्व नहीं होता (IX) गुणवत्ता वहीं पर रह सकती है जहां प्रतियोगिता होती है। यह ध्यान योग्य है की नव उदारवाद का तात्पर्य यह नहीं है कि राज्य का अस्तित्व नाकारा जाए। राज्य ही सक्रिय रूप से बाजार का निर्माण करता है। राज्य का नियंत्रण इस तरह का होना चाहिए जो, बाजार तथा प्रतियोगिता को बढ़ावा दें। राज्य का यह नियंत्रण व नियमन लोचशील होना चाहिए। सेवाओं के प्रावधानों में शक्ति व कार्य का विकेंद्रीकरण होना चाहिए। यह रुचिकर है कि राष्ट्रीय ज्ञान आयोग कि अभिशंसा नव उदारवाद सिद्धांत से प्रेरित थी।

फौकाउल्ट (1999) द्वारा दिए गए नव-उदारवाद के सिद्धांतों को भूषण (2009) निम्न प्रकार से सारांश रूप में प्रस्तुत करते हैं। (i) राज्य द्वारा बाजार तथा प्रतियोगिता को बढ़ावा दिया जाए। (ii) सम्पूर्ण समाज, सामाजिक तथा कार्य संबंधों में प्रतियोगिता को बढ़ाया जाये ताकि ये बाजार स्वरूप का आकार ले सकें। (iii) प्रभावी बाजार व्यवस्था के लिए आवश्यक सामाजिक दशाओं के सक्रिय सृजन का समर्थन करना। (iv) नौकरशाही की पहल का विरोध करने वाली तथा उधमिता की भावनाओं को बढ़ाने वाली नीतियों को प्रोत्साहन। (v) नौकरशाही के कार्य क्षेत्रों का पुन: निर्धारण करना (vi) राज्य भी बाजार के नियमों के अधीन होना चाहिए।

नव उदारवाद वैयक्तिक विवेकशीलता के उदारवाद के विचार को बढ़ावा देता है। यह प्रतियोगिता का समर्थन करता है क्योंकि, बाजार प्रणाली में साम्य को प्राप्त करने के लिए प्रतियोगिता ही आधार का कार्य करती है। उदारवाद से नव उदारवाद की तरफ गमन का तात्पर्य यह है कि राज्य बाजार के कार्यकरण को और गहरा करने में सहयोग करें। इसका निहितार्थ यह है कि जो सेवाएं राज्य द्वारा प्रदत्त है या उत्पादित की जा रही हैं उनका निजी करण हो। नव उदारवाद का तात्पर्य है कि नौकरशाही को प्रबंधन और निष्पादन मूल्यांकन के नए सिद्धांतों से प्रतिस्थापित किया जाए। इसमें यह मान्यता होती है कि नौकरशाह की व्यक्तिगत रूचि अकुशलता तथा भ्रष्टाचार लाती है क्योंकि, सामूहिक हित साधन जैसी कोई अवधारणा विद्यमान नहीं होती। राज्य के घटक के रूप में व्यक्ति इस तरह से कार्य करें कि बाजार के संकेतांक तथा निष्पादन उन्नयन के लिए वह प्रतिक्रियाशील हो। नव उदारवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण उच्च शिक्षा को आवश्यक रूप से एक निजी वस्तु माना जाता है (जोंस, 1997)। यह विश्व बैंक की विचारधारा के अनुसार ही हैं। विश्व बैंक विश्व अर्थव्यवस्था को इसी दिशा में एकीकृत करने का प्रयास कर रहा है। यह निम्न विचारधारा पर कार्य कर रहा है : (i) उच्च शिक्षा में लागत पुनर्भरण होना चाहिए ताकि सरकार संसाधनों का आवंटन प्राथमिक शिक्षा के लिए कर सके। (ii) उच्च शिक्षा के लिए ऋण को बढ़ावा देना ताकि साख बाजार का विकास हो सके इससे चयनित छात्र वृत्तियां प्रदान की जा सकें (iii) सार्वजनिक शिक्षा के प्रबंधन का विकेंद्रीकरण करना और इसके लिए गैर सरकारी और सामुदायिक संगठनों द्वारा मदद का विस्तार होना चाहिए।

नव उदारवाद शिक्षा के लिए बाजार के निर्माण के पक्ष में है जहां शिक्षा सेवा प्रदाता देने वाला और छात्र - एक उपभोक्ता के रूप में दोनों स्वतंत्र हैं। इसके कारण बाजार में प्रतियोगिता आएगी। प्रतियोगिता से बाजार दक्ष होगा और इससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होगा (जोनगब्लोएद, 2004)। उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सुधार के लिए संस्थानिक सुधारों की आवश्यकता है। उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का संबंध मूल्य, विविधता तथा उसके रोजगारक्षम बनाने पर आधारित है। इसलिए यह (उच्च शिक्षा) सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विषय है जिसे केवल बाजार के सिद्धांतों के आधार पर नहीं देखा जा सकता।

स्वतंत्र बाजार दर्शन के एक अतिवादी रूप के अनुसार (हेयक, 1944), सामाजिक अच्छाई और सामाजिक कल्याण का कोई अर्थ नहीं है। समाज या समाज के मूल्य जैसी कोई वस्तु नहीं होती, जो व्यक्तिगत लाभ से भिन्न न करी जा सके। केवल व्यक्ति ही वास्तव है और इसलिए उसके लाभ ही महत्वपूर्ण है, तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रजातांत्रिक मूल्यों से भी अधिक महत्वपूर्ण है। सार्वजनिक वस्तु तथा सामाजिक न्याय असंभव माने जाते हैं और उनको प्राप्त किया जाना वांछनीय हो यह आवश्यक नहीं।

शिक्षा, विशेषकर उच्च शिक्षा के संबंध में कीन्सीयन से नव-उदारवाद तक के नीतिगत मॉडल में विवर्तन का तिलक (2005) अन्वेषण करते हैं। आजकल बाजार बहुत सारे देशों में विशेष रूप से विकासशील देशों में बाजार मुख्य भूमिका ले रहा है। यह विश्वास किया जाता है कि बाजार ही सब के लिए सब कुछ कर सकता है जबकि सरकार नहीं। बाजार दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष रूप से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रवेश कर गया है। उच्च शिक्षा का क्षेत्र बाजार के सिद्धांतो से शासित हो रहा है। इस विचार इस विचार का विस्तार हुआ है कि आर्थिक कुशलता के लिए राज्य की भूमिका को कम किया जाना चाहिए। यह तर्क दिया जाता है कि सरकार की भूमिका केवल संगत नीति निर्माण के रूप तक ही सीमित होनी चाहिए (वर्ल्ड बैंक, 1994)। शिक्षा के क्षेत्र में बाजार दर्शन ने तेजी से प्रवेश किया है, विशेष रूप से अमेरिकी मनोविज्ञान में। इससे विकासशील देशों के तथा बहुत सारे यूरोपीय

देशों जैसे ही इंग्लैंड के अधिकांश लोगों में एक सांस्कृतिक झटका लगा है (बोत्तेरी 1992, पेज 83)। नए आर्थिक सुधारों ने बाजार नीतियों को प्रोत्साहन दिया है जिसके कारण परंपरागत व अच्छे से स्थापित मूल्य अवधारणा के दृष्टिकोणों का स्थान नए मूल्यों और अभ्यास ने ले लिया है, विशेषकर उच्च शिक्षा में। ये नीतियां शिक्षा को किसी भी तरह एक व्यापारिक वस्तु से भिन्न नहीं मानते या एक वाणिज्यिक उत्पाद से ज्यादा नहीं मानते। इससे उच्च शिक्षा के ज्ञान उत्पन्न करने तथा ज्ञान का विस्तार करने के परंपरागत कार्य का अवमूल्यन हुआ है तथा उच्च शिक्षा में पहुँच में समानता का पहलू की भी उपेक्षित हुआ है (तिलक, 2005)।

विभिन्न दृष्टिकोण

शिक्षा केवल एक वस्तु नहीं है अपितु, सम्मानजनक अस्तित्व के लिए आधारभूत है। प्रत्येक व्यक्ति तक इसकी पहुंच होनी चाहिए और यह पहुंच बाजार प्रणाली के माध्यम से संभव नहीं है। शिक्षा व्यक्ति और समाज का रूपांतरण करती है (सेन, 2000)। मानव पूंजी सिद्धांतकार उच्च शिक्षा को महत्व देते हैं क्योंकि, उच्च शिक्षा मानव को उसकी गुणवत्ता सुधार करके, आर्थिक समृद्धि लाकर के, और समाज का कल्याण बढाकर मानव पूंजी के रूप में परिवर्तित करती है (टोडारो, शुल्त्ज एवं गेरी बेकर)। उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सुधार के लिए संस्थानिक सुधार आवश्यक हैं। उच्च शिक्षा की गुणवत्ता मूल्य, विविधता तथा इसके रोजगारक्षम होने से संबंधित है इसलिए इसका राजनीतिक, सामाजिक, और आर्थिक महत्व है। बाजार दृष्टिकोण में इस सोच का अभाव होता है। मानव पूंजी दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा पर व्यय निवेश है। जो धनात्मक प्रतिफल के प्रदान करता है। इसके धनात्मक प्रतिफल व्यक्ति के लिए भविष्य में अधिक आय अर्जन के रूप में होती है तथा समाज के लिए इसे प्रदान नहीं किये जाने की भविष्य की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लागत बहुत अधिक होगी (शुल्तज, 1961, बेकर, 1993)। (पसचरोपिउलौस, 1973) के अनुसार प्राथमिक शिक्षा पर व्यय के प्रतिफल उच्च शिक्षा पर व्यय से प्राप्त प्रतिफलों की तुलना में अधिक होते हैं इसलिए वे प्राथमिक शिक्षा में सब्सिडी बढ़ाने की बात करते हैं ताकि प्रत्येक व्यक्ति कम से कम प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर सके। ज्ञान आधारित समाज में तथा प्रतियोगी विश्व अर्थव्यवस्था में उच्च शिक्षा नवप्रवर्तन, विकास एवं तकनीकी उन्नति के लिए महत्वपूर्ण है।

तिलक (2003) तर्क देते हैं कि उच्च शिक्षा से प्राप्त प्रतिफल केवल आर्थिक नहीं है, आर्थिक से अधिक हैं। उच्च शिक्षा से प्राप्त कुछ प्रतिफल हैं ऐसे होते हैं जिनको मात्रात्मक रूप में नहीं मापा जा सकता जैसे जीवन की गुणवत्ता, व्यक्तिगत सम्मान और व्यक्तिगत स्वतंत्रता जो उच्च शिक्षा से प्राप्त आर्थिक प्रतिफलों से अधिक महत्वपूर्ण हैं। उच्च शिक्षा में निवेश निर्णय केवल आर्थिक प्रतिफलों के आधार पर नहीं लिया जाना चाहिए। तिलक ने 1987 में भारत में विभिन्न सामाजिक समूह में शिक्षा से प्राप्त प्रतिफल मैं असमानता को विश्लेषित किया जिसके, मुख्य निष्कर्ष निम्न प्रकार पाए गए। (i) समाज का कमजोर वर्ग जैसे महिलाएं तथा पिछड़ी जातियों के व्यक्ति के लिए अन्य की तुलना में शिक्षा से प्राप्त प्रतिफल कम पाए गए। (ii) समाज के विभिन्न समूहों में शिक्षा मानव पूंजी निर्माण में असमानता पाई गई और इस मानव पूँजी निर्माण का वितरण कमजोर वर्गों के प्रतिकूल पाया गया। श्रम बाजार में रोजगार तथा मजदूरी के संबंध में कमजोर वर्ग के साथ भेदभाव पाया गया (iii) यह पाया गया कि विभिन्न सामाजिक समूह मैं यह असमान वितरण सामाजिक और आर्थिक कारणों से हो सकता है लेकिन सार्वजनिक नीति की अपर्याप्तता भी इसके लिए जिम्मेदार है।

कुमार (2004) तथा मजूमदार (1997) कहते हैं कि यह तर्क गलत है कि प्राथमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा पर व्यय एक दूसरे के प्रतियोगी होते हैं। उनका मानना है कि वास्तव में दोनों का एक क्रम है और इनके मध्य एक मजबूत संबंध है। इनको अलग अलग करके नहीं देखना चाहिए। उच्च शिक्षा शिक्षा प्रदान करने वालों व प्रशासकों को उत्पन्न करती है जो प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने में भूमिका निर्वाह करतें हैं। दूसरी ओर कोई भी व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त करने मैं योग्य तभी होगा जब वह अच्छी गुणवत्ता पूर्ण प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर सकेगा। कुमार (1987) यह तर्क देते हैं की उच्च शिक्षा व्यवस्था के स्वस्थ विकास के लिए इसका स्वायत्त, उत्तरदायित्व पूर्ण व प्रजातांत्रिक होना चाहिए। व्यवस्था का यह उत्तरदायित्व शिक्षा से जुड़ी नौकरशाही के हित की अपेक्षा समाज के दीर्घकालीन हित के लिए होना चाहिए। मशीनीकृत उत्पादकता की व्यवस्था उच्च शिक्षा में लागू नहीं की जा सकती।

निष्कर्ष

उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान में उपभोक्ता (विद्यार्थी) एवं शिक्षक दोनों मिलकर उत्पादन करते हैं जिससे सार्वजनिक लाभ होता है साथ ही शिक्षा एक विश्वास करने योग्य (विश्वासी) वस्तु भी है क्योंकि बाजार में पूरी सूचना के अभाव में उपभोक्ता को सेवा प्रदाता पर विश्वास करना पड़ता है तथा उपभोग के बाद ही वस्तु की गुणवत्ता का पूरी तरह पता चल पाता है। उच्च शिक्षा में कुल

उत्पादन विद्यार्थी की योग्यता एवं प्रयास पर भी निर्भर करता है उक्त सभी विशिष्ताओं के कारण उच्च शिक्षा के बाजार पर नव उदावाद की पूर्व मान्यताएं पूरी तही लागू नहीं होती हैं तथा नव उदारवादी नीतियों के लागू होने पर कुल उत्पादन अनुकूलतम से कम होता है। अत: उच्च शिक्षा को नव उदारवादी मान्यताओं के अनुसार पूरी तरह बाजार के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता है एवं इसमें राज्य का हस्तपक्षेप आवश्यक है ताकि अनुकूलतम उत्पादन किया जा सके। केवल प्रतियोगिता के कारण गुणवत्ता का उन्नयन एवं लागत को न्यूनतम किया जाना संभव नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अलबक, पी.जी., हायर एजुकेशन क्रोस्सेस बॉर्डर्स, चेंज, 36(2), 2004, पृ. 18-25
2. एंडरसन, ई., दा काम्प्लेक्स रिलेशन बिटवीन दा अकादमिक एंड इंडस्ट्री, दा जर्नल ऑफ हायर एजुकेशन, 72(2), 2001, पृ. 226-46
3. एप्पल, एम्.डब्लू., बिटवीन नेओलिब्रलिस्म एंड नेओकोन्सेर्वतिस्म: एजुकेशन एंड कांसेर्वतिस्म इन ए ग्लोबल कॉन्टेक्स्ट इन एन सी बुर्बुलेस एंड सी ए तोर्रेस ग्लोबलिजेसन अंस एजुकेशन, क्रिटिकल पर्सपेक्टिव, लन्दन रौत्लेद्गे, 2000, पृ. 56-57
4. बर्मन, ई.एच., दा पोलिटिकल इकॉनमी ऑफ एजुकेशन रिफार्म, इन आर एअर्नोव एंड टोरेस, कम्पेरेटिव एजुकेशन: दा दिलेक्ट ओग थे ग्लोबल एंड लोकल, लंहम लित्त्लेफिएल्द पब्लिशर्स, 2003, पृ. 252-91
5. चोमस्की, एन., वर्ल्ड आर्डर ओल्ड एंड न्यू, न्यूयॉर्क, कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस इन कन्डिको बी केमले (2010), नियोलिब्रलिज्म इन हायर एज्यूकेशन : ए कम्परेटिव अप्रोच, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ आर्ट्स एण्ड साइसेंज 3(14), 1994, पृ. 155
6. चोमस्की, एन., प्रॉफिट ओवर पीपल: नेओलिब्रलिस्म एंड ग्लोबल आर्डर, न्यूयॉर्क, सेवेन स्टोरीज एंड प्रेस इन कन्डिको बी केमले (2010), नियोलिब्रलिज्म इन हायर एज्यूकेशन : ए कम्परेटिव अप्रोच, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ आर्ट्स एण्ड साइसेंज 3(14), 1998, पृ. 157
7. फ्रीडमन, एम्., दा इंविसिबल हैण्ड इन इकोनॉमिक्स एंड पॉलिटिक्स, पसिर पंजंग सिंगापुर: इंस्टिट्यूट ऑफ साउथ एशियन स्टडीज इन कन्डिको बी केमले (2010), नियोलिब्रलिज्म इन हायर एज्यूकेशन : ए कम्परेटिव अप्रोच, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ आर्ट्स एण्ड साइसेंज 3(14), 1981, पृ. 169
8. केजर, ए.जे., ओब्तैनिंग इंटीग्रिटी ? रेविएविंग एंड एक्सामिनिंग दा चार्टर बिटवीन हायर एजुकेशन एंड सोसाइटी, दा रिव्यु ऑफ हायर एजुकेशन, 27(4), 2004, पृ. 429-59
9. मर्गिन्सन, एस. एंड र्होअदेस, जी., बियॉन्ड नेशनल स्टेट्स, मार्किट एंड सिस्टम ऑफ हायर एजुकेशन: ए ग्लोबल एजेंसी ह्यूरिस्टिक : हायर एजुकेशन, 43(3), 2002, पृ. 281-309
10. मोरौ, आर.ए. एंड तोर्रेस, दा स्टेट, ग्लोबलिजेसन, एंड एजुकेशन पालिसी इन एन सी बुर्बुलेस एंड सी ए तोर्रेस ग्लोबलिजेसन एंड एजुकेशन: क्रिटिकल पर्सपेक्टिव, लन्दन रौत्लेद्गे, 2000, पृ. 27-56
11. स्लॉटर, एस. एंड लेस्ली, अकादमिक कैपिटलिज्म: पॉलिटिक्स पॉलिसीस एंड दा एन्त्रेप्रेुरिअल यूनिवर्सिटी, बाल्टिमोर एम् दी : दा जॉन होप्किंग युनिवर्सिटी प्रेस इन कन्डिको बी केमले (2010), नियोलिब्रलिज्म इन हायर एज्यूकेशन : ए कम्परेटिव अप्रोच, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ आर्ट्स एण्ड साइसेंज 3(14), 1997, पृ. 153
12. शुल्तज, टी. डब्ल्यू., 'ऑन इन्वेस्टिंग इन स्पेशलाईज्ड ह्यूमन केपिटल टू अटेन इन्क्रीसिंग रिर्टन' इन जी. रेन्स एण्ड टी.पी. स्कल्ट्ज (एड), दि स्टेट ऑफ डवलेपमेन्ट इकॉनोमिक प्रोग्रेस एण्ड प्रेसपेक्टिव, बेसिल ब्लेकवेल, ऑक्सफोर्ड, पीपी 339-52. (एस रेफर्ड इन तिलक, जे.बी.जी. (2005):'हायर एजुकेशन इन त्रिशंकु', इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल विकली, 40(37), 1961, पृ. 4029-37.
13. तिलक, जे.बी.जी., हायर एजुकेशन एण्ड डवलपमेंट' इन एड. तिलक, जे.बी.जी. एजुकेशन एण्ड सोसायटी एण्ड डवलपमेंट, नेश्नल एण्ड इण्टर नेशनल, प्रेसपेक्टिव. ए.पी.एच. पब्लिसिंग, न्यू दिल्ली फॉर एनआईइए, 2003, पृ. 46
14. तिलक, जे.बी.जी., हायर एजुकेशन इन त्रिशंकु, इकॉनोमिक एण्ड पॉलीटिकल विकली, 40(37), 2003, पृ. 4029-37
15. कुमार, ए., एकाउन्टेबिलेटी एण्ड एटोनोमी इन हायर एज्युकेशन, इकोनोमिक एण्ड पॉलिटीकल विकली, ऑक्टोबर 31, 1987, पृ. 1564
16. पेसचोरोपॉलोस, जी., रिर्टन टू इन्वेस्टमेन्ट इन एजुकेशन: ए ग्लोबल अपडेट, वर्ल्ड डवलेपमेन्ट 22(9):1325-43. (एस रेफर्ड इन तिलक, जे.बी.जी. (2005): 'हायर एजुकेशन इन त्रिशंकु', इकोनोमिक एण्ड पॉलिटेक्निक विकली, 40 (37), 1994, पृ. 4029-37

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 8-12

राजस्थान के प्रजामण्डल आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका

डॉ. संजीव कुमार
सहायक आचार्य, इतिहास
से.ने.म.टी.राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, झुन्झुनूं (राजस्थान)

शोध सारांश

राजस्थान के शासक स्वतंत्रता के पुजारी थे, स्वतंत्रता के लिए एक लम्बा संघर्ष किया, परन्तु 1818 ई. के बाद वे अंग्रेजों से सन्धि कर उनकी कठपुतली बन गये। जब पूरे भारत में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष चल रहा था तो उसका प्रभाव राजस्थान के लोगों पर भी पड़ा। अब वे रियासतों में उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए प्रयास करने लगे। 1920 के बाद राजनीतिक गतिविधियां बढ़ने लगी। राजस्थान में अब प्रजामण्डल एवं प्रजा परिषद् जैसे संगठन बनने लगे। राजस्थान में अब विभिन्न राजनीतिक संगठनों ने अब अपने अधिकारों के लिए सत्याग्रह प्रारम्भ किया, जो राजस्थान की लगभग सभी रियासतों में चला। उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए जब सत्याग्रह आन्दोलन, प्रभात फेरियाँ, जुलूस निकले, बड़ी सभाएँ होने लगी तो राजस्थान की महिलाएँ भी पीछे नहीं रही। प्रजामण्डल आन्दोलन के दौरान महिलाएँ अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ गिरफ्तारियां दी, जेल यात्रा की। इन महिलाओं ने जन जागृति लाने के लिए सत्याग्रहियों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर साथ दिया, समाज सुधार का कार्य किया, शिक्षा का प्रचार किया, आम सभाओं में उत्साह से भाग लिया। इन महिलाओं में श्रीमती रतन शास्त्री, रमा देवी देशपाण्डे, सूरजदेवी माथुर, नारायणी देवी, श्रीमती त्रिवेणी देवी, जमुना देवी एवं कालीबाई का प्रशंसनीय योगदान रहा।

संकेताक्षर : *प्रजामण्डल, प्रजा परिषद्, उत्तरदायी शासन, सत्याग्रह*

राजस्थान आज लोकप्रिय नाम है लेकिन इससे पूर्व यह क्षेत्र राजपूताना अथवा रजवाड़ा के नाम से अधिक विख्यात था। कर्नल जेम्स टॉड ने जब अपनी पुस्तक 'एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान' लिखी, तब से राजस्थान नाम अधिक लोकप्रिय हुआ। इतिहास साक्षी है कि राजस्थान के अधिकांश शासक एक लम्बी अवधि तक स्वतंत्रता के पुजारी थे। लेकिन 18 वीं सदी में मराठों व पिण्डारियों के बार-बार आक्रमण से त्रस्त इन शासकों का झुकाव ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरफ बढ़ा। 1817 ई. में लार्ड हेस्टिंग्स ने दिल्ली के रेजीडेन्ट चार्ल्स मेटकॉफ को राजपूताना के शासकों के साथ समझौता सम्पन्न करने के निर्देश दिये। मेटकॉफ ने राजस्थान के राजाओं को दिल्ली आमंत्रित किया 1818 ई. से 1823 ई. तक सभी शासकों के साथ कम्पनी की सन्धि सम्पन्न हो गई। सन् 1918 ई. में दिल्ली में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में राजस्थान के कई व्यक्तियों ने भाग लिया, जिसके परिणाम स्वरूप इनका सम्पर्क अंग्रेजी भारत व अन्य राज्यों के नेताओं से हुआ। इस अधिवेशन के बाद गणेश शंकर विद्यार्थी, विजयसिंह पथिक, जमनालाल बजाज, चान्दकरण शारदा, गिरधर शर्मा, स्वामी नरसिंहदेव सरस्वती आदि के प्रयत्नों से 'राजस्थान मध्य भारत सभा' नामक एक राजनीतिक संस्था की स्थापना दिल्ली में हुई। [1] इस सभा का मुख्य उद्देश्य रियासतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना और रियासत के लोगों को कांग्रेस का सदस्य बनाना था। इसके बाद राजस्थान में अनेक राजनीतिक संगठन बनने प्रारम्भ हुए। 1920 ई. के बाद राजस्थान में राजनीतिक हलचल बढ़ने लगी, जनता की आवाज को राजा दबाने लगे। अब रियासतों में राजनीतिक सभाएँ होने लगी, रियासतों में प्रजामण्डलों की स्थापना होने लगी।

1920 के बाद राजस्थान में राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं के लिए अनेक प्रशिक्षण आयोजित किये जाने लगे। जिनमें पुरूषों के साथ महिलाओं ने भी भाग लिया। 1933-34 ई. में मेवाड़ से अनेक कार्यकर्त्ता नरेली आश्रम में प्रशिक्षण लेने गये, जिनमें माणिक्यलाल वर्मा की पत्नी नारायणी देवी ने भी स्वयंसेवकों के साथ रहकर प्रशिक्षण लिया। प्यारचन्द विश्नोई की पत्नी भगवती

देवी ने भी रचनात्मक कार्यों में भाग लिया तथा नरेली आश्रम में रहकर हरिजनों में समाज सुधार और शिक्षा का प्रचार किया। राजस्थान के जयपुर में राजनीतिक गतिविधियाँ 1930 के दशक में ही प्रारम्भ हो चुकी थी, जमनालाल बजाज के प्रयासों से 1936 में जयपुर प्रजामण्डल को पुन: संगठित किया गया। प्रजामण्डल ने प्रथम अधिवेशन की सूचना देने वाला एक पर्चा जयपुर में प्रकाशित किया गया। **'सालाना जलसो की धूम'** नामक पर्चे में लिखा था –

नथमल के कटले में आया करो।

जलसे की खुशियाँ मनाया करो।

1938 ई. में जयपुर में एक जुलूस निकाला गया जिसमें सैकड़ों स्त्रियों ने भाग लिया। इस अवसर पर कस्तूरबा गाँधी जयपुर आई। उन्होंने प्रजामण्डल के अधिवेशन के बाद 10 मई 1938 ई. को सायं नथमल जी के कटले में स्त्रियों की एक विशेष सभा को सम्बोधित किया।[3] इस अधिवेशन में लगभग 3-4 हजार महिलाओं ने भाग लिया जिसमें वनस्थली की छात्राएँ भी शामिल हुई।[4] जयपुर सरकार ने प्रजामण्डल की गतिविधियों को सहन नहीं किया तो प्रजामण्डल ने सत्याग्रह करने का निश्चय किया। जनवरी 1936 में 2 हजार सत्याग्रहियों के नाम लिखे गये, जिसमें महिलाएँ भी शामिल हुई। फरवरी 1939 को जयपुर में सत्याग्रहियों के जत्थे निकलने प्रारम्भ हुए तो 05 फरवरी, 1939 को रमा देवी देशपाण्डे, जो भारतीय चरखा संघ के मंत्री बलवन्त सावल-राम की पत्नी थी, के नेतृत्व में पाँच अन्य महिलाओं ने सत्याग्रह किया। ये पाँच महिलाएँ थीं, सुमित्रा देवी, इन्द्रा देवी, विद्या देवी, शारदा देवी और सुशीला गोयल। इन छ: महिलाओं में से पाँच के साथ छोटे बच्चे भी थे। [5] 6 स्त्रियों का एक जत्था 5 मार्च, 1939 को हीरालाल शास्त्री की पत्नी रतन देवी के नेतृत्व में गिरफ्तार हुआ। [6] जब सत्याग्रहियों को पुलिस गिरफ्तार कर लॉरी में ले जाने लगी तो कुछ महिलाओं ने लॉरी रूकवा ली और 2-3 स्त्रियों ने सत्याग्रहियों के गले में पुष्पमालाएँ डाल दी। [7] पूरे सत्याग्रह के दौरान पन्द्रह महिलाओं को गिरफ्तार किया गया, इनमें प्रमुख थी शारदा देवी, रमा देवी, इंदिरा देवी, विद्या देवी, सुमित्रा देवी इन सबको तीन-तीन माह की सजा हुई। [8] शेखावाटी क्षेत्र की महिलाओं ने भी सरकारी एवं जमींदारी के अत्याचारों के विरोध प्रदर्शन में भाग लिया। 11 मार्च, 1938 ई. को विद्यार्थी भवन झुन्झुनू में एक वृहद् महिला सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें हजारों की संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। इस सम्मेलन को कुँ. नेतरामसिंह गौरीर की पुत्री शीतल बाई ने महिलाओं को शिक्षित होने, राष्ट्र की उन्नति में भागीदार बनने व सामाजिक कुरूतियों का परित्याग करने का आह्वान किया। इस सम्मेलन के उपरान्त बड़ी संख्या में महिलाएँ वनस्थली अध्ययन करने हेतु गई।[9]

सुमित्रा देवी खेतान ने 1939 के सत्याग्रह में केसरिया साड़ी पहने एवं कंधे पर हरा थैला तथा हाथों में तिरंगा झण्डा लेकर अपने डेढ़-दो वर्षीय बच्चे के साथ गिरफ्तारी दी तथा बच्चे के साथ ही जेल में रही।[10] 4 मार्च 1939 को जयपुर किसान सत्याग्रह पर झुन्झुनू प्रजामण्डल आन्दोलन के नेता हरलाल सिंह की पत्नी रमाकोरी देवी, उनकी माँ फूलीदेवी, कृष्णा शर्मा जयपुर आई, जिन्हें पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। उसी दिन महिलाओं का एक जत्था केसरिया साड़ी पहने हुए जौहरी बाजार पहुँचा, जिसका नेतृत्व जयपुर के प्रतिष्ठित नेता मूलचन्द जी की पत्नी जमना देवी ने किया। इनके साथ सरस्वती देवी, भारती देवी, कमला देवी, धापादेवी, दुर्गावती, सुशीला देवी व शिवा देवी अग्रवाल आदि कर्मठ महिलाएँ थी। जिन्हें पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।

मई 1940 को प्रजामण्डल का वार्षिक अधिवेशन नथमल जी के कटले में आयोजित किया गया, जिसमें वनस्थली विद्यापीठ की छात्राओं ने केसरिया बाना पहनकर घोड़ों पर सवार होकर जुलूस में भाग लिया। इनके साथ जानकी देवी बजाज तथा उनकी बहन गुलाब देवी भी थी। [11] श्रीमती नारंगीदेवी को भी एक जुलूस में पुलिस बर्बरता का सामना करना पड़ा। फिर भी उसने झण्डे को नहीं गिरने दिया। उनके साथ तारा शर्मा, सुशीला सचदेवा, रमाबाई देशपाण्डे व सीता धवन भी थी। [12] राजस्थान के सीकर जिले की नीमकाथाना निवासी गीता बजाज एक सामाजिक कार्यकर्त्ता थी, जिसने भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लिया। ये पुरूष वेश में बारूद सप्लाई करते हुए पकड़ी गई थी, इन्हें लाहौर जेल की काल कोठरी में बन्द कर दिया गया था।[13]

भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान वैसे तो जयपुर रियासत शान्त रही, लेकिन आजाद मोर्चे के नेतृत्व में आन्दोलन, प्रदर्शन हुए। छात्राओं ने भी आन्दोलन में भाग लिया। वनस्थली विद्यापीठ की छात्राओं ने धरना दिया, एक छात्रा शान्ति देवी ने 05 अक्टूबर, 1942 को एक सभा को सम्बोधित किया।[14] श्रीमती रतन शास्त्री ने वनस्थली विद्यापीठ की छात्राओं को दिल्ली व उत्तरप्रदेश जाकर आन्दोलन में भाग लेने की खुली छूट प्रदान की। श्रीमती रतन शास्त्री सत्याग्रहियों को जेल तक विदा करने तथा जेल से छूटकर आने पर उनका स्वागत करने हेतु छात्राओं के साथ सदैव उपस्थित रहती थी तथा प्रजामण्डल के अधिवेशनों में छात्राओं के साथ पहुंच कर तन्मन्यता से सेवा करती थी।[15]

ISSN 2348-3857

जोधपुर में भी महिलाओं की भूमिका सहरानीय रही। 13 नवम्बर 1938 को श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित के जोधपुर आने से महिलाओं में उत्साहवर्धन हुआ तथा अब वे राजनीति में सक्रिय होने लगी। 1942 के भारत छोड़ों आन्दोलन के दौरान जोधपुर की स्त्रियाँ भी पीछे नहीं रही। महिलाओं का जत्था केसरिया साड़ी पहने सत्याग्रह के लिए घंटाघर के पास एकत्र हुआ, महिमादेवी किंकर ने प्रतिबन्धित पुस्तक ''**उत्तरदायी शासन**' पढ़कर सुनायी और 17 जुलाई 1942 को महिलाओं के एक सत्याग्रही जत्थे का नेतृत्व भी किया। [16] स्त्रियाँ पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर भाग ले रही थी। उन्होंने प्रतिबन्धित पुस्तकों को बड़े ही गोपनीय ढंग से बाँटने का कार्य किया। [17] 8 अगस्त 1942 को पाँच स्त्रियों ने कुछ स्कूली छात्रों के साथ मिलकर ब्रिटिश विरोधी नारे लगाते हुए प्रभात फेरी निकाली। इनको देखकर हजारों की संख्या में भीड़ एकत्र हो गई, जब पुलिस ने सत्याग्रहियों पर घोड़े दौड़ाने के आदेश दिया तो स्त्रियाँ घुड़सवार पुलिस के आगे लेट गई। [18] दयावती, रमादेवी और कृष्णाकुमारी ने गिरदीकोट में एक आम सभा को सम्बोधित किया। कृष्णाकुमारी अचलेश्वर प्रसाद की पत्नी और दयावती रामचन्द्र पालिवाल की पत्नी थी जबकि रमा देवी जयनारायण व्यास की पुत्री थी। इन महिलाओं ने पहले सर प्रताप स्कूल व सरदार हाई स्कूल के पास धरना देने का प्रयास भी किया। 22 सितम्बर 1942 को सूरजदेवी माथुर व सावित्री देवी माथुर ने एक आमसभा में उत्तरदायी शासन सम्बन्धी गीत गाये। इस सभा में आर्य समाज कन्या पाठशाला की प्रधानाध्यापिका ने एक जोशीला भाषण दिया।[19] जब 25 दिसम्बर 1942 को जोधपुर में दमन विरोधी दिवस मनाया जा रहा था तो एक विशाल जुलूस निकला जिसका नेतृत्व हरीभाई किंकर कर रहे थे। जिसका बराबर साथ सूरजदेवी माथुर व सावित्री देवी दे रही थी।[20] जुलूस में बड़ी संख्या में महिलाएँ शामिल थी। श्रीमती गोरजादेवी जोशी, श्रीमती सावित्री देवी भाटी, श्रीमती सिरेकंवल व्यास और श्रीमती राजकोर व्यास को गिरफ्तार कर लिया गया।[21]

अप्रैल 1938 को मेवाड़ रियासत में प्रजामण्डल की स्थापना हुई, विजयादशमी के दिन सत्याग्रह आरम्भ कर दिया गया। शीघ्र ही आन्दोलन पूरी रियासत में फैल गया। नाथद्वारा में पुरूषों के साथ बड़ी मात्रा में महिलाओं ने आन्दोलन में भाग लिया और उन्हें भी बन्दी बनाया गया। जिनमें श्रीमती गंगाबाई प्रमुख थी। [22] इसके बाद तो महिलाओं ने मेवाड़ में हर जगह सत्याग्रह में भाग लिया। प्रतिबन्धित पर्चे वितरित किये, धरने दिये। 24 जनवरी 1939 को माणिक्यलाल वर्मा की पत्नी नारायणी देवी, उनकी बड़ी पुत्री स्नेहलता और प्यारचन्द विश्नोई की पत्नी भगवती देवी को प्रजामण्डल में सक्रिय भाग लेने के कारण मेवाड़ रियासत से निष्कासित कर दिया गया। [23] इसके बाद नारायणी देवी उदयपुर से अजमेर चली गई, वे मेवाड़ प्रजामण्डल की आर्थिक स्थिति सुधारकर रचनात्मक कार्य प्रारम्भ करना चाहती थी। अत: गणपतलाल वर्मा के साथ मिलकर प्रत्येक गांव से दो तीन आदमी बुलाकर चन्दा एकत्र करना प्रारम्भ किया। [24] दयाशंकर श्रोत्रिय ने वर्धा आश्रम से चन्द्रकान्ता कुमारी को उदयपुर आमंत्रित किया, ताकि वो उनकी पत्नी कमलादेवी के साथ रचनात्मक कार्य में सहयोग कर सकें। [25] इस कार्य में श्रीमती भगवती देवी व श्रीमती रमा देवी ने भी सहयोग किया। इस समय मेवाड़ में एक घटना और घटी, मेवाड़ में भयंकर अकाल पड़ा। वर्मा जी ने अपनी पत्नी व प्रजामण्डल कार्यकर्त्ताओं को गुप्त संदेश भेजे, जिसके फलस्वरूप उनकी पत्नी नारायणी देवी, नन्दलाल जोशी आदि ने ''**अकाल सहायता समिति**'' की स्थापना की, जिसने मेवाड़ के अनेक स्थानों पर अकाल सहायता केन्द्र खोले। प्रजामण्डल ने अकाल सहायता में प्रशंसनीय योगदान दिया।[26]

वर्ष 1940 ई. में मेवाड के प्रमुख शहरों में गांधी जयन्ती बड़े उत्साह से मनाई गई। यह समारोह 18 सितम्बर 1940 से प्रारम्भ हुआ जो अगले 15 दिन तक चलता रहा। महिलाओं ने बड़ी संख्या में प्रभात फेरियों में भाग लिया। 29 सितम्बर, 1940 ई. को सुभद्रादेवी की अध्यक्षता में भीलवाडा में एक सभा हुई। जिसमें कृष्णा कुमारी, कमला कुमारी श्रोत्रिय और निर्मला कुमारी ने भाषण दिये। सुभद्राकुमारी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में स्त्री शिक्षा व स्वदेशी के प्रयोग पर जोर दिया।[27] भारत छोड़ो आन्दोलन के समय मेवाड़ में भी आन्दोलन हुआ, बहुत बड़ी संख्या में सत्याग्रही गिरफ्तार हुए, जिसमें स्त्रियाँ भी पीछे नहीं रही। माणिक्यलाल वर्मा की पत्नी श्रीमती नारायण देवी अपने छ:माह के पुत्र दीनबन्धु को अपने साथ लेकर जेल गई। उनकी बड़ी पुत्री सुशीला व श्रीमती भगवती देवी को भी गिरफ्तार कर लिया गया। इस दौरान छात्राएँ भी गिरफ्तार हुई जो बाद में छोड़ दी गई।

बीकानेर में महाराजा गंगासिंह ने प्रजामण्डल आन्दोलन को सफल नहीं होने दिया। अत: कलकत्ता में निवास करने वाले बीकानेर राज्य के निवासियों ने मघाराम वैद्य, लक्ष्मी देवी आचार्य और उनके पति श्रीराम आचार्य आदि ने कलकत्ता में बीकानेर प्रजामण्डल की स्थापना की। इसकी अध्यक्ष लक्ष्मी देवी को बनाया गया। [28] यद्यपि बीकानेर में महिलाओं को राजनीति में आगे आने का मौका नहीं मिला, क्योंकि बीकानेर सरकार ने राजनीतिक गतिविधियों को पनपने ही नहीं दिया। भरतपुर रियासत में कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं का आना जाना रहता था। अत: भरतपुर में प्रजामण्डल की

गतिविधियाँ 1938 के बाद सक्रिय हुई। 07 से 13 अप्रैल 1939 को जलियाँवाला बाग की घटना की याद में राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया। कार्यकर्त्ता छोटे-छोटे झण्डे लेकर सड़कों पर निकले, जिसमें महिलाओं की भी बड़ी भूमिका रही। पंडित देशराज की पत्नी श्रीमती त्रिवेणी, गौरीशंकर मित्तल की पत्नी श्रीमती भगवती और गोकुलचन्द वर्मा की पुत्री कृष्णा भी सड़कों पर निकली। राष्ट्रीय सप्ताह में श्रीमती त्रिवेणी व कृष्णा खादी का ठेला लेकर गोलबाग पहुँची, यद्यपि वहाँ पर वो एक टाई ही बेच पाई। [29] 1939 में श्रीमती त्रिवेणी देवी को अचनेरा से भरतपुर भेजा गया ताकि वे वहाँ पर कार्यकर्त्ताओं की पत्नियों को भी सत्याग्रह के लिए तैयार कर सके। 10 अप्रैल को त्रिवेणी देवी अपने हाथ में प्रजामण्डल का केसरिया झण्डा लेकर एक जुलूस का नेतृत्व किया तथा प्रजामण्डल का एक मांगपत्र सरकार को दिया।[30] 23 अप्रैल 1939 को श्रीमती त्रिवेणी देवी ने भरतपुर में एक आम सभा में गाना गाया, जिसमें भरतपुरवासियों से आह्वान किया गया कि वे जागे और अपने अधिकारों के लिए सत्याग्रह करें।[31] जिससे भरतपुर की सरकार घबरा गई। अनेक कार्यकर्त्ताओं को जेल में डाल दिया। जेल में स्त्री सत्याग्रहियों के साथ दुर्व्यवहार किया गया और उनके बच्चों को जेल अधिकारियों ने छीन लिया। विरोधस्वरूप स्त्रियों व पुरूषों ने जेल में ही भूख हड़ताल कर दी।[32] महिलाएं यहीं पर नहीं रूकी, 21 सितम्बर 1939 को मास्टर आदित्येन्द्र की पत्नी जब महिलाओं के जुलूस का नेतृत्व कर रही थी, पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उनके साथ उनकी सवा साल की पुत्री कान्ता भी थी। इसके अलावा रेवतीशरण की पत्नी राजेश्वरी देवी और राव गोपीलाल यादव की पत्नी धर्मवती को भी गिरफ्तार कर लिया गया। [33]

भरतपुर प्रजा परिषद् ने 20-21 मार्च 1941 को एक राजनीतिक सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन के दौरान 21 मार्च को महिला सभा भी हुई, जिसकी अध्यक्षता सरस्वती बोहरा ने की। इस सभा में जगतगोपाल की पत्नी ब्रजरानी और पुत्री रामरानी ने भाषण दिये। भाषणों में महिलाओं को अपने घरों व बच्चों को साफ सुथरा रखने, चरखा कातने व देश सेवा की सलाह दी। इस सभा में 15-20 महिलाओं ने भाग लिया।[34] भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान भरतपुर शहर में प्रतिदिन जुलूसों में सरस्वती बोहरा के नेतृत्व में सैकड़ों स्त्रियाँ भाग लेती थी। अगस्त 1942 में सरस्वती बोहरा को भी जो आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु बन चुकी थी, गिरफ्तार कर लिया गया।[35] अब महिलाओं का इतना साहस बढ़ चुका था कि भरतपुर के कुछ दर्जियों ने सैनिक वर्दी की सिलाई का ठेका ले रखा था। आन्दोलन के दौरान प्रजा परिषद् कार्यकर्त्ताओं शान्तिदेवी और किरन देवी ने इन दर्जियों की दुकानों पर जाकर उन्हें चेतावनी दी, कि वे एक सप्ताह के भीतर ठेका छोड़ दे, अन्यथा उन्हें बुरे परिणाम भुगतने पड़ेंगे।[36] 23 मई 1945 को भरतपुर में एक महिला सम्मेलन हुआ, जिसकी अध्यक्षा गणेशीलाल की पत्नी बसन्तीदेवी थी। इस सम्मेलन में युगलकिशोर चतुर्वेदी की पत्नी जमुना देवी ने अपने भाषण में स्त्री शिक्षा और खादी के प्रयोग पर बल दिया।[37] 15 जनवरी 1947 को भरतपुर में घुड़सवारों ने सत्याग्रहियों को रौंद डाला, जिसमें कार्यकर्त्ताओं के साथ श्रीमती जमनादेवी चतुर्वेदी के गम्भीर चोट आई।[38] इस प्रकार भरतपुर रियासत में महिलाओं ने तन-मन से सक्रिय भाग लिया।

कोटा रियासत में भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान सैकड़ों छात्र-छात्राओं ने जुलूसों, प्रदर्शनों में भाग लिया। प्रदर्शनों के इस कार्यक्रम में छात्रा कुसुम गुप्ता का योगदान उल्लेखनीय रहा। फरवरी 1946 को बाँसवाड़ा में जब पुलिस ने त्रिवेदी व धूलजी भाई को गिरफ्तार किया तो महिलाओं ने धारा 144 को तोड़कर प्रधानमंत्री मोहनसिंह मेहता के बंगले को घेर लिया। यहाँ प्रजामण्डल के सहयोगी के रूप में महिला मण्डल भी सक्रिय रहा। अलवर, धौलपुर व करौली में भी प्रजामण्डल आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका सराहनीय रही। डूंगरपुर रियासत में रास्तापाल के स्कूल को बन्द कराने गई पुलिस ने स्कूल के मालिक नानाभाई खाँट को पीट-पीट कर मार डाला तथा अध्यापक सेंगाभाई की कमर में रस्सा बांधकर घसीटते देखकर बारह वर्षीय भील कन्या कालीबाई अपने गुरु को बचाते हुए पुलिस की गोली का शिकार हुई। जिसमें उसका साथ स्थानीय महिलाओं ने भी दिया। कालीबाई की शहादत ने इस क्षेत्र में तनाव पैदा कर दिया, जिससे विवश होकर महारावल को गिरफ्तार लोगों को रिहा करना पड़ा। नाना भाई और कालीबाई की याद में प्रतिवर्ष मेला लगता है।[39] 22 जनवरी 1938 को सिरोही प्रजामण्डल का गठन हुआ। प्रजामण्डल की जय हो के नारे लगाते हुए एक भव्य जुलूस निकाला गया। मध्यरात्रि को सिरोही की महिला कार्यकर्त्ताओं ने प्रजामण्डल के कार्यालय पर तिरंगा झण्डा फहराया।[40] प्रजामण्डल लोकप्रिय होता गया तो सरकार ने उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया। अब भूमिगत गतिविधियाँ होने लगी। जैन भवनों में सभाएँ होती थी, जिनमें महिलाएँ भी उत्साह से भाग लेती थी। प्रजामण्डल की प्रथम जयन्ती 23 जनवरी 1941 ई. को आबूरोड में चार दिवसीय प्रदर्शनी लगाई गई। 24 जनवरी को रेलवे स्टेशन से एक भव्य जुलूस निकाला गया जिसमें 800 स्त्रियों ने भाग लिया। दोपहर में स्त्रियों का एक अधिवेशन हुआ जिसमें लगभग बारह सौ महिलाओं ने भाग लिया। इनमें प्रमुख थी कान्ता बेन (रोहिड़ा) काशी बेन (आबूरोड़), विमला देवी (कालंदरी)

आदि। अधिवेशन में स्त्री शिक्षा प्रशिक्षित दाई एवं स्त्री मताधिकार की माँग की गई। प्रजामण्डल इससे इतना लोकप्रिय हुआ कि लोग प्रजामण्डल को अपना माई-बाप मानने लगे।[41]

इस प्रकार राजस्थान में प्रजामण्डल आन्दोलन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी रही। यद्यपि महिलाओं में इतनी जागृति नहीं थी कि वे बड़ी संख्या में भाग ले। फिर भी महिलाओं में जागृति लाने में नींव की पत्थर साबित हुई। जब पुरूष कार्यकर्त्ताओं को जेल में डाला जा रहा था तब आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ में लेकर उसको आगे बढ़ाने का काम किया। इसके लिए वे अपना घर छोड़कर अपने छोटे बच्चों के साथ जेल तक का सफर भी किया। भारत छोडो आन्दोलन के दौरान महिलाओं ने सामाजिक सुधारों, प्रदर्शन आदि में बढ-चढकर भाग लिया। बड़े स्तर पर गिरफ्तारियाँ दी। इस आन्दोलन के माध्यम से महिलाओं में अपने अधिकारो के प्रति लड़ने की जागरूकता उत्पन्न हुई। आजादी के बाद महिलायें राजनीति में सक्रिय होने लगी एंव बड़े-बड़े पदों पर पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त किया। अत: राजस्थान के स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं का योगदान हमेशा याद किया जाता रहेगा।

संदर्भ सूची

1. राजपूताना मध्यभारत सभा का वार्षिक विवरण 1924, पृ.1
2. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान राज्य अभिलेखागार,बीकानेर 1991 पृ. 255
3. जयपुर प्रजामण्डल, बस्ता नं. 29, फाईल नं. 1 (अ.बी.)
4. शास्त्री, हीरालाल - प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र, अनुपमा प्रकाशन मन्दिर,जयपुर,1970, पृ. 559
5. जयपुर पत्रावली, क्रमांक 4, बस्ता नं. 24, पृ. 61 (अ.बी.) सुमित्रा देवी
6. हिन्दुस्तान टाईम्स 20/03/39
7. जय प्रजा 22/2/39, प्रजामण्डल पत्रावली क्रमांक-4,बस्ता नं.24, प्र.67 (अ.बी.)
8. हिन्दूस्तान टाईम्स 20/03/39
9. सिंह, मोहन, शेखावाटी में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, रविन्द्र प्रकाशन, झुन्झुनू, 1990 पृ. 636
10. जोशी, सुमनेश, राजस्थान में स्वत्रंता संग्राम के सेनानी, ग्रन्थागार नारनोली भवन, जोधपुर, 1973, पृ. 636
11. प्रजामण्डल बुलेटिन मई, 1940, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ.1
12. जैतली, ममता एवं शर्मा, शिवप्रकाश, आधी आबादी का संघर्ष, राजकमल पैपरबैक्स, नई दिल्ली, 2011, पृ. 52
13. वही, पृ. 63
14. सक्सेना, शंकर सहाय, जो देश के लिए जिये,मुक्तवाणी प्रकाशन, बीकानेर, 19772 पृ. 146
15. व्यास, आर.पी., आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास, खण्ड 02, 1998,राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 485
16. इंस्पैक्टर जनरल पुलिस का गुप्त पत्रांक 51201 दिनांक 20/7/1942 (ज.ग.शो.स.)
17. थानवी, बालकृष्ण, मारवाड़ का जन आन्दोलन, राजस्थानी ग्रन्थआगार जोधपुर, 1994, पृ.25
18. जोधपुर कोन्फिडेन्शियल फाइल, आई.जी.पी.सी.सी.बी.,बस्ता नं.1, क्रमांक 2
19. वीर अर्जुन 22/8/42
20. विश्वामित्र 22/9/42
21. पनगड़िया, बी.एल., राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, रा.हि.ग्र.अ.जयपुर, 1988, पृ.70
22. पनगड़िया, बी.एल., राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, रा.हि.ग्र.अ.जयपुर, 1988, पृ. 73
23. उदयपुर सी.बी. बस्ता नं.1 क्रमांक 4, पृ. 06 (अ.बी.)
24. उदयपुर सी.बी., बस्ता नं.1 क्रमांक 4, पृ. 44 (अ.बी.)
25. वही क्रमांक 118 पृ. 67 (अ.बी.)
26. वही पृ. 90
27. उदयपुर, सी.बी. बस्ता नं. 1, क्रमांक 7, पृ.01 (अ.बी.)
28. होम डिपार्टमेन्ट बीकानेर 1937, नं. सी.8, पृ. 1-23 (अ.बी.)
29. भरतपुर सी.बी.0 बस्ता नं. 3 क्रमांक 28 पृ. 163 (अ.बी.)
30. अग्रवाल, निर्मला, राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम के पुरोधा मास्टर आदित्येन्द्र (जयपुर),2003, पृ. 23
31. भरतपुर सी.बी. बस्ता नं.3 क्रमांक 28, पृ. 184
32. भरतपुर प्रजामण्डल की पत्रावली क्रमांक 7, पृ. 14
33. अग्रवाल, निर्मला, उपर्युक्त, पृ.34
34. भरतपुर सी.बी. बस्ता नं.5 क्रमांक 48 द्वितीय, पृ. 914
35. भरतपुर सी.बी. बस्ता नं. 5 क्रमांक 39, पृ. 47
36. भरतपुर सी.बी. बस्ता नं. 8 क्रमांक 50, पृ. 653
37. भरतपुर सी.बी. बस्ता नं.4 क्रमांक 32, पृ. 187
38. पनगडिया, बी.एल., राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, रा.हि.ग्र.अ.जयपुर, 1988, पृ. 102
39. राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, डूंगरपुर पृ. 37-38
40. सिरोही राज्य के प्रधानमंत्री द्वारा महाराव को 3/2/39 को लिखे पत्र
41. सिरोही प्रजामण्डल फाइल नं. 26, पृ. 30

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 13-16

इक्कीसवीं सदी : एशियाई देशों की सदी (ब्रिक्स तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेष सन्दर्भ में)

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

सुरेश चन्द्र काण्डपाल
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत, अलमोड़ा (उत्तराखण्ड)

शोध सारांश

देश इस सदी में राजनीति, अर्थव्यवस्था, विकास दर, धर्म व संस्कृति, जनांकीय, इत्यादि क्षेत्रों में विश्व को प्रभावित करने की स्थिति में रहेंगे। एशियाई विकास बैंक ने वर्ष 2011 में किये गये अपने अध्ययन में पाया कि एशियाई देश अपनी वर्तमान जनसंख्या के अतिरिक्त तीन अरब अतिरिक्त व्यक्तियों को जीवित रहने के मानकों का आनन्द प्रदान करने में सक्षम हो सकते हैं जो कि यूरोप की जनसंख्या के बराबर है। इस सदी के मध्य तक एशियाई देशों का सकल घरेलू उत्पादन 174 खरब अमेरिकी डालर होगा जो कि विश्व के जी.डी.पी. के आधे से अधिक होगा। यद्यपि अध्ययन में यह भी चेताया गया है कि एशियाई देशों की इस हेतु कोई पूर्वनिर्धारित तैयारी नहीं है। ब्रिक्स संगठन के देशों, जिनकी संयुक्त जी.डी.पी. वर्ष 2018 में 18.6 खरब अमेरिकी डालर है, के महत्वपूर्ण एशियाई सदस्य देश चीन तथा भारत हैं। चीन की अर्थव्यवस्था पिछले तीन दशकों से लगभग 10 प्रतिशत की दर से और भारत की अर्थव्यवस्था लगभग 6 से 8 प्रतिशत के बीच में विकास कर रही है। गोल्डमैन शैक की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2043 तक भारत की अर्थव्यवस्था संयुक्त राज्य अमेरिका की अर्थव्यवस्था से बड़ी हो जायेगी। वर्ष 2014 में ब्रिक्स द्वारा स्थापित 'न्यू डेवलपमेण्ट बैंक' का उद्देश्य सदस्य देशों में आधारभूत परियोजनाओं हेतु ऋण उपलब्ध करना है जो कि इनकी अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में मदद करेगा। भारत व चीन, दोनों एशियाई देश संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थापक सदस्य हैं तथा चीन सुरक्षा परिषद का स्थाई सदस्य है और भारत सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता हेतु प्रयासरत् है। इक्कीसवीं सदी के मध्य तक विश्व एकध्रुवीय शक्ति से त्रिध्रुवीय शक्ति में बदल जायेगा। विकास की इन सम्भावनाओं के मध्य एशियाई देश कई चुनौतियों का सामना करने के लिए विवश हैं, जिनका समाधान करने पर ही निश्चित रूप से इक्कीसवीं सदी एशियाई देशों की सदी होगी।

संकेताक्षर : *ब्रिक्स, सेवा प्रदाता, शिखर सम्मेलन, सी.आर.ए., समावेशिता, अभिकरण, अभिसमय*

जिस प्रकार उन्नीसवीं सदी को ब्रिटिश औपनिवेशिक सदी तथा बीसवीं सदी को अमेरिकी सदी माना जाता है, उसी प्रकार इक्कीसवीं सदी एशियाई देशों के विकास तथा प्रभुत्व की सदी है। इस सदी में एशियाई देश राजनीति, अर्थव्यवस्था, विकास दर, धर्म व संस्कृति, जनांकीय, इत्यादि क्षेत्रों में विश्व को प्रभावित करने की स्थिति में रहेंगे। एशियाई विकास बैंक ने वर्ष 2011 में किये गये अपने अध्ययन में पाया कि वर्तमान जनसंख्या के अतिरिक्त तीन अरब और एशियाई व्यक्ति जीवित रहने के मानकों (Living Standrads) का आनन्द ले सकते हैं जो कि यूरोप की जनसंख्या के बराबर है। इस सदी के मध्य तक एशियाई देशों का सकल घरेलू उत्पादन 174 खरब अमेरिकी डालर होगा जो कि विश्व के जी.डी.पी. के आधे से अधिक होगा। एशिया लगभग 300 वर्ष पहले जैसी प्रभावी आर्थिक स्थिति हासिल कर लेगा, जो उसे यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व प्राप्त थी। यद्यपि अध्ययन में यह भी चेताया गया है कि एशियाई देशों की इस हेतु कोई पूर्वनिर्धारित तैयारी नहीं है।[1] गोल्डमैन शैच तथा ब्रिक्स के हाल ही के आर्थिक पूर्वानुमानों के अनुसार एशिया की अर्थव्यवस्था प्रबल होती जा रही है। सकल घरेलू उत्पाद की दृष्टि से वर्ष 2050 तक चीन की अर्थव्यवस्था विश्व में प्रथम स्थान पर तथा भारत की अर्थव्यवस्था द्वितीय स्थान पर होगी। इसमें यह भी कहा गया है कि तब चीन विश्व का 'सर्वोच्च औद्योगिक कार्यशाला' वाला और भारत 'सर्वाधिक सेवा प्रदाता'वाला देश होगा।[2] एशियाई देशों के मध्य आपसी सहयोग व मजबूत सम्बन्ध और उनके सामरिक संयुक्त क्रियाकलाप, वास्तव में, इक्कीसवीं सदी को एशियाई देशों

की सदी बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

आर्थिक संगठन 'ब्रिक्स'(BRICS) की स्थापना सन् 2009 में 'ब्रिक' के रूप में हुई थी, जिसके संस्थापक सदस्य ब्राजील, रूस, भारत तथा चीन थे। इस संगठन का उद्देश्य वैश्विक आर्थिक स्थिति व वित्तीय संस्थानों में सुधार करना तथा भविष्य में सदस्य देशों के बीच बेहतर सहयोग सुनिश्चित करना था। वर्ष 2010 में दक्षिण अफ्रीका को इस संगठन का सदस्य बनाया गया तथा संगठन का नाम ब्रिक से ब्रिक्स कर दिया गया। ब्रिक्स संगठन के सदस्य देशों का औपचारिक शिखर सम्मेलन प्रतिवर्ष होता है। इस संगठन का पहला शिखर सम्मेलन 16 जून 2009 को रूस के येकाटेरिनबर्ग में, दूसरा शिखर सम्मेलन 16 अप्रैल 2010 को ब्रासीलिया (ब्राजील) में, तीसरा शिखर सम्मेलन 14 अप्रैल 2011 को सान्या (चीन) में, चौथा शिखर सम्मेलन 29 मार्च 2012 को नई दिल्ली (भारत) में, पाँचवां शिखर सम्मेलन 26-27 मार्च 2013 को डरबन (दक्षिण अफ्रीका) में, छठा शिखर सम्मेलन 15-16 जुलाई 2014 को फोर्टालेजा (ब्राजील) में, सातवां शिखर सम्मेलन 8-9 जुलाई 2015 को ऊफा (रूस) में, आठवां शिखर सम्मेलन 15-16 अक्टूबर 2016 को बेनोलिम, गोवा (भारत) में व नवां शिखर सम्मेलन 3-5 सितम्बर 2017 को जिय़ामेन (चीन) में, दसवां शिखर सम्मेलन 25-27 जुलाई 2018 को जोहानस्बर्ग (दक्षिण अफ़्रीका) में सम्पन्न हुआ और ग्यारहवां शिखर सम्मेलन 2019 में ब्राजील में सम्पन्न होगा। ब्रिक्स संगठन का छठा शिखर सम्मेलन (15-16 जुलाई 2014 को फोर्टालेजा में) इस दृष्टि से महत्वपूर्ण था कि इसमें सदस्य देश 'विकास वित्त की उपलब्धता तथा नकदी संकटों से निपटने हेतु' एक 'ब्रिक्स विकास बैंक' (जिसे अब 'न्यू डेवलपमेण्ट बैंक' कहा जाता है) की स्थापना करने के लिए सहमत हुए। न्यू डेवलपमेण्ट बैंक की अधिकृत पूँजी 100 अरब डॉलर निर्धारित की गयी तथा 100 अरब डॉलर की 'आपात आरक्षित विदेशी विनिमय व्यवस्था' (Contingent Reserve Arrangement - CRA) रखी गयी, जिसमें सर्वाधिक 41 अरब डॉलर का योगदान चीन का, 18-18 अरब डॉलर का योगदान भारत, रूस व ब्राजील का, और शेष 5 अरब डॉलर का योगदान दक्षिण अफ्रीका का निश्चित किया गया। सी.आर.ए. का उद्देश्य सदस्य देशों को वैश्विक तरलता दबावों से सुरक्षा प्रदान करना, उनकी मुद्रा के 'वैश्विक वित्तीय दबावों'से अत्यधिक प्रभावित होने की स्थिति में सहायता करना, आर्थिक अस्थिरता और अनिश्चित वृहत् आर्थिक वातावरण की दशा में सुरक्षा प्रदान करना है। सी.आर.ए. को सामान्यतया अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रतिद्वन्दी के रूप में देखा जा रहा है और न्यू डेवलपमेण्ट बैंक के साथ इसे दक्षिण-दक्षिण सहयोग के रूप माना जा रहा है।

जियामेन (चीन) में सम्पन्न हुए ब्रिक्स संगठन के नवें शिखर सम्मेलन में सदस्य देशों ने न्यायसंगत अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए वैश्विक आर्थिक नीतियों में सुधार लाने तथा इसमें संचार व समन्वय बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध रहने का संकल्प व्यक्त किया। सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय शान्ति व स्थिरता को व्यापक रूप से रेखांकित किया गया और घोषणापत्र में यह भी कहा गया कि ब्रिक्स देश दुनिया भर में सभी आतंकवादी हमलों की निन्दा करते हैं जिनमें ब्रिक्स के सदस्य देशों पर भी हुए हमले सम्मिलित हैं। घोषणापत्र में पहली बार पाकिस्तान में स्थित आतंकवादी संगठन लश्कर-ए-तैयबा, जैश-ए-मोहम्मद और हक्कानी नेटवर्क की जोरदार निन्दा की गयी, जो कि भारत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक बड़ी जीत है। घोषणापत्र में सदस्य देशों के बीच आर्थिक विकास की अच्छी परिपाटियों तथा अनुभवों के आदान-प्रदान को बढ़ावा देना और अन्तर-सम्बन्धी विकास प्राप्त करने के लिए बुनियादी ढाँचे व वित्तीय एकीकरण की सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्धता व्यक्त की गयी। जियामेन घोषणापत्र में गहरी पारम्परिक मित्रता के द्वारा सदस्य देशों के मध्य व्यक्ति से व्यक्ति संवाद, सांस्कृतिक मूल्यों का आदान-प्रदानव आपसी समझ को बढ़ाने पर बल दिया गया और दीर्घकालीन व सन्तुलित जनसंख्या विकास को बढ़ावा देने तथा वर्ष 2020 तक जनसंख्या सम्बन्धी मामलों पर सहयोग जारी रखने की प्रतिबद्धता पर भी बल दिया गया। ब्रिक्स संगठन के जोहानसबर्ग में सम्पन्न हुए 10 वें शिखर सम्मेलन में सदस्य देशों ने लोकतन्त्र, पारस्परिक आदर, समान सम्प्रभुता, सहयोग में अभिवृद्धि तथा समावेशिता के सिद्धान्त को अपनाने, बहुपक्षीय संस्थाओं को मजबूत करने, सदस्य देशों के बीच अन्तर देशीय व्यापार को मजबूत करने और संरक्षणवाद व एकांगीवाद के विरूद्ध लड़ने का संकल्प व्यक्त किया।[3] जोहानस्बर्ग घोषणापत्र में सदस्य देशों के बीच वर्ष 2030 तक सतत् विकास का लक्ष्य हासिल करने, संयुक्त राष्ट्र तापमान परिवर्तन पर रूपरेखा अभिसमय 1992 के अनुसार कार्य करने, ऊर्जा के क्षेत्र में सहयोग करने व सार्वभौमिक ऊर्जा की पहुँच को बनाये रखने, ब्रिक्स कृषि अनुसन्धान मंच की स्थापना में सहयोग करने, पर्यावरण व जैव विविधता का संरक्षण करने, लैंगिक असमानता दूर करने व महिला अधिकारों का संरक्षण करने, युवाओं का विकास व रोजगार, नगरीकरण, प्रवासियों व वृद्धजनों की संरक्षा, आतंकवाद की रोकथामऔर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा को बढ़ावा देने की प्रतिबद्धता भी व्यक्त की गयी।

ब्रिक्स संगठन के देशों, जिनकी संयुक्त जी.डी.पी. वर्ष 2018 में 18.6 खरब अमेरिकी डालर है, जो कि सकल विश्व उत्पाद (Gross world product) का 23.2 प्रतिशत है और इनके विदेशी आरक्षित कोष में संयुक्त रूप से लगभग 4.46 खरब अमेरिकी डॉलर जमा हैं।[4] ब्रिक्स संगठन के महत्वपूर्ण एशियाई सदस्य देश चीन तथा भारत हैं। चीन की अर्थव्यवस्था पिछले तीन दशकों से लगभग 8 से 10 प्रतिशत की दर से विकास कर रही है। भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर वर्ष 2005-06 में 8 प्रतिशत, वर्ष 2006-07 में 9.2 प्रतिशत, वर्ष 2007-08 में 9.3 प्रतिशत, वर्ष 2008-09 में 6.7 प्रतिशत, वर्ष 2009-10 में 8.6 प्रतिशत तथा वर्ष 2010-11 में 8.9 प्रतिशत रही है।[5] गोल्डमैन शैच की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2043 तक भारत की अर्थव्यवस्था संयुक्त राज्य अमेरिका की अर्थव्यवस्था से बड़ी हो जायेगी। वर्ष 2014 में ब्रिक्स द्वारा स्थापित 'न्यू डेवलपमेण्ट बैंक' का उद्देश्य सदस्य देशों में आधारभूत परियोजनाओं हेतु ऋण उपलब्ध करना है जो कि इनकी अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में मदद करेगा। इन दोनों अर्थव्यवस्थाओं का विकास उदारीकरण की मात्रा, भूमण्डलीयकरण तथा आन्तरिक उपभोक्ता बाजार पर भी निर्भर करेगा क्योंकि भारत व चीन की जनसंख्या विश्व में लगभग 2.25 अरब के उपभोक्ता बाजार हैं। वस्तुओं व सेवाओं पर सस्ती श्रम लागत की उपलब्धता के कारण ये देश अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में वैश्विक प्रतिस्पर्धी दबाव डालने के लिए भी सक्षम हैं। वर्तमान में, उत्तरी अमेरिका के बाजार एशिया में निर्मित उपभोक्ता वस्तुओं से भरे पड़े हैं जिनमें उपभोक्ता वस्तुओं के साथ-साथ श्रेष्ठ व विलासितापूर्ण वस्तुएं भी सम्मिलित हैं।

भारत व चीन, दोनों एशियाई देश 24 अक्टूबर 1945 को स्थापित संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थापक 51 सदस्य देशों में सम्मिलित हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा को बनाये रखना; राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करना; आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या मानव कल्याण सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने तथा मूलवंश, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किये बिना मूल अधिकारों व स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान की अभिवृद्धि तथा प्रोत्साहन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाना, हैं।[6] संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रमुख अंग महासभा, सुरक्षा परिषद, आर्थिक व सामाजिक परिषद, न्यासिता परिषद, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और सचिवालय हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट अभिकरण अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO), खाद्य तथा कृषि संगठन (FAO), संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन (UNESCO), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक (IBRD), अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (IFC), अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ (IDA), अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF), अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संगठन (ICAO), सार्वभौमिक डाक संघ (UPU), अन्तर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ (ITU), विश्व मौसम विज्ञान सम्बन्धी संगठन (WMO), अन्तर्राष्ट्रीय सामुद्रिक संगठन (IMO), अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष(IFAD), विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन (WIPO) और संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन (UNIDO) हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा को बनाये रखने के लिए अधिकृत संयुक्त राष्ट्र संघ का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रमुख अंग 'सुरक्षा परिषद', जिसके पाँच स्थाई तथा दस अस्थाई सदस्य हैं, का चीन स्थाई सदस्य है और भारत'जी-4' संगठन के माध्यम से इसकी स्थाई सदस्यता हेतु प्रयासरत् है।

भारत का मानना है कि वह विश्व में चीन के बाद सबसे अधिक जनसंख्या वाला तथा विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है;उसने संयुक्त राष्ट्र शान्ति रक्षण कार्यवाही में महत्वपूर्ण योगदान किया है, और वह पूर्ण निशस्त्रीकरण तथा परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण उपयोग का पक्षधर है।[7] भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के बजट में 29 जनवरी 2018 को 17,914,311अमेरिकी डॉलर का योगदान भी किया है।[8] भारत संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उसके सभी विशिष्ट अभिकरणों का सदस्य देश है। भारत ने कोरिया (1950-54), पश्चिम एशिया (1956-66), कोंगो (1960-64), कम्बोडिया (1992-93), मोजाम्बिक (1992-94), सोमालिया (1993-94), रवाण्डा (1994-96), अंगोला (189-99), सियरा लियोल (1999-2001), इथोपिया (2006-08), लेबनान (1998-2014), मोनुस्को, कोंगो (2005), गोलन पहाड़ियों (2006-12), आइवरी कॉस्ट (2004), लाइबेरिया (2007) इत्यादि में लगभग 43 से अधिकसंयुक्त राष्ट्र शान्ति रक्षण अभियानों में अपने सैन्य बल तथा राहत दल भेजकर विश्व शान्ति में महत्वपूर्ण योगदान किया है। भारत ने जी-77, गुट-निरपेक्ष आन्दोलन तथा अन्य संगठनों व मंचों के माध्यम से भी विश्व की अनेक समस्याओं जैसे -रंगभेद, औपनिवेशवाद, भुखमरी, जातीय हिंसा, आतंकवाद, पर्यावरण प्रदूषण, मानवाधिकार हनन, वैश्विक तापन के खिलाफ आवाज उठायी है। भारत सुरक्षा परिषद का स्थाई सदस्य न होते हुए भी विश्व की राजनीति को प्रभावित करने की स्थिति में है। भारत ने सुरक्षा परिषद के अतिरिक्त विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के संगठन में सुधार हेतु भी समय-समय पर आह्वान किया है, और वैश्विक तापमान

परिवर्तन व एजेण्डा 2030 जैसे मुद्दों पर अपने दृष्टिकोण को कई अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर चर्चा करने के साथ-साथ संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों में भी सम्मिलित कराया है। भारत के प्रभाव से ही संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 11 दिसम्बर 2014 को प्रस्ताव द्वारा 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया।[9] चीन ने सुरक्षा परिषद के स्थाई सदस्य होने के कारण अभी तक आठ बार अपनी वीटो शक्ति का प्रयोग किया है और वह संयुक्त राष्ट संघ के बजट में 7.9 प्रतिशत का योगदान देता है। सोवियत संघ के पतन के बाद सामरिक दृष्टि से विश्व एकध्रुवीय शक्ति में बदल चुका है, लेकिन इक्कीसवीं सदी के मध्य तक चीन व भारत के आर्थिक रूप से शक्तिशाली होने पर पुन: विश्व त्रिध्रुवीय शक्ति में बदल जायेगा। भारत व चीन ने परमाणु ऊर्जा, मिसाइल प्रक्षेपण, कृत्रिम उपग्रह तथा अन्तरिक्ष विज्ञान में काफी उन्नति कर चुके हैं तथा इस सदी के मध्य तक ये विश्व को नेतृत्व प्रदान करने की स्थिति में होंगे।

विकास की इन सम्भावनाओं के मध्य एशियाई देश कई चुनौतियों का सामना करने के लिए विवश हैं, जिनमें राजनीतिक, आर्थिक व पर्यावरणीय समस्याएं और अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका प्रमुख रूप से हैं। विकास की ऊँची दर चीन जैसे देश में पर्यावरणीय असन्तुलन, आर्थिक मन्दी, असमानता और राजनीतिक क्रान्ति भी ला सकती है। भारत में कमजोर संरचनात्मक ढांचा, पर्यावरण प्रदूषण, सीमित परम्परागत ऊर्जा स्रोत, ग्लोबल वार्मिंग व जलवायु परिवर्तन, क्षेत्रवाद, आतंकवाद व अलगाववाद, बढ़ती जनसंख्या, बेरोजगारी, असमानता, बढ़ता भ्रष्टाचार इत्यादि प्रमुख समस्याएं हैं। एशियाई देशों में राजनीतिक व आर्थिक चुनौतियों के अतिरिक्त दीर्घकालीन समृद्ध नागरिक समाजों के निर्माण की भी समस्या है जो अपने परिश्रम से प्राप्त प्रतिफल का आनन्द ले सकें।[10] एक समृद्ध नागरिक समाज मूलभूत कानून व व्यवस्था, बीमारियों का नियन्त्रण, पर्यावरण संरक्षण, भ्रष्टाचार व सरकारी नीतियों, परमाणु सुरक्षा इत्यादि से सम्बन्धित जन आक्रोश व निराशा से निपटने में समर्थ होता है। इक्कीसवीं सदी, एशियाई देशों की सदी बनने के लिए यह भी आवश्यक है कि उनके बीच राजनीतिक, सांस्कृतिक व व्यापारिक सम्बन्धों में सुदृढ़ता आये, और एशियाई देश अफ्रीका व लैटिन अमेरिकी देशों के साथ व्यापार को बढ़ायें। एशिया तथा हिन्द महासागर क्षेत्र में चीन द्वारा अपनी सामरिक शक्ति को बढ़ाने, चीन व पाकिस्तान के बीच गठजोड़ तथा चीन की कूटनीति भी एशियाई देशों में चीन के प्रति अविश्वास प्रकट कर देती है। भारत व चीन के बीच सीमा विवाद, चीन के भारत में प्रवेश करने वाली नदियों से जल रोकने सम्बन्धी विवाद तथा तिब्बती धार्मिक गुरु दलाईलामा के आश्रय, जिसके बाद सन् 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण किया था, के कारण अभी भी दोनों एशियाई शक्ति एक दूसरे को शंका की दृष्टि से देखते हैं। यदि दोनों एशियाई शक्तियां आपसी विवाद का समाधान करने के साथ-साथ पर्यावरणीय असन्तुलन, पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों की कमी, संरचनात्मक पिछड़ापन, संस्थानिक अकुशलता, भ्रष्टाचार व आतंकवाद जैसी चुनौतियों को नियन्त्रित करने की दिशा में आगे बढें.तो निश्चित रूप से विकास के उच्च स्तर को प्राप्त किया जा सकता है, जिससे कि इक्कीसवीं सदी एशियाई देशों के विकास तथा प्रभुत्व की सदी बन सके।

सन्दर्भ सूची

1. एशिया 2050: रियलाइजिंग द एशियन सेंचूरी बाई ए.डी.बी., सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 3
2. चान, आर.सी., एशियाज फ्यूचर इन अ ग्लोबलाइज्ड वर्ल्ड, इनटरनेशनल पॉलिटिक, दिसम्बर, 1999
3. उद्देशिका, क्रमाँक 5, दसवां ब्रिक्स शिखर सम्मेलन घोषणापत्र, (शिखर सम्मेलन 25 से 27 जुलाई 2018) सेन्डटन कन्वेंशन सेन्टर, जोहान्सबर्ग,दक्षिण अफ्रीका, पृ. 1
4. विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट 'वर्ल्ड इकॉनामिक आउटलुक' अप्रैल, 2013, पृ. 5
5. विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित नेशनल अकाउन्ट डाटा, ओ.ई.सी.डी. नेशनल अकाउन्ट डाटा फाइले, 2018
6. संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर का अनुच्छेद 1
7. अग्रवाल, डॉ. एच.ओ., इन्टरनेशनल लॉ एण्ड ह्यूमन राइट्स सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2003, पृ. 342
8. संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 24 मई 2018 को प्रकाशित रिपोर्ट तथा यूनाइटेड नेशन्स हैन्डबुक, 2018-19, पृ. 410
9. संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा दिनांक 11 दिसम्बर 2014 को पारित प्रस्ताव संख्या 69/131
10. मैक्डॉनाल्ड, स्कॉट बी. एण्ड लेमको, जोनाथन, एशियाज् राइज इन ट्वेन्टी फस्ट्र सेन्चूरी, प्रेजर, केलीफोर्निया, 2011, पृ. 152

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 17-21

जलवायु परिवर्तन एवं सतत् पोषणीय विकास

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

प्रेम सोनवाल

सहायक आचार्य, भूगोल विभाग

शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय, सवाई माधोपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

बढ़ती वैश्विक जनसंख्या और अपने जीवन के स्तर को ऊंचा करने की मनुष्य की बढ़ती आकांक्षाओं के कारण अनेक प्रकार के नये तकनीकी आविष्कार हुए है। इन आविष्कारों और नवाचारों ने जीवन को सरल एवं आरामदायक बना दिया है किन्तु इसके बदले वायु, भोजन, जल, खनिज और ऊर्जा की मांग बढ़ गई है। पृथ्वी की इन संसाधनों के नवीकरण की क्षमता सीमित होने के कारण ये संसाधन भी सीमित है। हमारे चारों ओर प्राकृतिक संसाधनों के तीव्रता से क्षरण ने वैश्विक जलवायु में अभूतपूर्व परिवर्तन किये हैं। जिसके दुष्परिणामों के फलस्वरूप पृथ्वी पर मानव एवं प्राणी जातियों के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है। वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा बढ़ने से पृथ्वी की जलवायु में दीर्घकालिक परिवर्तन से ग्लोबल वार्मिंग होती है जिससे जलवायु में परिवर्तन होता है। इसके कारण ऋतु परिवर्तन, वैश्विक तापमान में वृद्धि, समुद्र के जल-स्तर में बढ़ोतरी, फसल चक्र में बदलाव के कारण न केवल हमारे बल्कि हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए भी भू-स्खलन, सुनामी, अकाल, महामारी, जन-पलायन तथा स्वास्थ्य संबंधी आपदाओं की संख्या में बढ़ोतरी होगी। अत: हमें ऐसे संपोषणीय समाधान की आवश्यकता है जो अस्थायी न हो बल्कि उनमें भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं का ध्यान रखा गया हो। पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों के सीमित होने के कारण इनका उपभोग तर्कसंगत होना चाहिए।

संकेताक्षर : *ग्रीन हाउस गैस, सतत् विकास, हॉटस्पॉट, जैव विविधता*

पिछले कुछ वर्षों में विश्व की जलवायु में अचानक तेजी से बदलाव हो रहा है। जिसका कारण ग्रीन हाउस प्रभाव है। पृथ्वी का वातावरण जिस प्रकार से सूर्य की कुछ ऊर्जा को ग्रहण करता है, उसे ग्रीन हाउस प्रभाव कहते हैं। पृथ्वी के चारों ओर ग्रीन हाउस गैसों की एक परत होती है। इन गैसों में कार्बनडाईऑक्साइड, मिथेन व नाइट्रस ऑक्साइड शामिल है। यह परत सूर्य की अधिकांश ऊर्जा को सोख लेती है और फिर इसे पृथ्वी की चारों दिशाओं में पहुंचाती है। जिससे पृथ्वी की सतह गरम रहती है। अगर यह परत नहीं होती तो पृथ्वी 30 डिग्री सेण्टीग्रेड ज्यादा ठण्डी होती और पृथ्वी पर जीवन नहीं होता। हम लोग उद्योगों और कृषि के जरिये जो गैसें वातावरण में छोड़ रहे हैं उससे ग्रीन हाउस गैसों की परत मोटी होती जा रही है। यह परत अधिक ऊर्जा सोख रही है और पृथ्वी का तापमान बढ़ा रही है इसे ही ग्लोबल वार्मिंग कहते हैं। जिससे जलवायु में परिवर्तन हो रहा है। (आई.पी.सी.सी.) इण्टर गवर्नमेन्टल पेनलऑन क्लाइमेंट चेंज के अनुसार ग्रीन हाउस गैसों में सबसे ज्यादा उत्सर्जन कार्बनडाईऑक्साइड का होता है। जिसमें सबसे ज्यादा कोयले के इस्तेमाल, उसके पश्चात् जंगलों की कटाई से कार्बनडाईऑक्साइड गैस बढ़ रही है। मानवीय गतिविधियों से दूसरी ग्रीन हाउस गैसों में मिथेन और नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन भी बढ़ा है। जलवायु परिवर्तन का असर मनुष्यों के साथ-साथ वनस्पतियों और जीव-जंतुओं पर देखने पर मिल रहा है। पेड़-पौधों पर फूल और फल समय से पहले लग रहे हैं। और जानवर अपने क्षेत्रों से पलायन कर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप पीने के पानी की कमी, खाद्यान्न उत्पादन में कमी, बाढ़, तूफान, सूखा, गरम हवाएं चलने की घटना बढ़ रही है। नासा के अनुसार जलवायु परिवर्तन मुख्यत: जीवश्म ईंधन को जलाने से उत्पन्न हुई वैश्विक परिघटनाओं की एक विस्तृत श्रृंखला है जो पृथ्वी के वायुमण्डल में उष्मा अवशोषक गैसों में वृद्धि करती है। इन परिघटनाओं में वैश्विक तापन के कारण उत्पन्न हुई तापमान में वृद्धि, समुद्री जल-स्तर में वृद्धि, ग्रीनलैण्ड़, अंटार्कटिका, आर्कटिक हिमावरण

और विश्व भर में पर्वतीय हिमनदों में कमी, फूल/पौधों के प्रस्फुटन के समय में परिवर्तन और चरम मौसमी परिघटनाओं जैसे परिवर्तन शामिल हैं।

जलवायु परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारक

प्राकृतिक कारण : पृथ्वी की जलवायु कई प्राकृतिक कारकों से प्रभावित होती है जिसमें महाद्वीपीय प्रवाह, ज्वालामुखी, महासागरीय धारायें, पृथ्वी का अपने अक्ष पर झुकाव तथा धूमकेतु एवं उल्कापिण्ड शामिल है। प्राकृतिक कारक दीर्घकाल के लिए जलवायु परिवर्तन को प्रभावित करते हैं और हजारों से लाखों वर्षों तक बने रहते हैं।

मानव जनित कारक : मानव जनित कारकों का परिणाम अल्पकालिक जलवायु परिवर्तन होता है। इसमें पृथ्वी के ऊर्जा संतुलन में परिवर्तन शामिल है जो मौसम और जलवायु में परिवर्तन को बढ़ावा देता है। मानव जनित परिवर्तन ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि या वनों की कटाई, शुष्क भूमि पर सिंचित कृषि आदि के माध्यम से भूमि उपयोग में परिवर्तन के द्वारा हो सकता है।

किसी भी स्थान की मौसम संबंधी दशाओं में दीर्घकालीन परिवर्तन को जलवायु परिवर्तन कहा जाता है। जलवायु परिवर्तन का संबंध वायुमण्डल के ऊष्मा संतुलन, आर्द्रता, मेघाच्छन्नता तथा वर्षा में त्वरित एवं अचानक अल्पकालिक परिवर्तन या दीर्घकालिक परिवर्तन से होता है। जलवायु में इस तरह के परिवर्तन या तो बाह्य कारकों या आंतरिक कारकों या दोनों प्रकार के कारकों द्वारा प्रभावी होते हैं। बाह्य कारकों में पृथ्वी की कक्षीय विशेषताओं में परिवर्तन, सौर परिवर्तनशीलता, सूर्य के प्रकाश मण्डल से विकिरण में उतार-चढ़ाव, ज्वालामुखी, वायुमण्डलीय एयरोसॉल, कार्बनडाईऑक्साइड आदि के संबंध में वायुमण्डलीय संघटन में परिवर्तन आदि है। आंतरिक कारकों में वायुमण्डल-जलमण्डल-स्थलमण्डल- हिममण्डल के मध्य ऊर्जा का गमन तथा विनिमय अधिक महत्वपूर्ण होता है।[1]

हालांकि जलवायु परिवर्तन सामान्य प्रक्रिया है। पर ग्लोबल वार्मिंग के जलवायु पर प्रभाव पिछले कुछ दशकों में तेजी से सामने आये है। विकास की अंधी दौड़ में मानव द्वारा प्रकृति के साथ में इस प्रकार की छेड़छाड़ जारी रही तो वर्ष 2080 में 60 करोड़ से अधिक लोग भुखमरी के शिकार हो जायेंगे और इससे कई अधिक संख्या में लोगों को पीने के पानी की किल्लत पड़ेगी। कई शहर और कस्बे वीरान हो जायेंगे और वहां के निवासियों को अन्य स्थानों पर जाकर बसना पड़ेगा। पृथ्वी को ठण्डा रखने के लिए ग्रीनलैण्ड और पश्चिम अंटार्कटिका की बर्फ तीन गुना अधिक रफ्तार से पिघल रही है। पृथ्वी यानि अपना घर खतरे में है और साथ ही इसकी वह पारिस्थितिकी जो इसे मानव जाति के रहने योग्य बनाती है। 150 वर्षों से जबसे औद्योगिक युग शुरू हुआ है, विश्व कोयले, गैस और कच्चे तेल के रूप में कार्बन बड़ी मात्रा में पृथ्वी से निकाल रहा है और इसे जलाकर हर 24 घण्टे में 7 करोड़ टन कार्बनडाईऑक्साईड वायुमण्डल में फैल रही है। जिसके कारण पृथ्वी व सूर्य के बीच तापीय संतुलन गड़बड़ा चुका है। वर्तमान जलवायु मॉडल का अनुमान है कि वर्ष 1990 की तुलना में वर्ष 2100 तक पृथ्वी के औसत तापमान में 1.4 से 5.8 डिग्री सेण्टीग्रेड तक की वृद्धि होगी। जल्द ही कार्बनडाईऑक्साईड के उत्सर्जन में कमी नहीं की गई तो विकट समस्या उपस्थित हो जायेगी जिसकी मानव जाति ने कल्पना भी नहीं की होगी। ऐसा हुआ तो हमारी सभ्यता व आने वाली पीढ़ियों का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा।[2]

अभी हाल ही में जलवायु परिवर्तन पर जारी विश्व बैंक की रिपोर्ट दक्षिण एशिया के हाटस्पॉट: जीवन स्तर पर तापमान एवं वर्षा में परिवर्तन का प्रभाव (2018) में बताया कि भारत के जीवन-स्तर में तेजी से गिरावट दर्ज हो रही है। रिपोर्ट में बताया कि वर्ष 2050 तक यह गिरावट अधिकतम 10 प्रतिशत तक हो सकती है। इसकी चपेट में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छतीसगढ़, राजस्थान व महाराष्ट्र जैसे कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले राज्य होंगे। इसके चलते कही सूखा तो कही बाढ़ का कहर होगा जिससे जन-जीवन के प्रभावित होने की आशंका है। इससे भारत का सामाजिक-आर्थिक ताना-बाना बड़े पैमाने पर प्रभावित होगा। जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ते तापमान व मानसूनी वर्षा के बदलते स्वरूप का असर देश की करीब 60 करोड़ आबादी पर पड़ेगा एवं देश की जी.डी.पी. में 2.8 प्रतिशत दर की कमी होगी। कृषि उत्पादकता में कमी व स्वास्थ्य संबंधी एवं श्रम उत्पादन में कमी होगी। इसकी चपेट में आने वाले 10 सबसे प्रभावित हाटस्पॉट जिलों में महाराष्ट्र के 7 (विदर्भ क्षेत्र के), छतीसगढ़ के राजनांद गांव व दुर्ग और मध्यप्रदेश का होशंगाबाद होगा। ये सभी जिले अगले 32 सालों में देश के सबसे गरम स्थान होंगे। यदि भारत ने वर्ष 2015 में हुए जलवायु परिवर्तन पेरिस समझौते के उपायों को नहीं अपनाया तो वर्ष 2050 तक तापमान में 1.5 डिग्री सेण्टीग्रड से 3.0 डिग्री सेण्टीग्रेड तक की वृद्धि होने की संभावना है। इस रिपोर्ट में जलवायु परिवर्तन संकेत के प्रभाव को कम करने की अनुशंसाओं प्रभावी शमन के लिए स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार लक्षित नीतियों एवं कार्यवाहियों की आवश्यकता है। कौशल, स्वास्थ्य, ज्ञान, बेहतर आधारभूत संरचना एवं एक विविधिकृत अर्थव्यवस्था में निवेश, घरेलू, जिला एवं राष्ट्रीय स्तर पर जलवायु हॉटस्पॉट को कम करेगा। [3]

जलवायु परिवर्तन की धमक तेज होती जा रही है। वर्ष 2018 के जून और जुलाई महीनों में अकेले कैलीफोर्निया के वनों में 140 बार आग लगी। ग्रीस में जंगलों में लगी आग से 80 लोग मारे गये। यूरोप गरम हवाओं से तपता रहा, भारत में बिना मौसम के आये धूल के तूफानों से 500 से अधिक लोगों की जान ले ली। जापान तथा अन्य जगहों पर बेतहाशा बारिश होने से फसल नष्ट हो रही है, लोगों के घरों को नुकसान पहुंच रहा है। ये सारी घटनायें असामान्य है। आने वाले दिनों में अजीबोगरीब मौसम की यह तीव्रता और अधिक बढ़ने वाली है। विश्व मौसम संगठन के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण यूरोप में गरम हवाओं के थपेड़ों की तादाद दोगुनी हो सकती है। दक्षिण अफ्रीका के केपटाउन शहर में सूखे की आशंका में तीन गुना बढ़ोतरी हुई है। अभी हाल ही में इस शहर में पानी खत्म होते-होते बचा है। यानि डे जीरो से बचा है। द इकोनोमिस्ट ने हाल ही में एक आलेख में बताया है कि कैसे सन् 1800 के बाद पहली बार ब्रिटेन ने अपना पहला कोयलामुक्त दिवस बनाया जबकि भारत लगाातार कोयला जला रहा है। दुनिया अभी जीवाष्म ईंधन से अपना लगाव कम नहीं कर पा रही है। नवीकरणीय ऊर्जा की बात करें तो जर्मनी के अलावा अभी आपूर्ति बहुत कम है। दरअसल बीते वर्ष कोयले की मांग में ईजाफा देखने को मिला। तेल व गैस में निवेश बढ़ा और जलवायु परिवर्तन संबंधी तमाम उपाय अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। सत्य यह है कि भारत जैसे देशों को आगे बढ़कर जलवायु परिवर्तन की आर्थिक और मनुष्यगत लागत पर बात करनी चाहिए। यह वैश्विक मंच पर एक त्रासदी की तरह घटित हो रही है। हमें यह मांग करनी चाहिए कि दुनिया तेजी से इस दिशा में तेजी से कार्यवाही करें। [4]

मानवता को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचाने की दिशा में कार्य करने का दायित्व किसी एक देश का नहीं बल्कि पूरे विश्व का है। रियो में 1992 में संयुक्त राष्ट्र प्रारूप संधि (यू.एन.एफ. सी.सी.सी.) को औपचारिक रूप दिये जाने के साथ ही इस दिशा में गंभीर वैश्विक प्रयास आरंभ हुए। दिसम्बर 2015 में पेरिस में संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलन के 21वें सत्र में देश अपने वांछित राष्ट्रीय संकल्पित योगदान (आई.एन.डी.सी.) प्रस्तुत करेंगे। भारत पहले ही अपना आई.एन.डी.सी. बता चुका है, जिसका लक्ष्य स्वच्छ एवं अक्षय ऊर्जा को प्रोत्साहित कर, गैर-जीवाश्म ईंधन स्त्रोतों को प्रयोग कर 2.5 से 3 अरब कार्बनडाईऑक्साईड के समतुल्य अतिरिक्त कार्बन सिंक तैयार करने के लिए वन का विस्तार बढ़ा कर, कार्बन कम उत्पन्न करने वाले एवं लचीले शहरी केन्द्र विकसित कर, कचरे का प्रयोग करने वाले, सुरक्षित, कुशल एवं टिकाऊ हरित परिवहन नेटवर्क को बढ़ावा देकर ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन की तीव्रता में 33 से 35 प्रतिशत तक कमी करना है।

विकास एक बहुआयामी संकल्पना है। और अर्थव्यवस्था, समाज तथा पर्यावरण में सकारात्मक व अनुत्क्रमीय परिवर्तन का द्योतक है। 1960 के दशक के अंत में पश्चिम दुनिया में पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर बढ़ती जागरूकता के सामान्य वृद्धि के कारण सतत् पोषणीय धारणा का विकास हुआ है। 1968 में प्रकाशित एहरलीज की पुस्तक 'द पापुलेशन बम' और 1972 में मीडोस और अन्य द्वारा लिखी गई पुस्तक 'द लिमिट टू द ग्रोथ' के प्रकाशन ने इस विषय पर पर्यावरणविदों की चिंता और भी गहरी कर दी। इस घटनाक्रम के परिप्रेक्ष्य में विकास के एक नये मॉडल जिसे सतत् पोषणीय विकास कहा जाता है, की शुरूआत हुई है। पर्यावरण मुद्दों पर विश्व समुदाय की बढ़ती चिंता को ध्यान में रखकर संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व पर्यावरण और विकास आयोग (डब्ल्यु. ई.सी.डी.) की स्थापना की जिसके प्रमुख नार्वे के प्रधानमंत्री गरोहरलेम ब्रंटलैंड थी। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट आवर कमन फ्यूचर (जिसे ब्रंटलैंड रिपोर्ट भी कहते है।) 1987 में प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के अनुसार सतत् पोषणीय विकास का अर्थ एक ऐसा विकास जिसमें भविष्य में आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकता पूर्ति को प्रभावित किये बिना वर्तमान पीढ़ी द्वारा अपनी आवश्यकता की पूर्ति करना है। [5]

पिछली दो शताब्दियों में मानव जनसंख्या के फैलाव, प्राकृतिक संसाधनों की प्रति व्यक्ति मांग में वृद्धि और प्राकृतिक पर्यावरण में मानव आविष्कृत नये रसायनों (प्लास्टिक और कीटनाशक) के उपयोग के परिणामस्वरूप वैश्विक पर्यावरण और मानव जाति पर विपरीत प्रभाव पड़ा। सतत् पोषणीय विकास की अवधारणा में 1980 के दशक में उस समय उभरकर आई जब कुछ क्षेत्रों में बढ़ोतरी महसूस की गई। जिसमें वातानुकूलित प्रोद्यौगिकी, हरित क्रांति की तकनीकों से खाद्यान्न उत्पादन में तीव्र वृद्धि और तीव्र आर्थिक वृद्धि प्राप्त की गई लेकिन इसके बदले जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता की हानि, जल-संसाधनों एवं मृदा अवमूल्यन जैसी नई समस्याएँ उत्पन्न हुई। जलवायु परिवर्तन संपोषणीय विकास के विविध आयामों में से एक है। सभी की इच्छा है कि जलवायु परिवर्तन को कम करके संपोषणीय विकास को प्राप्त किया जाये। चूंकि वातावरण में कार्बनडाईऑक्साइड सघनता बढ़ना जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण है। इसलिए इस गैस के उत्सर्जन में कमी और वातावरण से इसके पृथक्करण जलवायु परिवर्तन के खतरों को कम करने की प्रमुख आवश्यकताएं है। वर्तमान जलवायु

परिवर्तन प्रवृतियों की अवस्थिति भविष्य में जैव विविधता संरक्षण के लिए खतरा है। तथापि जैव विविधता विशेषकर जंगल और वृक्ष आधारित जैविक कृषि जलवायु परिवर्तन के खतरे को कम कर सकती है। पर्वतीय क्षेत्र और द्वीप ऐसे क्षेत्र है जो जलवायु परिवर्तन के प्रति सबसे ज्यादा संवेदनशील है। वनों से समृद्ध और जैविक कृषि वानिकी व्यवस्था के विकास की संभावनाओं से जलवायु परिवर्तन को कम कर पानी की संभावना बढ़ जाती है। जैव विविधता में समृद्ध क्षेत्र इसलिए महत्वपूर्ण होते है चूंकि यह फसलों की नई किस्मों को विकसित करने के लिए आनुवांशिक आधार प्रदान करते हैं और पशुधन नस्लें जलवायु परिवर्तन के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखती है। अन्य पर्वतीय क्षेत्रों की बजाय हिमालय पर्वतीय क्षेत्र वैश्विक ध्यानाकर्षण का केन्द्र है। यह क्षेत्रीय जलवायु को नियंत्रित करता है। यह वैश्विक जैव विविधता के 34 उत्तेजनशील क्षेत्रों में से एक है और फसल विविधता के उन 8 केन्द्रों में से एक है। यह लाभकारी जैविक संसाधनों को आश्रय देता है। ध्रुवीय क्षेत्रों के बाद यहां के बर्फीले क्षेत्रों में सबसे बड़ी जनसंख्या निवास करती है। जहां जलवायु परिवर्तन कम करने और जैव विविधता के संरक्षण को स्थानीय लोगों के सामाजिक-आर्थिक विकास के साथ जोड़ने की आवश्यकता है ताकि इसके वैश्विक लाभ के प्रवाह की पोषणीयता सुनिश्चित की जा सके। [6]

2015 पश्चात् विकास एजेण्डा अंगीकृत किये जाने के लिए न्यूयार्क में 25 से 27 सितम्बर तक महासभा की उच्च स्तरीय पूर्ण बैठक मय शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया। जिसमें अब सहस्त्राबदी विकास लक्ष्य (एम.डी.जी.) का स्थान सतत् विकास लक्ष्य (एस.डी.जी.) ले लेंगे। 193 सदस्य महासभा ने इस नई रूपरेखा अपनी दुनिया में बदलाव: टिकाऊ विकास के लिए 2030 का एजेण्डा को अंगीकार किया। इसमें अगले 15 साल के लिए 17 लक्ष्य और 169 टारगेट तय किये गये।

भारत की जलवायु एक समान न होकर यह महाद्वीपीय से लेकर तटीय तक अत्यधिक विविध असमान है। भारत के संदर्भ में वर्ष 1901 से 2010 की अवधि के दौरान वार्षिक तापमान का औसत, अधिकतम व न्यूनतम तापमान प्रत्येक 100 वर्ष में क्रमश: 0.60 डिग्री सेण्टीग्रेड, 1.00 डिग्री सेण्टीग्रेड और 0.18 डिग्री सेण्टीग्रेड की महत्वपूर्ण वृद्धि की प्रवृति को दर्शाता है। वर्ष 1981-2010 की अवधि के संदर्भ में यह मध्यमान, अधिकतम व न्यूनतम तापमानों की वृद्धि प्रतिशत लगभग 0.02 डिग्री सेण्टीग्रेड की समान दर पर हुई है। जो काफी अधिक है। भारत ने घरेलू स्तर पर अपने कार्य का विकास करने के लिए कई नीति आरंभ की है। जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना में सौर, ऊर्जा दक्षता, कृषि, जल, धारणीय विकास, वानिकी, हिमालीय, पारिस्थतिकी तंत्र और जानकारी से संबंधित 8 राष्ट्रीय मिशन शामिल है। [7]

कृषि और मत्स्य पालन मुख्य रूप से जलवायु पर निर्भर है। भारत का कृषि क्षेत्र जलवायु परिवर्तन के खतरे का सामना कर रहा है। तापमान, वर्षा और कार्बनडाईऑक्साइड की सांद्रता में परिवर्तन के कारण जलवायु प्रेरित परिणामों का प्रत्यक्ष प्रभाव तथा दूसरी ओर मृदा की नमी में परिवर्तन तथा कीटों और बीमारियों द्वारा संक्रमण के वितरण एवं बारम्बारता के माध्यम से इसके अप्रत्यक्ष प्रभाव होते है। कार्बनडाईऑक्साइड का बढ़ता स्तर गेहूं, सोयाबीन और चावल सहित अधिकांश पादप प्रजातियों में प्रोटीन और आवश्यक खनिजों के संकेन्द्रण को कम करता है। कीट व पशुओं में रोग के प्रति उसकी सुभेदता को बढ़ाकर, प्रजनन क्षमता को घटाकर और दूध उत्पादन क्षमता को कम कर पशुओं के लिए खतरा उत्पन्न करती है। जलवायु परिवर्तन से समुद्री रोगों का प्रसार मत्स्य पालन को प्रभावित करता है। भारत में चरम मौसमी घटनाओं के कारण वार्षिक रूप से 9 से 10 अरब डालर का नुकसान हुआ है जिससे किसानों की आय औसत 15 प्रतिशत से 18 प्रतिशत तक कम हो सकती है। जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए कृषि फसलों की प्रत्याशतता में वृद्धि करना आवश्यक है। माध्य तापमान में 2 से 3 डिग्री सेण्टीग्रेड वृद्धि होने से उत्तर भारत में गेहूं की फसल अवधि में कमी आयेगी जिससे प्रतिवर्ष 60 से 70 लाख टन गेहूं बर्बाद होगा। साइबेरिया व उत्तर कनाड़ा जैसे कुछ क्षेत्रों को तापमान में आंशिक वृद्धि से लाभ होगा। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के लिए हमें पंचायत के स्तर पर जलवायु जोखिम प्रबंधन केन्द्र बनाने होंगे और सामुदायिक जलवायु जोखिम प्रबंधकों को प्रशिक्षित करना होगा।

पेरिस जलवायु समझौते में जलवायु परिवर्तन के विरूद्ध कार्यवाही करने हेतु विश्व के सभी देशों ने एक कार्य योजना बनाई है जिसका उद्देश्य वैश्विक औसत तापमान में पूर्व औद्योगिकीकरण स्तर के मुकाबले 2 डिग्री सेल्सियस से अधिक वृद्धि नहीं होने देना और वैश्विक औसत तापमान में वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक ही सीमित करने का प्रयास करना है। हाल ही में यूनाईटेड नेशन फ्रेमवर्क कंवेन्शन ऑन क्लाइमेंट चेंज (यू.एन.एफ.सी.सी.सी.) के कांफ्रेंस ऑफ पार्टीज (कोप-23) की 23 वीं बैठक बोन जर्मनी में हुई। इसमें सर्वप्रथम जेण्डर एक्शन प्लॉन भी शामिल किया गया।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते है कि इस समय हमें ऐसे संपोषणीय समाधान विचारने की आवश्यकता है जो अस्थायी नहीं हो बल्कि

उसमें भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा गया हो। हमें यह भी समझना होगा कि प्राकृतिक संसाधन सीमित है इसलिये उनका उपयोग तर्कसंगत होना चाहिए और उसकी योजना सतत् विकास सुनिशिचित करने के दृष्टिकोण से बनाई जानी चाहिए। जलवायु परिवर्तन की समस्याओं से निपटने के लिए और ऊर्जा सुरक्षा व सतत् विकास को सुनिश्चित कर विकास के स्तर को बनाये रखने के लिए ऊर्जा के संधारणीय और स्वच्छ स्त्रोतों के विकास की दिशा में बढ़ने की तत्काल आवश्यकता है। भारत भी ऊर्जा सुरक्षा की चुनौतियां का सामना करने की और वर्ष 2022 तक नवीकरणीय ऊर्जा की 175 गीगावॉट क्षमता का लक्ष्य हासिल कर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने की राह पर चल रहा है। गांधीजी ने कहा था 'धरती सभी की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त संसाधन है, उनके लालच के लिए नहीं।' भविष्य की रक्षा करने एवं हमारी भावी पीढ़ियों को पृथ्वी की विरासत सौंपने के लिए पूरा विश्व एक साथ आ रहा है। इसलिए हम ऐसी दुनिया बनाने की आशा कर सकते हैं जहां हम हर किसी की आवश्यकता के लिए संसाधन तैयार कर सकें।

संदर्भ सूची

1. सिंह, सवीन्द्र, पर्यावरण भूगोल का स्वरूप, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 2016, पृ. 226
2. शर्मा, एच.एस., शर्मा, एम.एल. एवं मिश्रा, आर.एन. भौतिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 2017, पृ. 444
3. रिपोर्ट, दक्षिण एशिया के हॉटस्पॉट : तापमान और वर्षण में परिवर्तन का जीवन-स्तर पर प्रभाव, विश्व बैंक समूह, 2018, पृ. 58-60
4. नारायण, सुनीता (पर्यावरणविद्), जलवायु परिवर्तन के अवश्यंभावी प्रभाव, बिजनेस स्टैण्डर्ड, दिनांक 14.8.18, पृ. 5
5. भारत लोग और अर्थव्यवस्था, एन.सी.इ.आर.टी., 2007, कक्षा 12, पृ. 108-110
6. सक्सेना, के.जी., जलवायु परिवर्तन और सम्पोषणीय विकास, योजना, प्रकाशन विभाग, दिल्ली, दिसम्बर 2015, पृ. 9-10
7. आर्थिक समीक्षा 2017-18, भारत सरकार, पृ. 75-76

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 22-27

भारत-पाकिस्तान संबंधों में शक्ति असंतुलन और शस्त्र दौड़ की समस्या : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

रामदास बघेला

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से ही भारत और पाकिस्तान के बीच क्षेत्रफल, जनसंख्या, संसाधनों, शासन-प्रणालियों जैसी विविधताएं विद्यमान रही हैं। दोनों की शक्ति में पर्याप्त अंतर है। जहां भारत विश्व की छठी बड़ी अर्थव्यवस्था के साथ तीव्र गति से उभरती शक्ति है तो पाकिस्तान के आर्थिक हालात खराब हैं। वह निरंतर अन्य देशीय और विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की आर्थिक मदद और ऋण को मोहताज है। उसकी भारत से शक्ति साम्य की सोच यथार्थ से परे है। नेहरू के कार्यकाल में भारत की परमाणु नीति एक पथ की थी। जिसका तात्पर्य भारत द्वारा परमाणु प्रौद्योगिकी का उपयोग केवल शांतिपूर्ण और विकास कार्यों के लिए करना था न कि परमाणु शस्त्रों के निर्माण के लिए। लेकिन अक्टूबर 1964 में चीन द्वारा परमाणु विस्फोट एवं दक्षिण एशिया और इसके आस-पास के क्षेत्रों में बदलते सामरिक और सुरक्षा वातावरण को ध्यान में रखते हुए भारत ने अपने परमाणु विकल्प को खुला रखा। 18 मई 1974 को भारत द्वारा पहला और 11 और 13 मई 1998 को पांच बहुउद्देशीय परमाणु विस्फोट किए गए। प्रत्युत्तर में पाकिस्तान ने चाघाई में छः परमाणु परीक्षण कर भारत को यह दिखाने का प्रयास किया कि वह भारत के समकक्ष हो गया है। वर्तमान में भारत और पाकिस्तान दक्षिण एशिया में तीव्र शस्त्र दौड़ में शामिल हैं। सिपरी ईयर बुक 2017 से ज्ञात होता है कि पाकिस्तान 2017 में भारत से 10 से 20 परमाणु हथियार अधिक रखता है। भारत-पाकिस्तान में परमाणु हथियारों की होड़ दक्षिण एशिया की सुरक्षा के लिए चिंताजनक है।

संकेताक्षर : *परमाणु, हथियार, शक्ति, भारत, पाकिस्तान*

पाकिस्तान अपने जन्म से ही भारत विरोध की नीति अपनाता रहा है तथा विभिन्न मुद्दों को लेकर भारत का धुर विरोधी बना रहा है। भारत-पाक हमेशा परस्पर अघोषित युद्ध के साये में जीते रहे हैं और दोनों राष्ट्र विभिन्न समस्याओं और चुनौतियों से जूझते रहे हैं। इन समस्याओं में दोनों राष्ट्रों के बीच शक्ति असंतुलन और शस्त्रों की होड़ प्रमुख हैं। [1] शक्ति का वितरण भारत और पाकिस्तान की विचारधारा और क्षेत्र की समस्याओं के साथ एक अन्य समस्या है। पिछले 70 साल की जमीनी हकीकत यह है कि दोनों ही देश अपनी राष्ट्रीय संभावनाओं में एक बहुत बड़ा अंतर रखते हैं। भारत पाकिस्तान से क्षेत्रफल में लगभग चार गुना बड़ा है, जनसंख्या में छह गुना बड़ा है, सकल घरेलू उत्पादन के माप के आधार पर अर्थव्यवस्था में नौ गुना और सैन्य शक्ति में पाकिस्तान को परमाणु हथियारों के अतिरिक्त कोई साम्य नहीं है। यदि दो देश भिन्न भौगोलिक स्थिति में स्थित हों तो उनमें यद्यपि तुलना नहीं की जा सकती। [2]

विश्व बैंक के आकलन के मुताबिक भारत में 2016 में प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पादन 1709.4 (114530 रुपये) अमेरिकी डॉलर रहा, सितम्बर 2016 में भारत का प्रति व्यक्ति जीडीपी पाकिस्तान से 16.4 प्रतिशत अधिक रहा। वर्ष 2015 में भारत में जीवन प्रत्याशा 68 वर्ष रही वहीं पाकिस्तान में समान वर्ष में 66 वर्ष रही। भारत की शिशु मृत्यु दर (1000 शिशुओं पर) 2015 में 38 रही वहीं पाकिस्तान की शिशु मृत्यु दर 66 रही। भारत में 2005 में साक्षरता 71 प्रतिशत रही और पाकिस्तान में 58 प्रतिशत रही। भारत में 2015 में कुल क्षेत्रफल का वन 23.8 प्रतिशत रहा तो पाकिस्तान में 1.9 प्रतिशत रहा। [3] भारत का रक्षा बजट 2017-18 में अनुमानित 359854.12 करोड़ रुपये रहा। [4] वहीं 2018-19 में प्रस्तावित पाकिस्तान का रक्षा बजट 1.1 ट्रिलियन डॉलर रहा जो कि कुल बजट का 21 प्रतिशत है। [5]

भारत-पाकिस्तान की शक्ति को तुलनात्मक आधार पर निम्नलिखित सारणी द्वारा दर्शाया जा सकता है -

सारणी 1 : भारत-पाकिस्तान की शक्ति की तुलना

तुलना का आधार	भारत	पाकिस्तान
जनसंख्या	1,33,365,118	199,085,847 (2016 अनुमानित)
क्षेत्रफल	3,287,240 वर्ग किमी	881,913 वर्ग किमी
जनसंख्या घनत्व	452/वर्ग किमी	260.8/वर्ग किमी
जीडीपी	2.384 ट्रिलियन डॉलर	270.961 बिलियन डॉलर
नोमिनल	1820 डॉलर प्रतिव्यक्ति	1427 डॉलर प्रति व्यक्ति
जीडीपी (पीपीपी)	8.727 ट्रिलियन डॉलर 6664 डॉलर प्रति व्यक्ति	984.205 बिलियन डॉलर 5084 डॉलर प्रति व्यक्ति
सेना व्यय	31.03 बिलियन डॉलर 2.3 प्रतिशत (जीडीपी का)	5.1 बिलियन डॉलर जीडीपी का 2.8 प्रतिशत[6]

इस प्रकार भारत, पाकिस्तान की तुलना में एक विशाल एवं निरंतर उभरती आर्थिक शक्ति है। पाकिस्तान की खुन्नस अपने आपको भारत के समतुल्य दिखाने की रही है किंतु व्यवहार में दोनों देशों के विकास में पर्याप्त अंतर है।

शस्त्र दौड़ की चुनौती : भारत के अस्थिर पड़ोस में परमाणु और मिसाइल तकनीक के प्रसार से इंटेलीजेंस टार्गेटिंग के तीनों आयाम - संग्रहण, मिलान और प्रसार बढ़े हैं। [7] भारत और पाकिस्तान में 1998 के बाद परमाणु हथियारों की दौड़ तीव्र हुई है। भारत की परमाणु नीति के दो स्तम्भ हैं - नो फर्स्ट यूज और विश्वसनीय परमाणु प्रतिरोधन। लेकिन पाकिस्तान की अभी भी कोई आधिकारिक परमाणु नीति नहीं है। पाकिस्तान परमाणु हथियारों में भारत पर अपनी श्रेष्ठता दिखाना चाहता है।

1947 में ब्रिटेन से स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर ही दक्षिण एशियायी राष्ट्र भारत और पाकिस्तान कट्टर शत्रु रहे हैं और विवादित कश्मीर क्षेत्र को लेकर तीन युद्ध लड़ चुके हैं तथा 1998 से दोनों राष्ट्र दुनिया का सर्वाधिक महत्वाकांक्षी परमाणु कार्यक्रम चला रहे हैं। भारत-पाक की शस्त्र प्रतिस्पर्धा को निम्नलिखित सारणी द्वारा समझा जा सकता है -

सारणी 2 : परमाणु हथियार वाहक एयर क्राफ्ट

भारत	पाकिस्तान
1981 शमशेर/जगुआर/आई.एस./आई.बी. रेंज 1600 किमी	1998 एफ-16 ए/बी रेंज 1600 किमी
1985 वज्र/मिराज 200 एच रेंज 1850 किमी	1998 मिराज III/ V रेंज 2100 किमी

सारणी 3 : न्यूक्लियर वारहेड के साथ परमाणु मिसाइलें

भारत	पाकिस्तान
2003 - पृथ्वी-2 350 किमी	2003 - हत्फ-4 शाहीन-1, रेंज 750 किमी हत्फ-5, गौरी रेंज-1500 किमी हत्फ-3 गजनवी 290 किमी रेंज
2007 - अग्नि-1 रेंज 700+ किमी	
2010 - धनुष रेंज 250-400 किमी	
2011 - अग्नि-2 रेंज 2000 + किमी	
2013 - निर्भय रेंज 800+ किमी क्रूज मिसाइल	2013 हत्फ-9 नाजर, रेंज - 60 किमी
2014 - अग्नि - 3, रेंज 3200+ किमी अग्नि - 4, रेंज 3500+ किमी अग्नि - 5, रेंज 5200+ किमी	2014 - हत्फ 6 शाहीन 2, रेंज 2000 किमी हत्फ-7 बाबर क्रूज मिसाइल, रेंज 700 किमी
	2015 - हत्फ-2 अब्दाली, रेंज 200 किमी शाहीन 3, रेंज 2750+ किमी
2017 - ब्रह्मोस क्रूज मिसाइल, रेंज 300+ किमी के-15 सागरिका, रेंज 700 किमी (एसएलबीएम)	2017 हत्फ 6 राद क्रूज मिसाइल, रेंज 350 किमी
भारत - 110	पाकिस्तान - 130

सारणी 4 : प्रतिरक्षा क्षमताएं

	भारत	पाक
कुल मिलिट्री कार्मिक	4,207,250	919,000
मिलिट्री एयर क्राफ्ट	2102	951
लड़ाकू टैंक	4426	2924
नेवल एसेट्स	295	1978

स्टॉक होम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट (सिपरी) द्वारा जारी ईयरबुक 2017 में कहा गया है कि एशिया में परमाणु हथियारों की होड़ बढ़ना चिंताजनक है। रिपोर्ट के मुताबिक एशिया में विवादों की वजह से चीन, भारत, पाकिस्तान और उत्तर कोरिया अपने परमाणु हथियारों का जखीरा बढ़ा रहे हैं। भारत का चीन और पाकिस्तान से विवाद चल रहा है। परमाणु हथियारों को बढ़ाने की होड़ मची है। पाकिस्तान के पास भारत से ज्यादा परमाणु हथियार हैं। इस रिपोर्ट के मुताबिक 2016 में पाकिस्तान के पास 120 से 130 परमाणु हथियार थे, वहीं भारत के पास 2016 में 110 से 120 परमाणु हथियार थे। वर्ष 2017 में पाकिस्तान के पास 130 से 140 तो भारत के पास 120 से 130 परमाणु हथियार थे। हथियार आयात में भारत दुनिया में अव्वल है। 2012 से 2016 के बीच कुल वैश्विक हथियार आयात का 13 प्रतिशत भारत ने किया। सऊदी अरब (8 प्रतिशत) दूसरे स्थान पर है। रिपोर्ट में कहा गया है, ''भारत में सामान्य तरीके से परमाणु हथियारों का जखीरा बढ़ा है।''[9]

मार्च 2018 में प्रकाशित सिपरी की रिपोर्ट के अनुसार भारत 2013-17 के वर्षों में विश्व का सबसे बड़ा प्रमुख हथियारों का आयातक देश है और वह विश्व के कुल आयात का 12 प्रतिशत आयात करता है। 2008-12 और 2013-17 के बीच भारत के शस्त्र आयात में 24 प्रतिशत वृद्धि हुई है। वहीं भारत और पाकिस्तान के मध्य तनाव जारी होने के बावजूद 2008-12 और 2013-17 के बीच की अवधि में पाकिस्तान के शस्त्र आयात में 36 प्रतिशत की कमी आई है। पाकिस्तान ने 2013-17 के बीच कुल वैश्विक शस्त्र आयात का 2.8 प्रतिशत आयात किया। 2008-12 की तुलना में 2013-17 के बीच इसके अमेरिका से आयात न होने से शस्त्र आयात में 76 प्रतिशत की गिरावट आई है। [10]

एक तरफ भारत और दूसरी तरफ पाकिस्तान और चीन के बीच तनाव भारत की प्रमुख हथियारों की मांग में वृद्धि को बढ़ावा दे रहे हैं, जिन्हें वह स्वयं नहीं बना सकता। सिपरी के 'शस्त्र और सेना व्यय कार्यक्रम' के वरिष्ठ अनुसंधानकर्ता सिमोन वेजेमन ने इस संदर्भ में कहा कि ''चीन विरोध स्वरूप स्वयं हथियारों का उत्पादन कर क्षमता में वृद्धि कर रहा है और हथियारों/शस्त्रों की आपूर्ति से पाकिस्तान, बांग्लादेश और म्यांमार के साथ संबंधों को मजबूत बना रहा है। भारत और पाकिस्तान में निरन्तर परमाणु हथियारों की प्रतिस्पर्धा में प्रतिरोध के संतुलन के साथ ही भारत की सुरक्षा चिंताओं में भी इजाफा किया है। भारत को पाकिस्तान के खिलाफ किसी भी उद्वेग से पहले ठीक से और रणनीतिक रूप से सुरक्षा और सैन्य प्रभावों की गणना को ध्यान में रखना चाहिए। क्योंकि पाकिस्तान-

(अ) एक नाजुक लेकिन परमाणु देश : पाकिस्तान विश्व के नाजुक और आर्थिक रूप से वंचित देशों में से एक है। इसकी तेजी से बढ़ते भारत के साथ समानता नहीं है। हालांकि चीन के साथ मिलकर और परमाणु हथियार रखने के माध्यम से यह लगातार भारत के साथ समता बनाने की कोशिश कर रहा है। ऐसा लगता है कि पाकिस्तान ने भारत के खिलाफ परमाणु हथियारों को अच्छी तरह से सोची समझी ब्लैकमेल रणनीति बनाया है। जिहादियों द्वारा परमाणु हथियारों के इस्तेमाल का खतरा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए एक और चिंता का विषय रहा है। फरवरी, 2016 में न्यूयॉर्क टाइम्स से बात करते हुए हिलेरी क्लिंटन ने कहा - ''पाकिस्तान भारत के साथ निरंतर शत्रुता में सामरिक निदेशों को विकसित करने के लिए पूरी गति से चल रहा है।'' इसके अलावा पाकिस्तान के रक्षा मंत्री द्वारा सामाजिक जरूरत के समय परमाणु हथियार प्रयोग करने की धमकी के गैर-जिम्मेदारानां वक्तव्य ने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए खतरे की घंटी बजा दी है। भारत को सामरिक परमाणु हथियारों के उपयोग के पाकिस्तान के खतरे को स्वीकार करने में ब्लैकमेल किया गया था। ऐतिहासिक रूप से, पाकिस्तान ने कड़ी कार्रवाई करने से भारत को रोकने के लिए अपने परमाणु हथियारों की स्थिति में सफलतापूर्वक हेरफेर किया है। अब प्रधानमंत्री मोदी एक राजनयिक सैन्य मिश्रित प्रतिशोध की मांग कर रहे हैं।[11]

सितम्बर 2017 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में शामिल होने के लिए गए पाकिस्तानी प्रधानमंत्री शहिद खाकन अब्बासी ने कहा कि भारतीय सेना की कोल्ड स्टार्ट डॉक्ट्रिन से निपटने के लिए पाकिस्तान ने कम दूरी के परमाणु हथियार तैयार कर लिए हैं।[12]

अमेरिकी थिंक-टैंक अटलांटिक काउंसिल ने कहा है कि पाकिस्तान के परमाणु हथियारों की सुरक्षा करने वाली संस्थाओं की हालात ठीक नहीं है और इससे इनकी सुरक्षा खतरे में है। पाक के परमाणु हथियारों से एशिया क्षेत्र में परमाणु युद्ध का भी खतरा है। काउंसिल

ने 'एशिया इन सेकंड न्यूक्लियर एज' में यह बात की, इसमें कहा, ''लगता है कि पाकिस्तान ने अभी तक अपनी परमाणु हथियार योजना का संचालन शुरू नहीं किया है। पाकिस्तान का परमाणु हथियार कार्यक्रम सुरक्षा के लिए खतरनाक है। ये सामान्य लडाई को परमाणु युद्ध में बदल सकते हैं। भविष्य में पाकिस्तान की स्थिरता का अनुमान लगाना भी कठिन है, इसलिये खतरा अधिक है। रिपोर्ट के मुताबिक चार दशक से भारत और अफगानिस्तान में अशांति फैलाने के लिए आतंकवाद को हथियार के रूप में इस्तेमाल किए जाने के प्रयासों से पाकिस्तान को ही नुकसान हुआ है। आतंकवादी हमले पाकिस्तान के राज्यों और सिविल सोसाइटी पर भी किए गए है। संवेदनशील सैन्य अड्डों पर भी हमले हुए हैं, जहां हो सकता है कि परमाणु हथियार रखे हुए हों। पाकिस्तान के लोगों की मदद से ही ये हमले हुए हैं।[13] जब से पाकिस्तान ने परमाणविक अस्त्र हासिल किए हैं तभी से अमेरिका को यह लगने लगा है कि विश्व के सबसे खतरनाक संकटस्थलों में पाकिस्तान का स्थान काफी ऊपर है। उसके परमाणविक हथियार आतंकवादी तालिबानी तत्वों के हाथ में पड़ सकते हैं या तालिबानी पाकिस्तान की सरकार पर ही कब्जा कर सकते हैं। हाल के वर्षों में यह बात जग जाहिर हो चुकी है कि पाकिस्तानी एटम बम के पिता समझे जाने वाले डॉ. अब्दुल कादिर खान कितने खतरनाक अंतर्राष्ट्रीय और परमाणविक तस्कर थे।[14] भारतीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने सितम्बर 2017 में सम्पन्न हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा सम्मेलन के दौरान पाकिस्तान के गैर जिम्मेदार राष्ट्र होने पर कटाक्ष किया तथा संकेत किया कि कोरियाई परमाणु कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में पाकिस्तान मदद कर रहा है। 2004 में पाक के परमाणु वैज्ञानिक अब्दुल कादिर ने स्वीकार किया था कि उन्होंने उत्तर कोरिया समेत अन्य मुल्कों को परमाणु टेक्नोलॉजी दी थी। इसी महीने पाकिस्तान के एक और वैज्ञानिक परवेज ने भी ऐसा ही खुलासा किया था। इसी कारण सुषमा स्वराज ने पाक को घेरने की कूटनीति के तहत ये बयान दिया था।[15]

(ब) गैर-नाटो सामरिक मित्र : शीतयुद्ध के दौरान पाकिस्तान पश्चिमी सैन्य गठबंधन प्रणाली में शामिल हो गया। 2004 में, पाकिस्तान को संयुक्त राज्य के एक प्रमुख गैर-नाटो सहयोगी का दर्जा दिया गया था। यह विशेष दर्जा अमेरिका ने आतंकवाद पर युद्ध शुरू करने के संबंध में उसके सहयोग के लिए दिया था। नाटो के पक्षों का मानना है कि उनमें से किसी एक पर हमला सभी पर हमला है और जिस पर हमला हुआ है वे उसकी सहायता करते हैं तथा हमला करने वाले पर कार्रवाई करते हैं। अमेरिका ने पाकिस्तान की आर्थिक कठिनाईयों और भारत के साथ उसकी दुश्मनी का फायदा उठाया। पहली पाकिस्तान-अमेरिका सैन्य संधि 1954 में हुई थी। वैश्विक राजनीति का चेहरा बदलने वाली घटना पाकिस्तान के लिए छिपा हुआ एक वरदान साबित हुआ। पाकिस्तान अमेरिकी सहायता कार्यक्रमों के प्रमुख प्राप्तकर्ताओं में से एक है। यह स्थिति उनके रक्षा बलों के बीच करीबी सैन्य निकटता का लाभ भी प्रदान करती है। घोषणा के प्रति भारत की पहली प्रतिक्रिया आश्चर्य और निंदा की थी।[16] मुंबई हमले का मास्टर माइंड जमात-उद-दावा प्रमुख हाफिज सईद की नवम्बर 2017 में रिहाई के आदेश पर भारत और अमेरिका ने नाराजगी व्यक्त की। सईद की रिहाई के आदेश पर अमेरिकी रक्षा विशेषज्ञ ब्रूस रीडल ने कहा, ''मुंबई में 26/11 हमले के नौ साल बीत गए, लेकिन अब तक इसका मास्टर माइंड न्याय के घेरे से बाहर है। पाकिस्तान का प्रमुख गैर नाटो सहयोगी का दर्जा रद्द करने का वक्त आ गया है।''[17]

(स) चीन से निकटता : 1948 के बाद चीन-पाकिस्तान संबंध बने हैं। चीन के साथ पाकिस्तान की निकटता के इतने ज्यादा सुरक्षा और आर्थिक प्रभाव हैं, जिनको दिल्ली को कम नहीं आंकना चाहिए। भारत ने तीन युद्धों में पाकिस्तान को हराया, लेकिन 1962 में चीन से बुरी तरह से हार गया। चीन निकट भविष्य में भारत को दक्षिण एशिया और एशिया में अपने प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखता है। बीजिंग ने भारत-पाकिस्तान पारंपरिक शत्रुता का लाभ उठाया है। वर्तमान स्थिति में विशेष रूप से अमेरिका-भारत रणनीतिक साझेदारी के बाद, चीन ने पाकिस्तान से अतिरिक्त निकटता दिखाई है। इस बीच, भारत बढ़ते चीन-पाकिस्तान नेक्सस से सुरक्षात्मक खतरे का सामना कर रहा है। 1960 और 1970 के दशक में, चीन ने पूर्वोत्तर के विद्रोहियों को समर्थन दिया और यह एक बार फिर हो सकता है। इसी तरह कश्मीर को चीन ने एक 'द्विपक्षीय विवाद' मानते हुए अपेक्षाकृत सरल दृष्टिकोण लिया है। इससे भी अधिक चिंतित करने वाली बात है कि चीन गिलगिट और पीओके में सड़क निर्माण और पाइपलाइन परियोजनाओं का प्रस्ताव कर रहा है। इसके अलावा चीन की सड़क बेल्ट पहल 'वन बेल्ट वन रोड' (ओबीओआर) की पहल निश्चित तौर पर इस क्षेत्र में भारत के हितों के लिए एक खतरा है।[18] नौंवे ब्रिक्स सम्मेलन (बीजिंग 3 सितम्बर, 2017) में चीन ने पाक का बचाव करते हुए भारत से कहा कि पाक के आतंक का मुद्दा यहां न उठाए भारत।[19] सुषमा स्वराज के संयुक्त राष्ट्र संघ (सितम्बर 2017) में आक्रामक भाषण से चिढ़ा पड़ोसी चीन बोला, 'भारत अहंकारी और पाक को नीचा दिखा रहा है।'[20] इस प्रकार चीन हमेशा से पाक का पक्षधर रहा है।

(द) रूस द्वारा देर से कदम : आजकल भारत के सबसे अच्छे दोस्त के रूप में प्रसिद्ध रूस, पाकिस्तान के साथ जुड़कर एक सामरिक गेम खेलने की कोशिश कर रहा है। भारतीय विचारकों को रूस की इस अचानक और संदिग्ध चाल को समझने में काफी कठिनाई हो रही है। रूस, पाकिस्तान के साथ एक साझा सैन्य कार्यक्रम चलाने के साथ ही आतंकवाद पर इसके रूख के लिए भारत की सराहना करता है। निश्चित रूप से, रूस ने एक विलंबित बहुत शक्तिशाली खेल शुरू किया है, जिसमें बढ़ रही भारत-अमेरिकी रणनीतिक भागीदारी पर नजर है। जैसे-जैसे अमेरिका-भारत संबंधों को मजबूती मिल रही है, वैसे-वैसे पाकिस्तान और रूस एक-दूसरे के साथ संबंधों को मजबूत कर रहे हैं। यह सहयोग सैन्य बिक्री से परे जाता है। बहुत जल्द दोनों देश आर्थिक और ऊर्जा सहयोग को बढ़ावा देंगे। अब यह स्पष्ट है कि भारत और रूस के बीच सब कुछ अच्छा नहीं होने जा रहा है। हो सकता है कि रूस ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता के भारत के मार्ग को बाधित करने के लिए चीन के साथ मिलकर काम किया हो। विद्वान अब एक संभावित चीन-पाकिस्तान-रूस रणनीतिक गठबंधन की भविष्यवाणी करते हैं। अब भारत को स्वीकार करना मजबूरी है कि रूस ने अपने पड़ोस में रणनीति बदल दी है। एक दुर्लभ स्थिति में, रूस-पाकिस्तान-चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका-भारत दो विरोधी सामरिक भागीदारी बन रही होगी।[21]

(य) परमाणु बम किसलिए : जून 2015 में जब म्यांमार में घुसकर भारतीय सेना ने आतंकी संगठनों को सबक सिखाया था तब पाकिस्तानी पूर्व राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ ने भारत को भड़काने वाला बयान दिया था। मुशर्रफ ने एक पाकिस्तानी टीवी को दिए साक्षात्कार में कहा, क्या पाकिस्तान ने परमाणु बम शब-ए-बारात जैसे मौकों के लिए बनाए हैं।[22]

इस प्रकार इन देशों में बढ़ती परमाणु प्रतिस्पर्धा को विद्वान एक तरफ प्रतिरोध का संतुलन की संज्ञा दे रहे हैं तो वहीं इनकी संख्या में निरंतर वृद्धि भारत और पाकिस्तान के लिए ही नहीं अपितु समूचे दक्षिण एशिया तथा समस्त विश्व समुदाय के लिए चुनौती बना हुआ है। पाकिस्तान का बात-बात में स्वयं को परमाणु शक्ति कहना विश्व शांति एवं परमाणु हथियारों की विनाशकता के प्रति उसकी संवेदनहीनता को दर्शाता है।

शस्त्र नियंत्रण हेतु सुझाव : भारत और पाकिस्तान के परमाणु हथियारों की प्रतिस्पर्धा को सीमित करने हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं -

1. भारत व पाकिस्तान सीमाओं पर ऐसी किसी भी सैन्य गतिविधियों को बढ़ावा न दें, जिनसे पारस्परिक अविश्वास पैदा हो।
2. भारत व पाक दोनों परमाणु सम्पन्न देश होने के नाते उन पर विशेष उत्तरदायित्व हैं कि वे अपने-अपने यहां परमाणु कमान, नियंत्रण एवं संचार व्यवस्थाओं को केवल सुदृढ़ करें बल्कि विश्वास निर्माण उपायों द्वारा यह भी सुनिश्चित करें कि वे इन नरसंहार के हथियारों का उपयोग किसी भी परिस्थिति में नहीं करेंगे। यद्यपि भारत ने अपने परमाणु सिद्धांत के तहत अपनी ओर से प्रथम परमाणु प्रहार न करने का निश्चय किया है, जबकि पाकिस्तान ने अपनी ओर से ऐसी कोई घोषणा नहीं की है। अत: दोनों देशों को एक व्यापक समझौते के द्वारा परमाणु एक्सचेंज को पूर्णरूपेण प्रतिबंधित करना चाहिए।
3. एक स्थिर पाकिस्तान न केवल भारत के लिए बल्कि सम्पूर्ण दक्षिण एशिया के हित में है। अन्यथा इसके दूरगामी नकारात्मक प्रभाव भारत व दक्षिण एशिया के लिए हानिप्रद सिद्ध होंगे। राजनैतिक रूप से अस्थायी पाकिस्तान से वहां सेना को पुन: सत्ता में आने का बहाना मिल जाएगा, ऐसी स्थिति में पाकिस्तान में सेना, आईएसआई, जेहादियों एवं आतंकवादियों के मध्य गठजोड़ पुन: सुदृढ़ हो सकता है, जो किसी भी देश की आंतरिक सुरक्षा एवं अर्थव्यवस्था की स्थिरता के लिए बड़ा घातक सिद्ध होगा।
4. पाकिस्तान को भारत के समतुल्य दिखने की खुन्नस छोड़नी चाहिए एवं वस्तुस्थिति को ध्यान में रखते हुए परस्पर टकराव को छोड़कर सहयोग का मार्ग चुनना चाहिए। दोनों देशों को व्यापारिक मार्ग की बाधाओं का मिलकर निराकरण करना चाहिए ताकि आर्थिक तरक्की को गति मिल सके।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि शक्ति असंतुलन और परमाणु हथियारों की प्रतिस्पर्धा भारत-पाक संबंधों में प्रमुख समस्या बनकर उभरी है, जिसके फलस्वरूप दोनों राष्ट्रों में तनाव एवं तकरार की स्थितियां निरन्तर बनी रहती है और परस्पर संबंधों में ह्रास देखा गया है। पाकिस्तान के अनुत्तरदायी रवैये पर विश्व समुदाय और अंतर्राष्ट्रीय परमाणु नियामक संस्थाओं द्वारा कड़ी निगरानी विश्व को परमाणु हथियारों के प्रयोग और विनाश से बचाने के लिए आवश्यक है। भारत और पाकिस्तान का विकास शांतिपूर्ण दक्षिण एशिया और विश्व के साथ ही संभव है। पाकिस्तान को कट्टरपंथियों एवं आतंकियों की परमाणु हथियारों तक पहुंच की संभावनाओं को दृढ़तापूर्वक समाप्त करना चाहिए। बात-बात में भारत को परमाणु राष्ट्र होने की धमकी देना छोड़ना होगा ताकि दानों राष्ट्रों के संबंधों में टकराव और अस्थिरता खत्म

हो सके और दोनों राष्ट्र प्रगति के पथ पर शांति और सहयोगपूर्ण ढंग से अग्रसर हो सकें।

सन्दर्भ सूची

1. फड़िया बी.एल., ''अंतर्राष्ट्रीय राजनीति सिद्धांत एवं समकालीन मुद्दे'' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2005, पृ. 293
2. कार्नेगी एन्डाउमेंट डॉट ऑर्ग, ''आर इंडिया-पाकिस्तान पीस टॉक्स वर्द ए देमन?'' 20 सितम्बर, 2017
3. हिन्दुस्तान टाइम्स डॉट कॉम ''इण्डिया एट सेवेण्टी : ए कम्पेरिजन ऑफ प्रोग्रेस विद पाकिस्तान एण्ड फॉर अदर नेसंस'' 25 अप्रेल, 2018
4. एमओडी डॉट जीओवी डॉट इन ''बजट एण्ड अकाउण्ट्स डिपार्टमेंट ऑफ डिफेंस'', 2017-18
5. डॉन डॉट कॉम ''बजट 2018-19 1.1 ट्रिलियन प्रपोज्ड फॉर डिफेंस'', 28 अप्रेल 2018
6. गूगल वेबसाइट डॉट कॉम ''इणडिया-पाकिस्तान रिलेसन्स''
7. गुप्ता, संजू ''यूपीए सरकार के समक्ष गैर-पारंपरिक खतरे, सुरक्षा और विदेश नीति की चुनौतियां'' वर्ल्ड फोकस, सितम्बर 2013, पृ. 76
8. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू डॉट अलजजीरा डॉट कॉम ''न्यूक्लियर नेवर्स : द इण्डिया- पाकिस्तान आर्म्स रेस'', 10 अगस्त 2017
9. दैनिक भास्कर ''स्टॉक होम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इन्स्टीट्युट (सिपरी) ने जारी की ईयरबुक 2017'', 23 सितम्ब्र 2017, पृ. 13
10. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू डॉट सिपरी डॉट ऑर्ग ''एशिया एण्ड द मिडल ईस्ट लीड राइजिंग ट्रेंड इन आर्म्स इम्पोर्ट्स यूएस एक्सपोर्ट्स ग्रो सिग्निफिकेंटली, सेज सिपरी, 12 मार्च 2018
11. साहू, प्रशांता ''पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में आतंकवादी ढांचा : भारत की सुरक्षा चिंताएं'' वर्ल्ड फोकस, सितम्बर 2017, पृ. 89
12. दैनिक भास्कर ''भारत से निपटने के लिए हमने बनाए कम दूरी के एटमी हथियार : पाक पीएम'', 22 सितम्बर 2017, पृ. 13
13. दैनिक भास्कर ''अमेरिकी रिपोर्ट में दावा, पाक के परमाणु हथियार सुरक्षित नहीं, करा सकते हैं युद्ध'', 27 नवम्बर 2017, पृ. 13
14. पंत, पुष्पेश : ''21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय संबंध'', मैक्ग्राहिल एजुकेशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2014, पृ. VII.27
15. दैनिक भास्कर ''उत्तर कोरिया को परमाणु टेक्नोलॉजी देने वाले मुल्कों की जांच हो : सुषमा स्वराज'', 20 सितम्बर 2017, पृ. 15
16. साहू, प्रशांता ''पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में आतंकवादी ढांचा : भारत की सुरक्षा चिंताएं'' वर्ल्ड फोकस, सितम्बर 2017, पृ. 89-90
17. दैनिक भास्कर ''हाफिज सईद को लेकर कहा : आतंकवाद पर फिर बेनकाब हुआ पाक'', 24 नवम्बर 2017 पृ. 13
18. साहू, प्रशांता ''पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में आतंकवादी ढांचा : भारत की सुरक्षा चिंताएं'' वर्ल्ड फोकस, सितम्बर 2017, पृ. 90
19. दैनिक भास्कर ''नौवां ब्रिक्स समिट .... पाक के आतंक का मुद्दा यहां न उठाए भारत'', 03 सितम्बर 2017, पृ. 13
20. दैनिक भास्कर ''सुषमा के यूएन में आक्रामक भाषण से चिढ़ा पड़ोसी : चीन बोला - भारत हमें अहंकारी और पाक को नीचा दिखा रहा है'', 27 सितम्बर 2017, पृ. 15
21. साहू, प्रशान्ता ''पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में आतंकवादी ढांचा : भारत की सुरक्षा चिंताएं'', वर्ल्ड फोकस, सितम्बर 2017, पृ. 90
22. राजस्थान पत्रिका ''मुशर्रफ का कबूलनामा : कश्मीर के लिए पहले पनपाया आतंकवाद ...... 30 अक्टूबर 2015, पृ. 10

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 28-33

भारतीय ग्राम : गांधी व अम्बेडकर विमर्श

डॉ. मोहम्मद कामरान खान

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान

सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)

ISSN 2348-3857

शोध सारांश

भारतीय ग्राम अपने पृथक पहचान और अस्तित्व के कारण समाजशास्त्रियों तथा सामाजिक मानवशास्त्रियों के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु रहे हैं। भारत में ग्राम केवल भौगोलिक क्षेत्र ही नहीं वरन् भारतीय समाज की सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक इकाई भी हैं। भारतीय ग्राम की वास्तविक भूमिका के सन्दर्भ में भारतीय चिंतन परम्परा के दो विचारक महात्मा गांधी व डॉ. भीमराव अम्बेडकर भारतीय समाज में ग्राम की भूमिका के सन्दर्भ में परस्पर विरोधी मत रखते हैं। जहां गांधी एक आदर्श विकेन्द्रीकृत राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था का स्वप्न देखते है तो इसकी इकाई वह ग्राम को ही मानते हैं क्योंकि ग्राम्य जीवन का सरल, संयमित, स्वदेशी प्रधान और उत्पादक स्वरूप उन्हें एक आध्यात्मिक लक्ष्य की और प्रेरित करता है। आत्मनिर्भर स्वायत्तशासी ग्राम ही गांधी के वास्तविक स्वराज की प्राप्ति का मूलमंत्र हैं। गांधी की दृष्टि में एक विकेन्द्रित राजनीतिक प्रणाली ही अहिंसा के आदर्श के अनुरूप मानी जा सकती हैं। किसी भी तरह का केन्द्रीयकरण हिंसा पर ही आधारित होता है। इसके विपरीत डॉ. भीमराव अम्बेडकर भारतीय ग्राम का यथार्थ चित्रण करते हुए इसे शोषण का उपकरण मानते हैं जहां विद्यमान कठोर जातिगत संरचना में अस्पृश्यों की स्थिति एक उपनिवेश की तरह है जो निरन्तर जातिगत शोषण का शिकार होते हैं। इस तरह यह भारतीय ग्राम किसी भी रूप में किसी आदर्श राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था की मूल इकाई नहीं बन सकते हैं। ऐसे समय में जब पूंजीवादी और समाजवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की कमियां खुलकर सामने आ गयी हैं और दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं ने किसी न किसी प्रकार के केन्द्रीयकरण को ही बढ़ावा दिया है जिससे अधिकांश जनसंख्या के हाशियेकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है। एक ऐसे वैकल्पिक प्रतिमान की आवश्यकता है जो पर्याप्त राजनीतिक और आर्थिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित हो। ऐसा गांधी की 'ग्राम स्वराज' की सकंल्पना का वास्तविक रूप प्रदान करके ही किया जा सकता है। यह विकेन्द्रीकृत ग्राम स्वराज की अवधारणा अधिकांश जन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनने में एक प्रमुख भूमिका का निर्वाह करेगी!

संकेताक्षर : *ग्राम स्वराज, हिन्द स्वराज, ग्रामीण गणतन्त्र, समाजवाद*

ग्राम प्राचीन काल से ही भारतीय समाज व्यवस्था का आधारभूत और महत्त्वपूर्ण एकक रहा है। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था होने के कारण भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में ही निवास करती है। बीसवीं शताब्दी के प्रांरभिक दशकों में ग्रामीण और नगरीय जनसंख्या का अनुपात 89:11 था। यह अनुपात धीरे-धीरे नगरों के पक्ष में परिवर्तित होता गया तथा 21 वीं शताब्दी के पहले दशक में यह 69:31 हो गया। स्पष्ट है जनसंख्या का बहुत बड़ा अनुपात आज भी ग्रामीण क्षेत्रो में निवास करता है। भारत में ग्रम केवल भौतिक इकाई ही नहीं हैं वरन् सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक इकाई के साथ-साथ भारतीय परम्पराओं के सवांहक भी रहे हैं। भारतीय समाज को समझने के लिए ग्राम हमेशा से प्रारंभिक बिन्दु रहे हैं। समाजशास्त्रियों व सामाजिक मानव शास्त्रियों के दृष्टिकोण के अनुसार ग्राम भारतीय समाज का लघुरूप हैं। [1]

इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि ग्राम प्राचीन भारत में महत्त्वपूर्ण बसावट रहे हैं। ऋग्वेद में ग्रामों का उल्लेख विभिन्न परिवारों के समूह से हैं जबकि वाल्मीकि की रामायण में दो प्रकार के ग्रामों का उल्लेख मिलता है गोष तथा ग्राम। गोष ग्राम से छोटे होते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी ग्रामों का उल्लेख मिलता है तथा 10 ग्रामों के समूह को संग्रहण कहा जाता था। [2]

भारतीय समाज में ग्रामों की स्थिति और भूमिका क्या है? यह हमेशा से एक विचारणीय प्रश्न रहा है। भारतीय समाज को संगठित

और अनुशासित करने में ग्राम की कोई सकारात्मक भूमिका है या विखण्डनकारी तत्व जो भारतीय समाज में पाये जाते हैं उनका मूल आश्रय स्थल ग्राम ही हैं? यह प्रश्न भी अर्न्तनिहित हैं कि क्या भारतीय समाज में विद्यमान अज्ञानता, अशिक्षा, गरीबी, कठोर जाति-लिंग भेद का उद्‌गम भारतीय ग्राम से ही हैं अथवा नहीं?

भारतीय चिंतन परम्परा में दो विचारक महात्मा गांधी व डॉ. भीमराव अम्बेडकर इस प्रश्न का उत्तर परस्पर विपरीत रूप में देते हैं। महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों की तुलना अक्सर वर्ण व जाति व्यवस्था, औद्योगिकीकरण, संसदीय प्रजातन्त्र, अंग्रेजी शासन के संदर्भ में की जाती है। परन्तु इस सभी विचारों में सबसे आधारभूत अंतर है भारतीय ग्राम के बारे में इन दोनों का दृष्टिकोण। इसमें गांधी और अम्बेडकर परस्पर विपरीत ध्रुव पर खड़े नजर आते हैं।

महात्मा गांधी ने 1909 में इग्लैण्ड से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए एस.एस. किल्डोनन नामक जहाज पर '**हिन्द स्वराज**' शीर्षक से संवाद शैली में एक छोटी सी पुस्तक लिखी है। लगभग 100 पृष्ठों की यह पुस्तक 20 अध्यायों में विभक्त है। संवाद शैली की इस रचना में महात्मा गांधी ने एक साभ्यतिक विमर्श को जन्म दिया है जिसमें आधुनिक सभ्यता को जिसे पश्चिम आधारित व आयतित माना हैं कि घोर निंदा की है और इसे 'शैतानी सभ्यता' की संज्ञा दी है।[3]

महात्मा गांधी ने हिन्द स्वराज में आधुनिक सभ्यता की व्यवस्थित और तार्किक समीक्षा की है। गांधी ने भारत के विकास को आधुनिक सभ्यता से जोड़कर नहीं देखा इसकी जगह विकास का एक वैकल्पिक प्रतिमान उपलब्ध कराया है। जिसके केन्द्र में '**स्वायत्तशासी ग्राम**' की अवधारणा निहित हैं। जहां पश्चिमी सभ्यता गांधी की दृष्टि में शैतानी सभ्यता है वहीं प्राचीन भारतीय सभ्यता, सभ्यता का सबसे विकसित और दैवीय स्वरूप है। गांधी जी ने पश्चिमी सभ्यता के स्थान पर भारतीय सभ्यता को स्थापित करने पर बल दिया है जिसमें भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास निहित होंगे। स्पष्ट है गांधीजी सिर्फ भौतिक लक्ष्यों की पूर्ति को ही जीवन का लक्ष्य ना मानकर आध्यात्मिक लक्ष्यों की पूर्ति को जीवन का अन्तिम साध्य मानते हैं। गांधीजी ने स्पष्ट किया कि यदि भारत में भी पश्चिमी सभ्यता के उन्हीं मानकों को स्वीकार किया जाता हैं तो यह अंग्रेजों के बिना अंग्रेजी शासन होगा। ऐसी स्थिति में भारत हिन्दुस्तान नहीं ब्लकि इंग्लिस्तान कहा जाएगा। यह ऐसा स्वराज नहीं हैं जिसकी प्राप्ति की मुझे आकांक्षा हैं। [4] हिन्द स्वराज के दर्शन पर गांधीजी की आस्था पूरे जीवन भर बनी रही।

यह बात भी उल्लेखनीय है कि गांधीजी पाश्चात्य नमूने के लोकतंत्र और उसकी संस्थाओं व प्रक्रियाओं के कटु आलोचक थे। 'हिन्द स्वराज' में उन्होने ब्रिटिश संसद को 'बांझ महिला' की संज्ञा दी हैं। अतएव वह भारत के लिए भी पश्चिमी नमूने के लोकतंत्र को अपर्याप्त मानते थे। महात्मा गांधी ने भारतीय ग्राम को केन्द्र बिन्दु मानकर इसके विकास को भारत के विकास का साधन माना है। उनका मानना है कि भारत कुछ शहरों में नहीं पाया जाता है। यह 7,00,000 ग्रामों में विद्यमान हैं। गांधी का मत है कि अगर ग्राम मृतप्राय: होते हैं तो भारत भी मृत प्राय: हो जाएगा तथा विश्व में भारत का मिशन खो जाएगा। [5]

मनुष्य जाति का अनुभव इस बात को प्रमाणित करता है कि सामूहिक जीवन उस अवस्था में अधिक, विविध, सफल और आनन्दपूर्ण होता हैं जब उसकी रचना छोटे घटकों तथा अधिक सादे संगठनों पर की जाती है। केवल छोटे घटकों या समाजों में ही जीवन पूर्ण रूप से विकसित और समृद्ध होता आया है। विशाल क्षेत्रों में फैले हुए सामूहिक जीवन में एकता, सम्बद्धता तथा उत्पादक शक्ति का अभाव पाया जाता है। यूनान के प्राचीन नगर राज्य तथा भारत के ग्राम प्रजातंत्र समृद्ध और शक्तिशाली जीवन के सर्वांगीण विकास के सुन्दर उदाहरण थे। [6]

पं जवाहर लाल नेहरू ने अपनी अपनी पुस्तक 'विश्व इतिहास' की झलक में लिखा है—

'आर्यों ने भारत में धीरे-धीरे अपनी ग्रामीण प्रणाली का विकास किया। इस प्रणाली में कुछ पुरानी द्रविड़ ग्राम सभा का और कुछ आर्य विचारों का मेल जोल था। ये गांव करीब-करीब स्वतंत्र होते थे और चुनी हुई पंचायतें इन पर शासन करती थी। इस तरह आर्य बस्तियों में एक प्रकार का लोकतंत्र पाया जाता था। [7]

गांधीजी राज्य और राष्ट्र दोनों ही अवधारणाओं के विरोधी थे। जहां वे राज्य को 'संगठित हिंसा' का प्रतीक मानते थे वही राष्ट्र को प्राण विहीन संगठन। गांधी के अनुसार समाज का चरम लक्ष्य तो यह होना चाहिए कि उसे राज्य की आवश्यकता ही महसूस नहीं हो। इसलिए गांधी जी की राय में आदर्श समाज राज्य रहित लोकतंत्र हैं। यह ऐसी अराजक व्यवस्था हैं जिसमें मनुष्य का जीवन उस पूर्णता को प्राप्त करता है जहां पर वह स्वयं पर शासन करने लगता है। परन्तु गांधीजी यह भी मानते हैं कि इस आर्दश की पूर्ण सिद्धि असम्भव है। इसलिए विकल्प के रूप में 'ग्राम स्वराज्य' का आदर्श प्रस्तुत किया हैं। जिसमें राज्य का अंत नहीं होता है उसका विकेन्द्रीकरण होता है। इस प्रकार ग्राम स्वराज्य एक ऐसा आदर्श है जिसे सिद्ध किया जा सकता है। [8]

महात्मा गांधी ने आत्मनिर्भर स्वायत्तशासी ग्रामों की अवधारणा प्रस्तुत की है जो अपने रूप में पूर्णत: स्वायत्त होंगे तथा अपनी दिन प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ अपनी रक्षा में भी पूर्णत: समर्थ होंगे। यह स्वायत्तशासी ग्राम केवल व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं करेंगे वरन् बौद्धिक, आध्यात्मिक, नैतिक आवश्यकताओं को भी पूरा करने में समर्थ होंगे। गांधी के राजनीतिक चिंतन का लक्ष्य विकेन्द्रीकृत 'ग्राम स्वराज' की अवधारणा हैं जहां पर प्रत्येक ग्राम एक गणतन्त्र के समान होगा। ग्राम पंचायत ग्राम के सभी मामलों का प्रंबध करेगी। इन्हीं स्वायत्त 'ग्राम स्वराज' के गणतन्त्रों पर देश का गणतन्त्र विद्यमान होगा। गांधी किसी भी केन्द्रीयकरण को हिंसा पर आधारित ही मानते थे।

महात्मा गांधी के शब्दों में 'ग्राम स्वराज' की मेरी कल्पना यह है कि यह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए जिसमें दूसरों को सहयोग अनिवार्य होगा। इस तरह हर एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर सके।[9] गांधी की दृष्टि में ग्राम स्वराज में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर आधारित सम्पूर्ण प्रजांतत्र काम करेगा।

महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी भागीदारी की शुरूआत चम्पारण और बाद में खेड़ा किसान आन्दोलनों से की, जो मूलरूप से किसान आन्दोलन ही थे। राष्ट्रीय आन्दोलन में महात्मा गांधी ने सादगी, संयमित जीवन की तकनीकों को अपनाया जिसे भारत का अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या नियमित जीवन पद्धति के रूप में अपनाती थी। गांधी शहरों और ग्रामों की तुलना में ग्राम को महत्त्व देते थे। उनकी निगाह में शहरों की वृद्धि एक बुरी चीज है। यह मनुष्य जाति और दुनिया का दुर्भाग्य है।[10]

भारतीय ग्राम गांधी के अनुसार संयम, सादगी, उत्पादकता के व्यक्तिगत आदर्शों की पूर्ति ही नहीं करता बल्कि मानवता के लिए राजनीतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक आदर्श की पूर्ति करता है। गांधी जिस ग्राम की बात कर रहे थे वह सिर्फ एक भौगोलिक इकाई, सांख्यिकी आंकड़ा या सामाजिक वर्ग नहीं था। गांधी का ग्राम एक परिघटना था, एक स्वप्न था एक संस्कृति था, कुछ मूल्यों का समुच्चय था।[11]

भारतीय संविधान निर्माता व दलित चेतना के सूत्रधार बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर गांधीजी के 'ग्राम दर्शन' से पूरी तरह असहमत होकर भारतीय ग्राम जीवन में विद्यमान जातिप्रथा और अस्पृश्यता के सन्दर्भ से भारतीय ग्रामीण समाज को जोड़कर देखते हैं। अम्बेडकर का मानना हैं कि भारतीय ग्राम से किसी आदर्श राजनीतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती हैं। अम्बेडकर गांधी के भारतीय ग्राम के आदर्श रूप का खण्डन करते हुए इसके यथार्थ स्वरूप का वर्णन करते हैं।

संविधान सभा को प्रस्तुत प्रारूप में संविधान की आलोचना का एक प्रमुख आधार यह था कि इसमें प्राचीन भारतीय राजनीति की उपेक्षा की गयी है और नये संविधान में लोकतंत्र का प्रतिरूप ग्राम पंचायत और जिला पंचायतों के आधार पर विकसित होना चाहिए। संवैधानिक पिरामिड का आधार ग्राम होना चाहिए जो एक स्वायत्तशासी इकाई के रूप में कार्य करे जिसकी अपनी कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका हो।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने संविधान सभा में इसका जवाब देते हुए कहा 'यह ग्रामीण गणतन्त्र ही भारत के पतन का कारण रहे हैं।' मुझे आश्चर्य है कि जो प्रान्तीयतावाद और साम्प्रदायिकता का विरोध करते हैं वह ग्रामीण समुदाय पर आधारित स्थानीयता के समर्थक कैसे हो सकते हैं।[12]

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कहा ''भारतीय ग्रामीण गणतन्त्र ही भारत के साम्प्रदायिकता, स्थानीयता, संकीर्णता के आश्रय स्थल हैं। मुझे खुशी है कि प्रारूप संविधान में ग्राम की जगह व्यक्ति को इकाई के रूप में स्वीकार किया है।''[13]

अम्बेडकर के अनुसार भारतीय ग्रामों के बारे में सामान्य जन बहुत उत्सुकता से बात करते हैं और यह मानते हैं कि यह सामाजिक संगठन का आदर्श रूप हैं जिसके समानान्तर कोई अन्य संगठन इस विश्व में विद्यमान नहीं है। यह सामाजिक संगठन सिद्धान्त को भारत का विशेष योगदान है।

डॉ. अम्बेडकर का मानना हैं कि ग्राम हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की कार्यशील इकाई हैं। यहां पर हिन्दू सामाजिक व्यवस्था को पूर्णरूप से कार्यशील होते देखा जा सकता है।[14]

डॉ. भीमराव अम्बेडकर यह तर्क देते हैं कि भारतीय ग्राम को आदर्श सामाजिक संगठन के रूप में देखने का विचार ना तो प्राचीन काल से आया है और ना यह भारतीयों के पैतृक विश्वास पर आधारित हैं। यह अवधारणा सर चार्ल्स मेटकाफ जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राजस्व अधिकारी थे, के विचारों से प्रेरित है। चार्ल्स मेटकाफ ने अपने राजस्व प्रलेख में भारतीय ग्रामों को निम्नलिखित वर्णन किया हैं—

''ये ग्राम समाज छोटे-छोटे गणतन्त्र हैं, जिन्हें अपनी आवश्यकता की लगभग हर वस्तु अपने भीतर ही मिल जाती हैं और जो विदेशी सम्बन्धों में लगभग स्वतंत्र होते हैं। वे ऐसी परिस्थितियों में टिके

रहते हैं जिसमें दूसरी हर वस्तु का अस्तित्व मिट जाता है। ग्राम सभाओं का यह संघ जिसमें प्रत्येक समाज अपने आप में छोटा सा स्वतन्त्र राज्य होता हैं। उनके सुख का, बहुत बड़ी हद तक साधन बनता हैं और उसके अर्न्तगत वे बड़ी मात्रा में स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का उपयोग करते हैं। ''[15]

मेटकाफ लिखते हैं राजवंश पर राजवंश परिवर्तित हुए, क्रान्तियों का स्थान दूसरी क्रान्तियों ने ले लिया परन्तु ग्रामीण समुदाय एकरस बना रहा है।[16]

ऐसे में अम्बेडकर सवाल करते हैं कि अगर उत्तरजीविता ही ग्रामीण समुदायों की विशेषता रही है तो ऐसी उत्तरजीविता का कोई अर्थ नहीं हैं जो पूरी तरह से स्वार्थपरायणता पर आधारित हो। अम्बेडकर के अनुसार भारतीय ग्राम एकल सामाजिक इकाई नहीं हैं बल्कि अनेक जातियों से इनका निर्माण होता हैं।

(i) ग्रामों की जनसंख्या को दो भागों में विभक्त होती हैं- 1. स्पृश्य 2. अस्पृश्य। स्पृश्य बड़ा समुदाय होता हैं तथा अस्पृश्य छोटा समुदाय होता हैं।

(ii) स्पृश्य गांव के अन्दर रहते हैं, अपृश्य गांव के बाहर रहते हैं।

(iii) आर्थिक दृष्टिकोण से स्पृश्य शक्तिशाली समुदाय हैं जबकि अस्पृश्य गरीब और आश्रित।

(iv) सामाजिक रूप से स्पृश्य शासक वर्ग की स्थिति रखते हैं जबकि अस्पृश्य की स्थिति पैतृक बंधुआ श्रमिक की तरह होती है।[17]

अम्बेडकर के अनुसार अस्पृश्यों को प्रत्येक गांव में कुछ सामाजिक संहिताओं का पालन करना पड़ता हैं। जिसका उल्लघंन करने पर उन्हें दण्ड का भागीदार बनना पड़ता है।

(i) अस्पृश्यों को गांव के बाहर पृथक स्थान पर निवास करना होता है कोई भी अस्पृश्य पृथकता के इस नियम का उल्लघंन नहीं कर सकता है।

(ii) अस्पृश्यों के घर दक्षिण दिशा में होते हैं जो सबसे अशुभ दिशा मानी जाती है।

(iii) अस्पृश्यों को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि उसके शरीर की छाया किसी स्पृश्य पर ना पड़े इससे उसके अपवित्र होने का खतरा बना रहता हैं।

(iv) अस्पृश्यों को धन, भूमि, मवेशी धारण करना अपराध है।

(v) अस्पृश्यों के घरों की पक्की छत नहीं होनी चाहिए।

(vi) अस्पृश्य द्वारा स्वच्छ कपड़े, घड़ी या सोने के आभूषण धारण करना अपराध है।

(vii) अस्पृश्यों द्वारा अपने बच्चों के अच्छे नाम रखना अपराध हैं।

(viii) किसी स्वर्ण के सामने कुर्सी पर बैठना, घोड़े या पालकी की सवारी करना तथा सवर्णों का अभिवादन ना करना अस्पृश्यों के लिए अपराध हैं।[18]

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कर्त्तव्य हैं जो अस्पृश्य पालन करते हैं जिसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होता हैं जैसे स्पृश्यों के मृत्यु या विवाह की सूचना उसके सम्बन्धियों तक पहुँचाना। त्यौहार पर स्पृश्य वर्ग की महिलाओं का मनोरंजन करना इत्यादि।

भारत जैसे कृषि प्रधान समाज में अस्पृश्य भीख मांगकर, सफाई कार्य या भूमिहीन श्रमिक के रूप में कार्य कर अपना जीवनयापन करते हैं क्योंकि वह इतने साधन सम्पन्न नहीं हैं कि कोई भूमि खरीद सके और अगर वह साधन सम्पन्न होकर भूमि खरीदना चाहे तो उनको कोई भूमि नहीं बेचता हैं फलस्वरूप अस्पृश्य अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में किसी सुधार की आशा भी नहीं कर सकते हैं। [19]

ऐसी स्थिति में अम्बेडकर प्रश्न करते हैं कि क्या यही वह ग्रामीण गणतन्त्र है जिस पर गर्व किया जाता है। इस गणतन्त्र में अस्पृश्यों की क्या स्थिति हैं। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में अस्पृश्यों के लिए कोई अधिकार नहीं हैं। एक अस्पृश्य हमेशा के लिए अस्पृश्य है। चाहे उसकी उम्र, शिक्षा स्पृश्य की तुलना में कितनी ही अधिक हो अम्बेडकर लिखते हैं भारतीय ग्राम रूपी गणतन्त्र में गणतन्त्र का कोई स्थान नहीं हैं, ना ही समानता के लिए, ना स्वतन्त्रता के लिए, ना बन्धुता के लिए। भारतीय ग्राम स्वयं गणतन्त्र का निषेध हैं। यह लोकतन्त्र हैं स्पृश्यों का, स्पृश्यों के लिए, स्पृश्यों द्वारा[20]

इन ग्रामीण गणतन्त्रों में अस्पृश्यों को कोई अधिकार नहीं है। अस्पृश्य इन ग्रामीण गणतन्त्रों के उपनिवेश हैं। स्पष्ट है अम्बेडकर इन ग्रामीण गणतन्त्रों में अस्पृश्यों के लिए किसी लोकतन्त्र या गरिमापूर्ण जीवन की आशा नहीं करते हैं। उनका मानना है कि यह एक ऐस दुष्चक्र है जिसमें किसी भी अस्पृश्य का निकल पाना सम्भव नहीं है ऐसी स्थिति में यह ग्रामीण समुदाय किसी भी रूप में किसी आदर्श योजना का हिस्सा नहीं बन सकते हैं।

समाजवादी प्रो. योगेश अटल भी ग्रामीण गणतन्त्र की अवधारणा को सही नहीं मानते हैं उनके अनुसार मेटकॉफ का वर्णन अत्यधिक आदर्श और सतही हैं। यद्यपि ग्राम एक पृथक पहचान रखते थे और स्थानीय प्रमुखों द्वारा शासित होते थे परन्तु उन्हें गणतन्त्र नहीं कहा जा सकता। ग्राम दूरस्थ स्थानों पर अवस्थित थे परन्तु वह एकांकी नहीं थे। वह कई श्रृंखलाओं के माध्यम से आपस में जुड़े हुए थे। [21]

आश्चर्य जनक तथ्य हैं कि पूरा राष्ट्रीय आन्दोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में लड़ा गया परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् गांधी के वैकल्पिक विकास मॉडल जो राजनीति और अर्थव्यवस्था दोनों के ही विकेन्द्रीकरण पर आधारित था को अस्वीकार कर दिया गया तथा समाजवादी नमूने के आधार पर विकास के प्रतिरूप को स्वीकारा गया। नेहरू व अम्बेडकर दोनों भारत के औद्योगिक व केन्द्रीय नियोजन के पक्षधर थे। नेहरू और डॉ. भीमराव अम्बेडकर दोनों इस प्रतिरूप के समर्थक थे। नेहरू ने स्वीकार किया कि कांग्रेस ने गांधी की सामाजिक दृष्टि जैसा कि हिन्द स्वराज में वर्णित हैं ना तो कभी विचार किया हैं ना ही उसे स्वीकार किया हैं। [22] यहां बड़ा अर्न्तविरोध था कि गांधी पंचायतों के आधार पर एक नई सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, व्यवस्था की स्थापना पर बल दे रहे थे वही नेहरू तथा कांग्रेस अन्य सदस्य संसदीय प्रजातंत्र के आधार पर उत्तरदायी शासन की मांग ब्रिटेन से कर रहे थे। संविधान सभा ने भी ग्राम पंचायतों को भारतीय लोकतन्त्र का आधार बनाने के बजाए पश्चिमी नमूने की लोकतान्त्रिक व्यवस्था को अपनाया। गांधी के ग्राम पंचायत की स्थापना के विचार को संविधान के नीति निर्देशक अध्याय में स्थान मिला जिसमें कहा गया कि राज्य ग्राम पंचायतों की स्थापना का प्रयास करेगा परन्तु यह वादयोग्य नहीं हैं। आगे चलकर 93वें सवैधानिक संशोधन द्वारा पंचायतों को संवैधानिक स्थिति प्रदान की।

परम्परागत रूप से भारतीय ग्रामों का राज्य से बहुत संबंध नहीं रहा हैं। गांव की आन्तरिक व्यवस्था में राज्य का हस्तक्षेप नहीं था। भारत में अंग्रेजी शासन आने के बाद ग्राम में जमींदारों का बोलबाला बढ़ा और जमींदारों ने अपनी क्षमता तथा रुचि के अनुसार ग्रामीण जीवन में प्रवेश किया। लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम होने से देश की योजना समाजवाद के नाम से बनने लगी तब से सरकार की संस्थाएँ ग्रामीण जीवन में प्रवेश करने लगी।[23] स्वतन्त्रता के पश्चात् भूमि सुधार तथा ग्रामीण विकास के कई कार्यक्रम शुरू किये गये परन्तु पर्याप्त राजनीतिक इच्छाशक्ति संवैधानिक अड़चनों तथा जनभागीदारी के अभाव के चलते यह असफल साबित हुए। दूसरी ओर भारत की स्वतन्त्रता के समय विकास के सिद्धान्त को व्यापक रूप से एकमत से स्वीकार किए जाने के कारण नेहरू महालनोबिस प्रकार की योजनाओं और सार्वजनिक क्षेत्र के विकास पर पूरा ध्यान केन्द्रित करना अनिवार्य हो गया। किन्तु ग्राम औद्योगिकीकरण के मार्ग पर नहीं चलने की कीमत एक बड़े श्रमिक वर्ग को चुकानी पड़ी जो हमेशा की तरह गरीबी से जूझता रहा। [24]

इन सबका परिणाम यह निकला की ग्रामीण समाज विकास की धारा से आज भी अछूता है। शहरी और ग्रामीण जीवन में व्यापक अन्तर परिलक्षित होता है, भारतीय ग्राम आज भी अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी, कठोर जातिगत संरचना के आश्रय स्थल हैं। यद्यपि स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आधारभूत ढांचे का व्यापक पैमाने पर विकास हुआ है परन्तु देश की अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या आज भी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के पिछड़ेपन ने कई क्षेत्रों में राज्यसत्ता से सीधे टकराव का रूप ले लिया है। नक्सलवाद इसका प्रमुख उदाहरण है। 1991 के पश्चात् अपनाई गयी वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया ने ग्राम और शहरों में व्यापक विषमताओं को जन्म दिया है। जिससे ग्रामीण समुदायों के समक्ष नयी चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं।

आज ऐसे समय में जब पूँजीवादी और समाजवादी प्रतिरूपों की असफलता हमारे सम्मुख उपस्थित हैं जहां पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र ने धन के केन्द्रीकरण तथा गम्भीर आर्थिक विषमताओं को जन्म दिया है। वहीं समाजवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र ने सत्ता के केन्द्रीकरण को जन्म दिया हैं। ऐसे स्थिति में आवश्यकता हैं कि ऐसे वैकल्पिक विकास प्रतिमान की जो धन और सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर आधारित हो, और यह रास्ता ग्रामीण समुदायों को स्वायत्तता आत्मनिर्भरता में ही निहित हैं। ग्रामीण समुदायों को सिर्फ राजनीतिक और अर्थव्यवस्था की इकाई के रूप में ही कार्यरत नहीं होना चाहिए ब्लकि सामाजिक परिवर्तन के संवाहक के रूप में भी अपनी भूमिका निभानी चाहिए। ग्रामीण स्वायत्तता पर आधारित यह प्रतिरूप ही देश की अधिकांश जनसंख्या की मूलभूत आवश्यकताओं को ही पूरा करने में ही समर्थ नहीं होगा वरन् सामाजिक परिवर्तन की दिशा में भी अग्रणीय भूमिका निभाएगा, साथ ही हाशिये पर पड़े समुदायों का सशक्तीकरण प्रदान करेगा। ग्रामीण समुदाय अज्ञानता, गरीबी, संकीर्णता और जातिवाद के दलदल से निकल कर स्वायत्तशासी समुदाय में परिवर्तित हो सके तभी वास्तविक स्वराज की प्राप्ति सम्भव है। गांधी के शब्दों में हमें ग्रामीण सभ्यता विरासत में मिली है। हमारे देश की विशालता उसकी विराट जनसंख्या, उसकी भौगोलिक स्थिति तथा उसका जलवायु सबको देखते हुए लगता हैं कि ग्रामीण सभ्यता ही उसके भाग्य में लिखी है। उसके दोषों को सब अच्छी तरह जानते हैं, परन्तु एक भी दोष ऐसा नहीं हैं जो दूर न किया जा सके।

संदर्भ सूची

1. जोधका, एस. सुरेन्द्र : नेशनल एण्ड विलेज : इमेजेस ऑफ रूरल इण्डिया इन गांधी, नेहरू एण्ड अम्बेडकर, इकानामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली मुम्बई वोल्यूम 37, नं. 32 (अगस्त 10-16 2002), पृ. 3343-3353
2. अटल, योगेश, चेन्जिग इण्डियन सोसाइटी, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2006, पृ. 105
3. गांधी, महात्मा : हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1959, पृ. 22
4. गांधी, महात्मा : हिन्द स्वराज, वही, पृ. 14
5. गांधी, महात्मा : ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 2011, पृ. 30
6. गांधी, महात्मा : ग्राम स्वराज, वही, पृ. 12
7. नेहरू, जवाहरलाल, विश्व इतिहास की झलक, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 49
8. गांधी, महात्मा : ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 2011, पृ. 14
9. गांधी, महात्मा : मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 2012, पृ. 102
10. गांधी, महात्मा : ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 2011, पृ. 25
11. राजकुमार, तद्‌भव (संपादित), बी.के. ऑफसेट, दिल्ली, 2010, पृ. 26
12. रोडरिग्ज वेलेरियन, द ऐसेनशियल राइटिंग्स ऑफ डॉ. बी.आर. अम्बेडकर आक्सफोर्ड यूनिवरसिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2011, पृ. 486
13. रोडरिग्ज वेलेरियन, वही, पृ. 486
14. वेलेरियन रोडरिग्ज, वही, पृ. 323
15. गांधी, महात्मा : ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 2011, पृ. 13
16. वेलेरियन, रोडरिग्ज, वही, पृ. 324
17. वेलेरियन, रोडरिग्ज, वही, पृ. 325
18. वेलेरियन, रोडरिग्ज, वही, पृ. 326
19. वेलेरियन, रोडरिग्ज, वही, पृ. 328
20. वेलेरियन, रोडरिग्ज, वही, पृ. 330
21. अटल योगेश, चेजिंग इण्डियन सोसायटी रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2006, पृ. 101
22. आस्टिन, ग्रेनविल, द इण्डियन कान्सटीट्यूशन: कार्नर स्टोन ऑफ ए नेशन, आक्सफोर्ड यूनिर्वसिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2008, पृ. 39
23. प्रसाद, अवध, ग्रामीण हिंसा एक अध्ययन, सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 2011, पृ. 126
24. ओम्वेट, गेल, जाति की समझ, महात्मा बुद्ध से बाबा साहेब अम्बेडकर और उनके बाद, ओरियंट ब्लैक स्वान, हैदराबाद, 2018, पृ. 72

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 34-38

बौद्ध धर्म में धर्मनिरपेक्षता

महेश कुमार दायमा

सहायक आचार्य, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

शोध सारांश

भारत में संरचनात्मक रूप से ही बहुलतावादी प्रवृत्तियां हैं और बौद्ध धर्म में यही बहुलता की प्रवृत्ति दूसरे धर्मों की बहुलतावादी प्रवृत्तियों को मान्यता देती है। मानव के जीने, स्वतन्त्रता एवं गरिमा के प्रश्नों का सक्षम उत्तर बौद्ध धर्म में ही मिल पाया है। सभी धर्मों के संरक्षण एवं संवर्द्धन बौद्ध धर्म में समान रूप से मिलता है। इस धर्म ने समस्त मानव समुदाय व समाज को सम्मानजनक नजर से देखा। उनकी अच्छाइयों की प्रशंसा की तथा उनमें व्याप्त बुराईयों की कटु आलोचना करते हुए सामाजिक पुनर्संगठन की कोशिश की ताकि हाशिए पर खड़े लोगों को धार्मिक भेदभाव से मुक्ति मिल सके। बुद्ध ने धार्मिक उत्पीड़न व धार्मिक कर्मकाण्डों के बोझ के तले दबे हुए मानव समाज को मुक्ति देने का सुगम एवं सरल मार्ग दिखाया। धर्म व संस्कृति की विविधता से परिपूर्ण भारत देश को विश्व गुरु बनाने में सबसे बड़ी रूकावट हमारी मानसिकता है जो हमें धर्म के नाम पर विभाजित ही नहीं करती बल्कि विभिन्न संघर्षों की भी पृष्ठभूमि तैयार करती है लेकिन बौद्ध धर्म धर्मनिरपेक्षता की जो सरिता बह रही है उससे भारतीय धर्मनिरपेक्षता का प्रतिबिम्ब दुनिया में प्रस्तुत करते हुए वसुधैव कुटुम्बकम को चरितार्थ किया जा सकता है।

संकेताक्षर : *बहुलता, वसुधैव कुटुम्बकम, सर्वधर्म समभाव, धार्मिक सहिष्णुता*

धर्मनिरपेक्षता और आधुनिकता को जुड़वा बहिनें माना जा सकता है। इन दोनों का मूल यूरोप के ईसाई धर्म के तेरहवीं शताब्दी के श्रद्धा और तर्क के विवाद में तर्क की विजय में निहित है। तर्क के विजय के तीन प्रमुख प्रभाव हुए, पहला प्रभाव यह हुआ कि धर्म द्वारा मान्य इस दृष्टि की ऊर्ध्वमूलता के स्थान पर गीता के शब्दों में अपरस्परसम्भूतता मान ली गई, दूसरे शब्दों में मनुष्य इस जगत का केन्द्र बिन्दु बन गया। ईश्वर की सत्ता नकार दी गई अथवा गौण कर दी गई और यह मान लिया गया कि मनुष्य ईश्वरीय शक्ति से स्वतंत्र है, उसके पास उसकी तर्क शक्ति है और इसके कारण वह ईश्वर की सत्ता से स्वतंत्र नहीं है, तो स्वायत्तता अवश्य प्राप्त कर ली। मूलत: यहीं से धर्मनिरपेक्षता और आधुनिकता आरम्भ होती है। धर्म निरपेक्षता शब्द वस्तुत: पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता की उपज है जो ईसाई धर्म के विरोध में एक आन्दोलन के रुप में प्रचलित होता है। अंग्रेजी रिलीजियन और भारतीय शब्द धर्म समानार्थक प्रतिशब्द नहीं है। रिलीजियन शब्द का तात्पर्य तीन-R (आर) के साथ समन्वित है-(1) रिच्युअल - अनुष्ठान क्रिया, (2) रीजनिंग - बौद्धिकता, (3) रीयलाइजेशन - आन्तरबोध।

सेकुलरिज्म अनुशासनहीनता नहीं है, धर्म नियमात्मक है। धर्म से निरपेक्ष होने के तीन अर्थ है- प्रथम - धर्म का परित्याग, धर्म-सन्यास, धर्म को हेय समझकर उसका प्रतिषेध। दूसरा - धर्म के प्रति तटस्थता अथवा उदासीनता की वृत्ति, धर्म को अनावश्यक तथा अनवधेय समझकर उसकी उपेक्षा। तीसरा - धर्म के सहारे धर्म का अतिक्रमण, धर्म से पार हो जाना, धर्म से आगे की भूमि पर पदार्पण करना। अंग्रेजी शब्द सेक्यूलर के स्थान पर धर्मनिरपेक्ष शब्द स्वीकृत हो चुका है। निरपेक्ष के मूल में ईक्षा शब्द है, ईक्षा, ईक्ष दर्शन धातु से निष्पन्न है प्रयोग की दृष्टि से दर्शन एवं ईक्षा में थोड़ा भेद है। उस दर्शन को ईक्षा कहते हैं जिसका लक्ष्य हेयोपादेय विवेक होता है तथा इसी ईक्षा में अप उपसर्ग लगाने से अपेक्षा शब्द तथा उप उपसर्ग लगाने से उपेक्षा शब्द बनता है। इसी अपेक्षा शब्द के साथ निर उपसर्ग जोड़कर - निर्गत: अपेक्षाया: इति निरपेक्ष: (अपेक्षारहित)। इस व्युत्पत्ति के अनुसार अपेक्षा रहित व्यक्ति को निरपेक्ष कहा जाता है। इस प्रकार से धर्म की निरपेक्ष का अर्थ है - धर्म की अपेक्षा से रहित।

भारत ने आजादी के उपरांत एक विशेष ऐतिहासिक परिस्थिति में एक विशेष मनोदशा में धर्मनिरपेक्षता की नीति अपनायी थी। सर्वधर्म समन्वय और सर्वधर्म समभाव के प्रयत्नों के बावजूद आज देश में धर्म विकृत हो रहा है। अतीत में धर्मों के नाम पर होने वाले युद्ध संघर्षों में मानव का अहित ही हुआ है। धर्म ने मानव जीवन को ऑक्टपस की तरह जकड़ रखा है कि, नई पीढ़ी को अपनी जन्मघुट्टी में ही धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता मिल रही है और आगे चलकर यही कट्टरता, पूर्वाग्रह और परस्पर घृणा, आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों की हवा पाकर हिंसक उग्रवाद के रुप में विकसित हो जाती हैं। राजनीति के संकीर्ण स्वार्थ उसे शह देते है और मानवीय तथा राष्ट्रीय एकता का हनन होने लगता है। समग्र धार्मिक मतान्धता और संघर्ष इसलिए होते हैं कि व्यक्ति धार्मिक सन्दर्भों में विचार और तर्क की अपेक्षा श्रद्धा को अधिक महत्त्व देते हैं। तर्क और चिन्तन से रहित श्रद्धा, अंधश्रद्धा होती है और अंधश्रद्धा से युक्त व्यक्तियों का उपयोग तथाकथित धार्मिक नेता अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए सहज ही कर लेते हैं।

वर्तमान में धर्म का सम्बन्ध लाभ से जोड़ा जाने लगा है जिससे धर्म के नाम पर अनर्थों के बादल मंडराने लगे हैं। धर्म तो केवल बुद्धि से पालनीय होते हैं। धर्म पालन के कारण लाभ यदि अनुसंगत मिल जाता है तो सच्चा धार्मिक या तो उसकी उपेक्षा करता है अथवा अनासक्त भाव से उसे स्वीकार करता है।

यह सुभाषित प्रसिद्ध है -

गुणाः खुल गुणा एवं न गुण भूतिहेतवः

धनसञ्चयकृतानि भाग्यानि पृथगेव हि।।

वर्तमान में भारत में धर्मनिरपेक्षता की स्थिति बहुत नाजुक दिखाई पड़ रही है। हमारे शासक वर्ग का रवैया अपने शोषणपरक हितों के लिए धर्म को बनाए रखने का है। चुनाव की राजनीति ने धार्मिक साम्प्रदायिकता को लगातार बढ़ावा दिया है। धर्म के नाम पर भारत के विभाजन की त्रासदी घटित होने के बाद भारत में हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान की धुर साम्प्रदायिक चेतना को लगातार प्रश्रय मिला है। धर्मनिरपेक्षता न तो हमारे समाज की आम विचार व्यवस्था का अंग बन पाई और न राज्य ही उसे सही मायनों में अंगीकृत कर सका। हमारे संविधान निर्माताओं ने धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना के लिए मूल अधिकारों के अतंर्गत अनुच्छेद, 25,26,27, व 28 के[1] द्वारा सभी धर्मों को स्वतंत्रता और समानता का अधिकार देकर राज्य धर्म के विचार को समाप्त कर तथा राज्य द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा पर प्रतिबंध लगाकर धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त को अपनाया गया। धर्मनिरपेक्षता का यह अर्थ नहीं है कि सरकार जनता को नास्तिक या धर्म विरोधी बनाना चाहती है। धर्मनिरपेक्ष राज्य न तो धार्मिक है और न अधार्मिक वह धर्मविरोधी भी नहीं है। राज्य धार्मिक मामलों में तटस्थ है। कामथ के शब्दों में - एक धर्मनिरपेक्ष राज्य न तो नास्तिक होता है, न धर्म विरोधी और न अधार्मिक। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के अनुसार - धर्मनिरपेक्ष भारत, धर्म को न तो हतोत्साहित करेगा और न उसका विरोध, वह सभी धर्मों तथा उसकी संस्थाओं के प्रति निष्पक्ष रहेगा।[2]

भारत में धर्मनिरपेक्षता की घोषणा एक ऐतिहासिक आवश्यकता रही थी। राज्य और राज्य की उत्पत्ति के पूर्व धर्म ही पूजा का रक्षक था। महाभारत में लिखा है - **न राज्य न च राजासीद न दण्डो न च दण्डिकः। धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्मे परस्परम।।** वैदिक, जैन और बौद्ध धर्म-दर्शनों में धर्म का धारणार्थक प्रयोग उल्लेखनीय है। अथर्ववेद में **पृथिवी धृर्मणा धृताम,** तैत्तिरीयारण्यक में **धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा** (तैत्तिरीयारण्यक 10/63/1 तो कूर्म पुराण 1/2/61) तथा महाभारत में **धारणाद धर्म इत्याहु धर्मो धारयते प्रजाः** (महाभारत/कर्णपर्व /69/59) बताया है। कृष्ण गीता में अर्जुन को धर्मातीत करना चाहते हैं- **सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज** (गीता 18/66)। मनु ने धर्म का स्वरुप बताया है- **विद्धद्धिः सेवितः सद्भिः नित्यमद्वेषिरागिभिः। हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत।।** अर्थात राग-द्वेषशून्य सज्जन विद्वानों के द्वारा जो सदा सेवित हो तथा हृदय से समर्पित हो, वही धर्म है।

योगभाष्य में **योग्यतावच्छिन्ना धर्मिणः शक्तिरेव धर्मः** (योगभाष्य/ विभूतिपाद 14) आचार्य नागसेन ने धर्म का अर्थ वस्तुस्वरुप अथवा वस्तुयायात्म्य घोषित करते हुये कहते है-

शून्यीभवदिदं विश्वं स्वरुपेण धृत पतः।

तस्माद् वस्तुस्वरुपं हि प्राहुधर्म महर्षयः।।

ततोड़नपेतं यज् ज्ञानं तद धम्य ध्यान मिष्यते।

धमो हि वस्तुयाथत्म्यमित्यार्षेप्यभिधानतः।।

(नागसेन 1 तत्त्वानुशासन 53-54)

A.N. ह्वाइटहेड़ धर्म को एकांकिता (solitariness) से समीकृत करता है और यह भी कहता है कि धर्म वह है जो व्यक्ति अपनी ही एकाकित से करता है।[3] रविन्द्र नाथ टैगोर अपनी The Religion of man (George Allen and unwin London, 1949 P. 17) नामक व्याख्यनमाला में लिखते हैं - हमारे ईश्वर की मानवता की धारणा, शाश्वत मानव का देवत्त्व है। जब हम बौद्ध धर्म के संदर्भ में इस धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा पर विचार करें तो हमें इस तथ्य को स्पष्ट रुप से स्वीकार कर लेना चाहिए कि बौद्ध धर्म

भी एक धर्म विशेष ही है। उसमें धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य दूसरे धर्मों के प्रति समादर भाव से अधिक नहीं है।[4] निरपेक्षतावाद की ही तरह बौद्ध धर्म का प्रारम्भकाल धर्म की विसंगतियों का काल था, तत्कालीन हिन्दूधर्म अपनी विशिष्टताओं के बावजूद् भी धर्म के ठेकेदार, मठाधीशों, पंडितों, पुरोहितों के हाथ बन्दी बन गया था। वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति के नाम पर बलिप्रथा की छूट दे दी गयी थी और कर्म की प्रधानता के बदले ईश्वर कृपा ही जीवन का सबल माध्यम बन गयी थी। मनुष्य क्रीतदास की तरह दु:ख, उत्पीडन, भय, आशंका आदि के साथ जीने के लिए विवश हो गया था।

ऐसी संत्रास की स्थिति में बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ, महामानव गौतम एक नयी आशा, विश्वास एवं नयी जीवन दृष्टि लेकर उपस्थित हुए, उनका एकमात्र उद्देश्य था मनुष्य मात्र के दु:खों को दूर करना और शांति प्रदान करना।

बौद्ध धर्म में धर्म शब्द-धरतितेना ति धम्मो धर धातु तथागत ने पंचवगीय भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा था चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन हिताय बहुजन सुखाय इस धर्म का प्रारम्भ कर रहा हूँ।[5] इस धर्म का प्रारम्भ बौद्ध दर्शन में धर्मचक्र-प्रर्वतन कहा गया है। इस धर्मचक्र को बुद्ध ने रुढ़िवादी तथा परम्परागत विचारों से मुक्त होने का उपदेश दिया है।

बौद्ध परम्परा में सत्य के अनेक पहलुओं को एक साथ देखना ही विद्वता है। थेरीगाथा में स्पष्टरुप से कहा गया है कि जो सत्य का एक ही पहलू देखता है वह मूर्ख है पण्डित तो सत्य को अनेक पहलुओं से देखता है। विवाद का जन्म एकांगी दृष्टि से होता है क्योंकि एकांगदर्शी ही आपस में झगड़ते हैं। जब हम सत्य को अनेक पहलुओं से देखते है तो निश्चय ही हमारे सामने विभिन्न पहलुओं पर विभिन्न रुप होते है।[6]

बुद्ध ने आर्य सत्यों के माध्यम से मृतप्राय मानवता को चेतना प्रदान करने का श्लाघ्य प्रयास किया। बुद्ध ने बताया कि मनुष्य ही जगत का श्रेष्ठ प्राणी है और अपने ही प्रयासों से परम सत्य की प्राप्ति कर सकता है। उन्होंने ईश्वर के खोखले विश्वासों का पर्दाफाश किया और ईश्वर के नाम पर हो रही हिंसा का विरोध किया। उनके ही प्रयत्नों से मनुष्य में पुन: सामर्थ्य बोध पैदा हुआ, यद्यपि यह सामर्थ्यबोध व्यक्तिपरक था लेकिन प्रकारान्तर से समष्टिपरक भी था। उन्होंने धर्म के सभी आडम्बरों को दूर करने की चेष्टा की और धर्म के वास्तविक रूप को लोगों के समक्ष रखने की कोशिश की, उन्होंने किसी भी धर्म पर सीधा प्रहार व तीक्ष्ण आलोचना नहीं की, बल्कि उसके बदले उन्होंने मानवतावाद की शिक्षा दी, जो सभी धर्मों का मूलमंत्र था।[7] चिन्तन के क्षेत्र में भी उन्होंने पहल करने की कोशिश की और बताया कि मानव जीवन की समस्याओं के निराकरण में चिन्तन का उपयोग होना चाहिए। उन्होंने आध्यात्मिक असंगता, उच्चादर्शवाद, जीवन की भद्रता, मानव करुणा आदि नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा की। वे सदा तत्त्वमीमांसीय व्याख्या से विरत रहे क्योंकि वे जानते थे कि उसका विवेचन व्यावहारिक दृष्टि से अनुपयुक्त है। उनके समस्त सिद्धान्त - प्रतीत्यसमुत्पाद, क्षणभंगुरवाद, द्वादश निदान, निरात्मवाद आदि की स्थापना के पीछे उनका मानव कल्याण का ध्येय रहा है। इस प्रकार गौतम बुद्ध प्रतिपादित बौद्ध धर्म निरपेक्षतावाद की तरह ही मानव जीवन का एक नया मूल्य लेकर उपस्थित हुआ, जो ईश्वरवाद के बदले मानववाद की स्थापना करता है, धार्मिक विसंगतियों का निर्णय करता है, पारलौकिकता से अधिक लौकिक उन्नयन में विश्वास रखता हैं. और नैतिक जागरण में आस्था प्रकट करता है। बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म की तरह वर्णाश्रम धर्म अथवा जाति-पाति के बंधनों में जकड़ा नहीं है। यह मनुष्य मात्र की समानता, समकक्षता और सहअस्तित्व में विश्वास रखता है, इसलिए यह धर्म पूर्णमानववाद का समर्थक है। इसके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष, मानव मूल्य को संस्कार के रुप में ग्रहण किये हुए है। बुद्ध के अनुसार तपस्या की साधना में संलग्न कोई भी मनुष्य, चाहे वह किसी जाति का हो अथवा धर्म का, जो कोई स्मृति प्रस्थानों की भावना से करेगा, वही निर्वाण का साक्षात्कार करने में समर्थ है।[8] प्रधान मनुष्यों में विभेद करने का प्रचलन वहां नहीं है। बुद्ध ने कहा कि - जाति मत पूछ, आचरण पूछ अथवा माजातिं पूछ, चरण चं पूछ। उनके अनुसार मनुष्य की श्रेष्ठता की पहचान उसके कर्म द्वारा होती है। उनका कहना था कि जिस प्रकार कीट, पतंग, चतुष्पद, मत्स्य, पक्षी आदि जातियों में जातिगत पृथक चिन्ह् होते है वैसे मनुष्यों में नहीं होते। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म, समस्त मानव को समान समझता है और समभाव दृष्टि का पोषक है।[9] बुद्ध ने कहा कि प्रत्येक मनुष्य अपने सत् प्रयत्नों से बुद्धत्व की प्राप्ति कर सकता है। भगवान बुद्ध ने स्वयं अपने प्रयत्नों से बुद्धत्व की प्राप्ति की थी- तीव्रै: प्रयत्नैरधिगम्य सत्यं अर्थात मनुष्य अपने भाग्य का विधाता स्वंय है, उसे किसी की कृपा की अपेक्षा नहीं है।[10] मनुष्य का भौतिक उन्नयन अथवा आध्यात्मिक विकास का दायित्व अपने आप पर है। मनुष्य के इस दायित्व बोध की चरम परिणति बुद्ध के शाक्य वचनों के पालन से ही सम्भव है।

बौद्ध धर्म ने सदैव ही श्रद्धा की अपेक्षा तर्क और प्रज्ञा को अधिक महत्व दिया है। आडारकलामसुत्त में बुद्ध स्पष्ट रुप से कहते हैं कि- हे कलाम तुम मेरी बात को केवल इसलिए सत्य स्वीकार मत करो

कि इनको कहने वाला व्यक्ति तुम्हारी आस्था या श्रद्धा का केन्द्र है। बुद्ध के शब्दों में - हे कलाम! जब तुम आत्म अनुभव से जान लो, ये बाते कुशल हैं, निर्दोष है, इनके आधार पर चलने से सुख होता है, तभी इन्हें स्वीकार करो अन्यथा नहीं। बुद्ध आस्था प्रधान धर्म के स्थान पर तर्क प्रधान धर्म के पालन की बात करते हैं।[11]

बौद्ध ग्रन्थ तत्त्वसंग्रह में कहा गया है कि जिस प्रकार स्वर्ण को तपाकर, काटकर, छेदकर और कसकर परीक्षा की जाती है- हे भिक्षुओं ! उसी प्रकार धर्म की भी परीक्षा की जानी चाहिए। उसे केवल शास्ता के प्रति आदर के कारण स्वीकार नहीं करना चाहिए।[12] धर्म के लिए श्रद्धा आवश्यक है किन्तु उसे विवेक का अनुगामी होना चाहिए। वस्तुत: धार्मिक जीवन में जब तक विवेक या प्रज्ञा का विश्वास या आस्था का नियंत्रक नहीं माना जाएगा, तब तक हम धार्मिक संघर्षो और धर्म के नाम पर खेली जाने वाली होलियों से मानव जाति को नहीं बचा सकेंगे। मनुष्य जब परावलम्बी होकर भाग्य या भगवान के भरोसे बैठ जाता है तो वह धर्म के सच्चे पथ से दूर हो जाता है इसलिए भगवान बुद्ध ने बतलाया है कि -अत्ता हि अत्तनों नाथो हो हि नाथो परोसिया अर्थात् मनुष्य स्वयं ही अपना नाथ, स्वामी, सहायक, सखा है। मनुष्य का कल्याण किसी दूसरे के अधीन नहीं है। मनुष्य स्वंय अपने भाग्य का निर्माता है, वह जो चाहे बन सकता है।[13] धर्मनिरपेक्षता का इतना जीवंत उदाहरण हमें अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होता। बोधिसत्त्व के लोक कल्याण के संकल्प का वर्णन करते हुए भी शांतिदेव कहते है-

अनाथानामहं दास: सार्थवाहश्च यायिनाम।
पारेप्सूनां च नौभूत: सेतु: संक्रम एव च।।
दीपार्थिनामहं दीप: शय्या शय्यार्थिनामहम।
दासार्थिनामहं दासों भवेयं सर्वदेहिनाम।।

अर्थात् मैं अनाथों का नाथ बनूंगा, यात्रियों का सार्थवाह बनूंगा, पार जाने वालों के लिए नौका बनूंगा, सेतु बनूंगा, दीपक और शय्या चाहने वालों के लिए दीपक और शय्या बनूंगा। जिन्हें दास की आवश्यकता है उनके लिए दास बनूंगा और सभी प्राणियों की सेवा करुंगा।[14]

इस संकल्प से स्पष्ट होता है कि मानव मात्र के कल्याण, उत्थान सर्वांगीण उन्नयन के लिए ही बोधिसत्व जीवन यापन करता है।

बौद्ध धर्म में सर्वधर्म समभाव एवं धार्मिक सहिष्णुता के पर्याप्त आधार है। बुद्ध का संदेश किसी विशेष दृष्टि को अंगीकार करना नहीं था क्योंकि सभी दृष्टियां तृष्णा के ही रुप है और सत्य के एकांश को ग्रहण करती है।[15] इन दृष्टियों से ऊपर उठना ही बुद्ध की धर्म देशना का सार है। दृष्टिराग के ऊपर उठना ही दृष्टि निरपेक्षता है और इसे ही हम धर्मनिरपेक्षता कह सकते है। सुत्तनिपात में बुद्ध कहते है कि - जो अपनी दृष्टि का दृढ़ाग्राही हो, दूसरों को मूर्ख मानता हैं, वह दूसरे धर्म को मूर्ख और अशुद्ध बतलाने वाला स्वयं ही कलह का आह्वान करता है किन्तु जो सभी धाराओं को स्थान देता है, वह मनुष्य संसार में कलह नहीं करता है। मध्यममार्ग का तात्पर्य है - विवादों से ऊपर उठना और इस अर्थ में वह किसी सीमा तक धर्मनिरपेक्षता का हामी है। सुत्तनिपात में लिखा है कि - विवाद के दो फल होते हैं- एक तो वह अपूर्ण और एकांगी होता है और दूसरे वह विग्रह और अशांति का कारण होता है। इसलिए बुद्ध कहते हैं कि निर्वाण को निर्विवाद भूमि समझने वाला साधक विवाद में न पड़े। बौद्ध दर्शन बुद्धि पर बल देता है, मानव चेतना को स्वतंत्र चिन्तन की दिशा में ले जाता है साथ ही बहुजन सुखाय और बहुजन हिताय के आधार पर खड़ा होकर धर्मनिरपेक्षता की आधुनिक अवधारणा के पक्ष में जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, बृजकिशोर, भारत का संविधान, प्रेंटिस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2002, पृ. 103-107
2. राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली, सेक्यूलिरज्म इन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 2008, पृ. 127
3. अल्फ्रेड नार्थ, व्हाइटहेड, रिलीजन इन दी मेकिंग, लॉविल लेक्चर्स, 1926, ट्यूडर पब्लिशिंग कम्पनी, पृ. 101-102
4. उपाध्याय, भरतसिंह, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1996, पृ. 336-350
5. कश्यप, भिक्खु जगदीश, संयुक्तनिकायपालि, नालन्दा देवनागरी पाली गन्थमाला, बिहार सरकार, 1959, पृ. 141-153
6. कश्यप, भिक्खु जगदीश, मज्झिमनिकायपालि, नालन्दा देवनागरी पाली गन्थमाला, बिहार सरकार, 1958, पृ. 282-290
7. एडवर्ड, जे. थॉमस, दी हिस्ट्री बुद्धिस्ट थॉट, रूटलेज एण्ड केगन पॉल लिमिटेड, लंदन, 1959, पृ. 249-260
8. गेल, ऑमवेटड, बुद्धिज्म इन इण्डिया, सेग पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 53-85
9. दासगुप्ता, सुरमा, डवलमेण्ट ऑफ मोरल फिलोसफी इन इण्डिया, ओरियंट लोंगमेन्स, नई दिल्ली, 1961, पृ. 150-154
10. वेंडी, डोंजियर, ओ'फलेरथी, कर्म एण्ड रिबर्थ इन क्लासिकल इण्डियन ट्रेडिशन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1983, पृ. 137-193

11. अम्बेडकर, डॉ. बी. आर., दी बुद्धिस्टि एण्ड हिज धम्म, ऑक्सफोर्ड, युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1957, पृ. 161-169
12. नागर, शांतिलाल, बुद्धा केरिटा ऑफ अश्वघोष, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2013, पृ. 208-215
13. शास्त्री, महंत श्री रामचन्द्रदास, बुद्धचरितम, प्रथम भाग, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2010, पृ. 223-231
14. रिज, डेविड्स, अर्ली बुद्धिज्म, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2015, पृ. 42-48
15. पाण्डे, जी.सी., स्टडीज इन दी ओरिजन ऑफ बुद्धिज्म, इलाहाबाद, 1957, पृ. 102-105

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 39-43

राष्ट्रीय संदर्भ में नवीन राज्यों की माँग

पूनम अग्रवाल

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

नवीन राज्यों को सांविधानिक जामा पहनाने के लिए और इसे स्वीकार करने के लिए ही संविधान के प्रारंभ में ही संघ और उसके राज्यक्षेत्र शीर्षक के अंतर्गत स्थान दिया गया है। भारत की आजादी के साथ ही स्पष्ट था कि नवीन राज्यों की माँगें उठेंगी। भारतीय संघ को लचीला बनाए रखने के लिए जरूरी था कि नवीन राज्यों को बनाने की प्रक्रिया सामान्य और आसान रहे। केंद्र की इस मामले में प्रमुख भूमिका है तथा राज्य विधानमंडल की मंजूरी एक औपचारिकता ही है। अत: भारत में नए राज्यों का निर्माण राजनीतिक दृष्टि से कोई मुश्किल चुनौती नहीं है। भारत में नए राज्यों के निर्माण की माँग के मामले में राजनीतिक पक्ष के अतिरिक्त कुछ और पक्ष अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। हालांकि राजनीतिक पक्ष इन पक्षों से जुड़ा रहता है क्योंकि बिना राजनीतिक संबलन और निर्णय के नए राज्य का अस्तितव में आना नामुमकिन है। नवीन राज्यों की माँगों के प्रमुख कारण निम्न हैं - पूर्व में राज्य के रूप में पहचान, धार्मिक पक्ष, जनजातीय पक्ष, आकार, आर्थिक विषमता, राज्यों में विवाद, भाषा और संस्कृति, सीमावर्ती क्षेत्र होने से उपेक्षा, नदीजल बँटवारा आदि। इस शोध पत्र के लेखन में वैज्ञानिक और विवरणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है तथा विद्वानों, शोध विशेषज्ञों, पुस्तकों और वेबसाइट्स की सहायता ली गई है।

संकेताक्षर : *नवीन राज्य, माँग, संघ, कारण, केन्द्र, संविधान*

नवीन राज्यों का निर्माण एक राजनीतिक व्यथा बन गया है। किसी निकटवर्ती राजनीतिक लाभ जैसे कि आगामी आम चुनावों में फिर से सत्ता में आने की चाह भी एक प्रकार से प्रजातंत्र के लिए अभिशाप ही है। विकास के मसले पर नवीन राज्यों की माँग उठने की स्थिति में एक अध्ययन किया जाना चाहिए कि नवीन राज्य के निर्माण के बाद विकास दर में वृद्धि होगी अथवा नवीन राज्य धन और वित्तीय सहयोग के लिए प्रतिवर्ष केंद्र सरकार पर आश्रित रहेगा। एक मजबूत केंद्रीय ढाँचे के लिए जरूरी है कि राज्यों का आर्थिक बोझ केंद्र पर न पड़े अन्यथा नवीन राज्यों के निर्माण का उद्देश्य ही दूषित हो जाएगा। भविष्य में उठने वाली माँगों के मामले में आर्थिक विकास के पहलू को प्राथमिकता दी जानी चाहिए तथा नए राज्य के संदर्भ में फैसला करने में जल्दबाजी न कर इसे राष्ट्रीय हित की दृष्टि से सोचना चाहिए। नवीन राज्यों का निर्माण उसी सूरत में होना चाहिए जब ऐसा किया जाना उचित हो। सरकारों के लिए विकास के संदर्भ में ध्यान केंद्रित करना प्राथमिकता होनी चाहिए। राज्यों के निर्माण का आधार केवल प्रशासनिक सुविधा के लिए कृत्रिम तौर पर सृजित खंडों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होना चाहिए। राज्यों को देश के खंडों के रूप में देखने की प्रवृत्ति विकसित होनी चाहिए। उन्हें पृथक अस्तित्व में देखना विखंडनकारी हो सकता है।

आंतरिक और बाह्य संघवाद के अनसुलझे प्रकरण

प्रथम, जिसने उत्तर-दक्षिण विभाजन, 1950 के दशक में अंबेडकर को तीव्रता से चिंतामग्न कर दिया था। उत्तर भारत के बड़े राज्यों के विभाजन से आंशिक रूप से दुर्बल हो गया था।

द्वितीय, विभाजित नस्लीय पहचान और सशक्त सूक्ष्म-क्षेत्रवाद ने मजबूर कर दिया कि अदूरदर्शी संघ सरकारों ने प्रशासनिक तार्किकता और वित्तीय व्यावहारिकता को प्राय: उपेक्षित कर नवीन राज्यों का निर्माण कर दिया।

तृतीय, जम्मू और कश्मीर तथा नागालैंड के भारत संघ के साथ असममित संघीय संबंध अभी भी पर्याप्त रूप से नहीं सुधरे हैं। इन राज्यों में अतिवाद के कारण समस्याएँ विशेष रूप से जटिल हो गई हैं।

चतुर्थ, स्वतंत्रता से पूर्व एवं पश्चात् नवीन राज्यों के सृजन के उपरांत भी भारत संघ अब भी विद्यमान आंतरिक सीमाओं में और उनके आर-पार धार्मिक, भाषागत, जाति और जनजातीय अल्पसंख्यकों का एक जटिल सम्मिश्रण है। उपमहाद्वीप के संपीड़ित भौगोलिक नमूने और जटिल जनांकिकी परंतु अनेकता में एकता की सर्वसमावेशी सभ्यता, के वृत्तिदान के कारण राज्यों का कोई भी पुनर्गठन समस्त प्रकरणों में आंतरिक रूप से समरूप और प्रशासनिक तथा वित्तीय दृष्टि से व्यावहारिक राज्यों का समूह की रचना नहीं कर सकता है। [1]

आंतरिक एवं बाह्य संघवाद के विवाद ने न केवल राज्यों की माँगों के आंदोलनों को प्रभावित किया है बल्कि केंद्र में विद्यमान सरकारें भी प्रत्येक माँग को संघ के ढाँचे से खिलवाड़ के तौर पर नहीं देखती हैं। विगत कुछ समय में भारतीय संघात्मक विचारधारा में स्वस्थ परिवर्तन देखने को मिला है।

भारतीय संघात्मक विचारधारा में परिवर्तन

भारतीय संघात्मक विचारधारा में परिवर्तन को तीन विकास चिह्नित करते हैं। प्रथम, जैसे जैसे लोकतंत्र अधिक प्रभावी हो रहा है, क्षेत्रीय पहचान, संस्कृति और भौगोलिक विभेदों को प्रशासनिक विभाजन और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लिए उचित आधार के रूप में मान्यता दी जा रही है। द्वितीय, केवल भाषा या संस्कृति के सिद्धांत (पुनर्गठन के प्रथम दो चरणों में भाषा और संस्कृति आधार थी) के बजाय अच्छे प्रशासन और विकास के आधार पर लघु राज्यों को प्रस्तावित किया जा रहा है। तृतीय, अब उप-भाषा समुदाय भी अपनी प्रादेशिक जन्मभूमि की माँग कर रहे हैं, साथ ही उप-भाषा की सांस्कृतिक और साहित्यिक विभिन्नता और प्रचुरता पर जोर दे रहे हैं (बुंदेलखंड)। [2] भारत एक विशाल संघ है अत: कोई आश्चर्य नहीं है कि अनेक राज्य ऐसे भी हैं जहाँ नवीन राज्यों की माँगें या तो अस्तित्व में ही नहीं है अथवा उनकी ध्वनि अत्यंत दुर्बल है और उपेक्षित की जा सकती है। अनेक राज्यों की माँगों के स्पष्ट होने के उपरांत भी केवल नौ राज्य ऐसे हैं जो सांस्कृतिक और प्रशासनिक दृष्टि से इतने सघन हैं कि इनमें नवीन राज्यों की कोई माँग नहीं है। ये राज्य हैं - अरूणाचल प्रदेश, गोवा, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, केरल, पंजाब, सिक्किम, तमिलनाडु और त्रिपुरा। इसके विपरीत छह ऐसे बड़े सम्मिश्रित राज्य हैं जिनमें लगभग 28 क्षेत्रीय समूह नवीन राज्यों की माँग कर रहे हैं - इन छह राज्यों में नवीन राज्यों की माँग इस प्रकार हैं - (1) आंध्र प्रदेश : तेलंगाना (माँग स्वीकृत), आंध्र और रायलसीमा, (2) बिहार : झारखंड (माँग स्वीकृत), मिथिला और मगध (3) मध्य प्रदेश : छत्तीसगढ़ (माँग स्वीकृत), मालवा, दंडकारण्य, भीलिस्तान और बघेलखंड, (4) महाराष्ट्र : कोंकण, खानदेश, मराठवाड़ा और विदर्भ, (5) राजस्थान : मेवाड़, मारवाड़ और मेवात अरावली तथा (6) उत्तर प्रदेश : उत्तराखंड (माँग स्वीकृत), बुंदेलखंड, ब्रज, अवध, हरित प्रदेश, रोहिलखंड, भोजपुर और पूर्वांचल। [3]

सफल माँगें

वर्ष 2000 में भारतीय संघ की संरचना में एक बड़ा परिवर्तन आया जब केंद्र में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार के नेतृत्व में तीन नवीन राज्यों के निर्माण की घोषणा की गई। प्रथम दृष्टया इस निर्णय को राजनीतिक कहा जा सकता है परंतु कुछ स्थानीय कारण थे जिन्हें बहुत लंबे समय तक उपेक्षित नहीं किया जा सकता था। झारखंड और छत्तीसगढ़ आदिवासी बहुल राज्य हैं। इन राज्यों में प्रचुर खनिज संपदा और बाहरी लोगों से स्थानीय आदिवासियों की अनबन के इतिहास ने केंद्र सरकार को दबाव में रखा और ये राज्य गठित हो गए। आदिवासियों के कष्टों के इतिहास की औपचारिक स्वीकारोक्ति के परिणामस्वरूप संघ में झारखंड और छत्तीसगढ़ नामक दो राज्यों का गठन हुआ।

समान रूप से प्राकृतिक संपदा में प्रचुरता और शक्तिशाली बाहरी रूचियों के कारण उत्तर प्रदेश के पहाड़ी जिलों से उत्तराखंड अस्तित्व में आया। [4] उत्तराखंड में सास्कृतिक विरासत की रक्षा के नाम पर चिपको आंदोलन ने राज्य के निवासियों को एक सूत्र में बाँधने का कार्य किया। सुन्दर लाल बहुगुणा का योगदान अविस्मरणीय है। उत्तराखंड की पहाड़ियों में जन वन आंदोलन चिपको, छत्तीसगढ़ खान श्रमिक संघ का ट्रेड यूनियन आंदोलन और झारखंड मुक्ति मोर्चा नीत झारखंड में कामगार-किसान आंदोलन दशक 1970 के आरंभिक चरण में हुए। [5]

झारखंड में भूमि और वन की महत्ता अधिक है अत: स्थानीय निवासियों के लिए उपयुक्त कानूनों का निर्माण और उनके अधिकारों की रक्षा के विषय झारखंड के जिन जिलों में चुनावी नारों की भाषा बने वहाँ झारखंड मुक्ति मोर्चा को सफलता हाथ लगी। झारखंड मुक्ति मोर्चा के पूर्व राजनीतिज्ञ स्टीफन मरांडी (2006-2008 तक झारखंड के उप-मुख्यमंत्री रहे) ने कहा ''हमने इन सभी प्रकरणों (भू परकीयकरण, वन अधिकार आदि) को उठाया परंतु संगठित रूप में नहीं उठाया इस कारण हमें छोटानागपुर क्षेत्र में अच्छी अनुक्रिया नहीं मिली। हालांकि झारखंड के निर्माण का समर्थन सभी ने किया। [6]

भारतीय संघवाद में एक विचित्र स्थिति है कि राज्यों के निर्माण में आर्थिक पक्ष को नगण्य कर दिया जाता है और स्थानीय विषय

अखबारों की सुर्खियाँ बन जाते हैं। झारखंड के निर्माण के उपरांत भी बिहार का विशेष दर्जे के राज्य की माँग करना और नीतीश कुमार जैसे प्रबल धुरंधर राजनीतिज्ञ के लिए भी बिहार के आर्थिक संकट के लिए कोई समाधान न खोज पाना आने वाले संकट की दस्तक मात्र है। आर्थिक व्यावहारिकता एक ऐसा प्रकरण है जिस पर भारत में राज्यों के निर्माण के समय विचार नहीं किया जाता है। उत्तर पूर्व के आठ राज्य अपने वार्षिक बजट व्यय के 80 प्रतिशत के लिए केंद्र पर निर्भर हैं और उन्हें विशेष राज्य का दर्जा दिया गया है जिसके कारण लाभान्वित राज्यों में निर्भरता की और बड़े लेकिन निम्न आय वाले राज्य जैसे बिहार में ईर्ष्या का भाव पैदा हो जाता है। [7]

उत्तराखंड जिसका प्रारंभिक नाम उत्तरांचल था, शेष उत्तर प्रदेश से उच्च जातियों के जनसंख्या अनुपात की दृष्टि से भिन्न है। उत्तराखंड देश का एकमात्र ऐसा राज्य है जिसमें उच्च जातियों का अनुपात अत्यधिक है।

उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश की जातिगत तुलना[8]

उत्तर प्रदेश प्रतिशत	उत्तराखंड प्रतिशत	उत्तर प्रदेश प्रतिशत
उच्च जातियाँ	74	17
ओबीसी एवं अन्य मध्यस्थ जातियाँ	3	43
अनुसूचित जातियाँ	18	22
अनुसूचित जनजातियाँ	5	0-2
मुस्लिम	नगण्य	16
अन्य	नगण्य	2

मानचित्र 1 : उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड में जातिगत तुलना

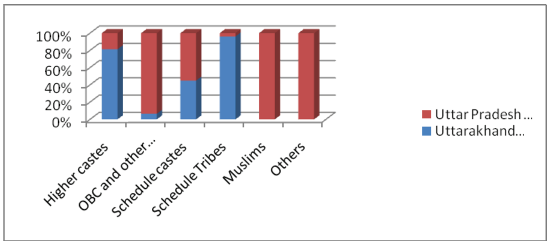

उत्तराखंड उत्तर प्रदेश का भाग था और राज्य के विधायिका स्तर पर राजनीतिक शक्ति उत्तराखंड के पहाड़ी लोगों को लगातार हाशिये पर लाती जा रही थी। उन्हें लगने लगा था कि यही स्थिति जारी रही तो राज्य की विधानसभा में पहाड़ी लोगों का अनुपात नगण्य रह जाएगा। स्थानीय लोगों के राजनीतिक, आर्थिक और प्रशासनिक विकास के लिए आवश्यक है कि उत्तराखंड उत्तर प्रदेश से पृथक हो जावे।

उत्तराखंड के संदर्भ में लोगों के एक विचारणीय संख्या न केवल राजनीतिक एवं प्रशासनिक शक्ति अधिग्रहण बल्कि सत्ता में परिवर्तन के बारे में चिन्तित हैं। पहाड़ी क्षेत्र के अनेक लोगों का सशक्त विचार है कि स्थानीय लोगों को न केवल घरेलू और वाणिज्यिक अवसरों का बड़ा हिस्सा मिलना चाहिए बल्कि जिन पर इनकी आजीविका निर्भर करती है उन संसाधनों के दोहन को भी पर्याप्त प्रकार से प्रबंधित किया जाना चाहिए। [9]

तेलंगाना भारत संघ का सबसे नवीन राज्य है परंतु इसके लिए आंदोलन अत्यंत दीर्घ काल से प्रवर्त है। हैदराबाद राज्य के भारत संघ में सम्मिलित होने से मना करने के उपरांत निजाम को विद्रोह का सामना करना पड़ा। हैदराबाद के आंध्र प्रदेश में विलय के प्रति भी विप्लव की स्थिति थी। परंतु मिश्रित तत्वों के कारण तत्कालीन जनसंख्या दो वर्गों में विभक्त हो गई जिनमें से एक वर्ग इसके पक्ष में था तो दूसरा इसके विपक्ष में था। इस जटिल स्थिति के कारण ही तेलंगाना को नवीन राज्य बनने में इतने वर्ष लग गए अन्यथा इस आंदोलन में 1969 के बाद एक बार फिर से जान आ गई थी। जैसे हैदराबाद के विभाजन के बाद तेलंगाना क्षेत्र में कांग्रेस की राजनीतिक स्थिति प्रभावित हुई, उसी प्रकार तेलंगाना के बनने के बाद तेलंगाना राज्य की राजनीतिक सीमाओं में टीडीपी और कांग्रेस अपना अस्तित्व ढूंढने का प्रयास कर रहे हैं।

हैदराबाद राज्य के विभाजन की माँग प्रमुख रूप से पूर्व निजाम के राज्य के प्रति सामान्य शत्रुता के कारण था जिसने संघ सरकार और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का विरोध किया था। विभाजन का विद्रोह हैदराबाद राज्य में मराठा और कन्नड़ तत्वों के द्वारा नीत किया गया जो अपने क्षेत्रों को क्रमश: बोम्बे प्रांत और मैसूर राज्य में विलय को प्राथमिकता देते थे। (राव के वी नारायण (1973) द इमर्जेंस ऑव आंध्र प्रदेश, पोप्यूलर प्रकाशन, बोम्बे, पृष्ठ संख्या 289) फिर भी हैदराबाद के विभाजन के साथ तेलंगाना में कांग्रेस की स्थिति दल राजनीतिक संदर्भ और जाति प्रभाविता संदर्भ में पुनराकलित होगी। [10]

कारणों की विवेचना

पूर्व में राज्य के रूप में पहचान : विन्ध्य प्रदेश, कच्छ, सौराष्ट्र आदि कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जो पूर्व में राज्य रहे हैं। इन क्षेत्रों में निवास करने वालों के लिए इस सत्य को पचाना मुश्किल होता है कि उनके राज्य की पहचान मिटा दी गई है। तत्कालीन परिस्थितियों में बहुत अधिक राज्यों का निर्माण एक विध्वंसकारी कदम हो सकता था

इसलिए विलय की नीति को प्रमुखता दी गई परंतु पूर्व में राज्य रहे क्षेत्रों को राजनीतिक दूरदर्शिता से नहीं देखा गया और इनकी अवहेलना की गई इस कारण से माँगें अभी तक बनी हुई हैं।

धार्मिक पक्ष : भारत के उत्तर में स्थित राज्य जम्मू और कश्मीर में डोगरादेश, कश्मीर और लद्दाख की माँग का आधार धार्मिक ध्रुवीकरण है। धर्म के आधार पर लोगों का बस जाना और कश्मीरी पंडितों के पलायन के बाद घाटी में धार्मिक कट्टरता के कारण यह राज्य धार्मिक रूप से बँट गया है। केंद्रीय स्तर पर धार्मिक पलायन जैसी घटनाओं की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए थी। अभी समय है कि इस व्यवस्था को बदला जाना चाहिए। इसमें केंद्र सरकार और राज्य सरकार की सम्मिलित भागीदारी होनी चाहिए।

जनजातीय पक्ष : बोडो, दीमासा, कुकी, गारो आदि जनजातियों ने अलग राज्यों क्रमश: बोडोलैंड, दीमाराजी, कुकीलैंड, गारोलैंड आदि के लिए आंदोलन चलाए। जनजातीय लोगों को देश की मुख्यधारा में लाने का कार्य ईमानदारी से किया जाना चाहिए था। शिक्षा और रोजगार के माध्यम से जनजातीय विकास को नए आयाम देने की आवश्यकता है। चीन से भारत की विदेश नीति को ध्यान में रखते हुए पूर्वोत्तर अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसकी और अवहेलना राष्ट्र के लिए घातक हो सकती है। जनजातीय नेता केंद्र की राजनीति में शामिल होकर इन अनावश्यक माँगों की हवा निकाल सकते हैं। इस क्षेत्र में उठने वाले उपद्रवों को दबाने के लिए बलप्रयोग के स्थान पर समझाइश की आवश्यकता है जो स्थानीय लोगों की उपस्थिति में ही संभव है।

आकार : उत्तर प्रदेश राज्य जनसंख्या की दृष्टि से अत्यंत विशाल था। उत्तराखंड बन जाने के बाद भी जनसंख्या के मामले में इस राज्य का प्रथम स्थान बरकरार है। पूर्वांचल, पश्चिमांचल (हरित प्रदेश), ब्रज प्रदेश, अवध और बुन्देलखंड की माँग उठने का कारण जातिगत विषमता के साथ राज्य का बड़ा आकार ही है। बड़े राज्यों में मुख्यमंत्री और केबिनेट के लिए अपने दल की दृष्टि से आर्थिक विकास के पैमाने निर्धारित करने की प्रवृत्ति हो जाती है। बड़े क्षेत्र पर ध्यान देना मुश्किल हो जाता है जिससे राजनीतिक उपेक्षा की बातें सामने आती है।

आर्थिक विषमता : आर्थिक रूप से असमान वितरण भी नवीन राज्यों की माँग का कारण बन जाता है। कोंकण और कराईकल जहाँ आर्थिक उपेक्षा का शिकार हैं। कोंगुनाडु की माँग करने वालों को लगता है कि कोंगुनाडु राज्य के आर्थिक विकास में अधिक योगदान देने के बावजूद उपेक्षित है। दोनों ही स्थितियों में असंतोष का वातावरण बनता है जो राज्य की भौगोलिक सीमाओं में परिवर्तन का कारण बन जाता है। राज्य और केंद्र की उचित आर्थिक नीतियाँ प्रभावी हो सकती हैं तथा इनके माध्यम से इस असमानता को दूर किया जा सकता है।

राज्यों में विवाद : हैदराबाद क्षेत्र अत्यंत समृद्ध है तथा तेलंगाना और आंध्र प्रदेश के बीच झगड़े की जड़ है। हैदराबाद के विकास पथ पर अग्रसर होने का श्रेय दोनों ही राज्य लेना चाहते हैं। जहाँ भौगोलिक दृष्टि से यह तेलंगाना में है वहीं हैदराबाद के अधिकांश राज्य कर्मचारियों का मूल राज्य आंध्र प्रदेश है। दस वर्षों तक हैदराबाद दोनों राज्यों की संयुक्त राजधानी बना रहेगा। कहीं ऐसा न हो कि इसका भविष्य भी चंडीगढ़ की तरह केंद्र शासित प्रदेश बनने में सीमित हो जाए। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो यह क्षेत्र दोनों राज्यों के बीच विवाद का कारण बना रहेगा।

भाषा और संस्कृति : भाषा और संस्कृति भी पहचान के संकट को बढ़ाते हैं। मिथिलांचल की माँग का एकमात्र आधार मैथिली भाषा है जबकि गोरखालैंड की माँग का कारण गोरखा संस्कृति है। स्वयं को भाषा अथवा संस्कृति के आधार पर शेष भारत से भिन्न मानने की भावना के कारण ऐसी परिस्थितियाँ पैदा होती हैं। राष्ट्रीय स्तर पर अनेक ऐसी योजनाएँ बनती हैं तथा राज्य स्तर पर अनेक संस्थान बनाए जा सकते हैं जो भाषा और संस्कृति के परिरक्षण के लिए कार्य करें तो जनभावना को नियंत्रित करने में मदद मिलेगी।

सीमावर्ती क्षेत्र होने से उपेक्षा : राज्यों के सीमावर्ती क्षेत्र जहाँ समीपस्थ राज्य के लोग बसते हों अथवा सांस्कृतिक रूप से भिन्न हों तो उपेक्षित होने की संभावना और भाव दोनों ही बढ़ जाते हैं। तुलुनाडु कर्नाटक और केरल की सीमा पर स्थित वह क्षेत्र हैं जहाँ तुलु संस्कृति के कारण दोनों ही राज्य कम ध्यान देते हैं और परिणामस्वरूप इस क्षेत्र के निवासियों में असंतोष व्याप्त है। दीर्घकालीन योजनाओं के माध्यम से इनका विश्वास जीतने की ईमानदार और सार्थक कोशिश लोगों के जेहन से इस बात को निकाल सकती है कि अलग राज्य कोई समस्याओं से निकलने का तरीका नहीं है।

भारत में नए राज्यों के निर्माण की माँग के मामले में राजनीतिक पक्ष के अतिरिक्त कुछ और पक्ष अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। हालांकि राजनीतिक पक्ष इन पक्षों से जुड़ा रहता है क्योंकि बिना राजनीतिक संबलन और निर्णय के नए राज्य का अस्तितव में आना नामुमकिन है। एक मजबूत केंद्रीय ढाँचे के लिए जरूरी है कि राज्यों का आर्थिक बोझ केंद्र पर न पडे अन्यथा नवीन राज्यों के निर्माण का उद्देश्य ही दूषित हो जाएगा। भविष्य में उठने वाली माँगों के मामले में आर्थिक विकास के पहलू को प्राथमिकता दी जानी

चाहिए तथा नए राज्य के संदर्भ में फैसला करने में जल्दबाजी न कर इसे राष्ट्रीय हित की दृष्टि से सोचना चाहिए। नवीन राज्यों का निर्माण उसी सूरत में होना चाहिए जब ऐसा किया जाना उचित हो। सरकारों के लिए विकास के संदर्भ में ध्यान केंद्रित करना प्राथमिकता होनी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. सिंह, महेन्द्र प्रसाद, रिआर्गनाइजेशन आव स्टेट्स इन इंडिया, इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, वोल्यूम 43, संख्या 11, ईपीडब्ल्यू प्रकाशन, मुंबई, मार्च 15-21 2008, पृ. 74
2. फड़, डा. एस. बी., भारतीय संघात्मक विचारधारा शब्द ब्रह्म, वोल्यूम 1, संस्करण 12, शब्द ब्रह्म प्रकाशन, इंदौर, 17 अक्टूबर 2013, पृ. 6
3. मजीद, अख्तर, दी चेंजिंग पोलिटिक्स आव स्टेट्ज रिआर्गनाइजेशन, पब्लियस वोल्यूम 33, संख्या 4,, इमर्जिंग फ ेडरल प्रोसेस इन इंडिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, आक्सफोर्ड, आटम 2003, पृ. 91
4. गुहा, रामचंद्र, इंडिया आफ्टर गाँधी : द हिस्ट्री आव वर्ल्ड्ज लार्जेस्ट डेमोक्रसी, मेक्मिलन, लंदन, 2007, पृ. 621
5. टिलिन, लुईस, क्रेश्चनिंग बोर्डर्स : सोशियल मूवमेंट्स, पोलिटिकल पार्टीज एंड द क्रियेशन आव न्यू स्टेट्स इन इंडिया, पैसिफिक अफेयर्स, वोल्यूम 84, संख्या 1, यूनिवर्सिटी आव ब्रिटिश कोलंबिया, वैंकूवर, मार्च 2011, पृ. 72
6. टिलिन, लुईस, क्रेश्चनिंग बोर्डर्स : सोशियल मूवमेंट्स, पोलिटिकल पार्टीज एंड द क्रियेशन आव न्यू स्टेट्स इन इंडिया, पैसिफिक अफेयर्स, वोल्यूम 84, संख्या 1, यूनिवर्सिटी आव ब्रिटिश कोलंबिया, वैंकूवर, मार्च 2011, पृ. 78
7. आशुतोष, कुमार, एक्सप्लोरिंग द डिमांड्स आव न्यू स्टेट्स, इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, वोल्यूम 45, संख्या 33, ईपीडब्ल्यू प्रकाशन, मुंबई, अगस्त 14-20, 2010, पृ. 17
8. मौडस्ले, एमा, ए न्यू हिमालयन स्टेट इन इंडिया : पोपुलर परसेप्शंस आव रिजनलिज्म, पोलिटिक्स एंड डेवलपमेंट, माउण्टेन रिसर्च एंड डेवेलपमेंट, वोल्यूम 19, संख्या 2, इंटरनेशनल माउंटेन सोसायटी, बर्न, मई 1999, पृ. 103
9. मौडस्ले, एमा, ए न्यू हिमालयन स्टेट इन इंडिया : पोपुलर परसेप्शंस आव रिजनलिज्म, पोलिटिक्स एंड डेवलपमेंट, माउण्टेन रिसर्च एंड डेवेलपमेंट, वोल्यूम 19, संख्या 2, इंटरनेशनल माउंटेन सोसायटी, बर्न, मई 1999, पृ. 111
10. पिंगले, गौतम, द हिस्टोरिकल कंटेक्स्ट आव आंध्र एंड तेलंगाना, 1949-56, इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, वोल्यूम 45, संख्या 8, ईपीडब्ल्यू प्रकाशन, मुंबई, फरवरी 20-26, 2010, पृ. 65

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 44-47

भारतीय राजनीति में नैतिक मूल्यों का पतन : एक विश्लेषण

डॉ. सुनील महावर

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, टोंक (राजस्थान)

शोध सारांश

भारत का स्वतंत्रता संग्राम नैतिकता के मानदण्डों को स्थापित करता है तथापि इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि स्वतंत्रता के उपरान्त नवोदित सत्ता जैसे-जैसे आगे बढ़ी उसमें नैतिक मूल्यों की कमी दृष्टिगत होती गयी जिसने आज विकराल रूप धारण कर लिया है। नवोदित राजनेताओं का ध्येय जन कल्याण न होकर स्वकल्याण हो गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान राजनीति में बढ़ती अनैतिकता को व्याख्यायित एवं विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है, जिसने भारतीय राजनीति के समक्ष विभिन्न समस्याओं को जन्म दिया है; उदाहरण के लिए चुनावों में धनबल एवं भुजबल द्वारा लोकतांत्रिक व्यवस्था पर किया जाने वाला प्रहार, राजनीति का अपराधीकरण, चुनावों के पश्चात् सत्ता हथियाने के हथकण्डों को अपनाना, सार्वजनिक पद को प्राप्त करने के पश्चात अपनी सत्ता का दुरूपयोग और भ्रष्टाचार इत्यादि। ये महज कुछ उदाहरण हैं जो भारतीय राजनीति की विकृत स्थिति को प्रस्तुत करते हैं। इस तरह की अनेक समस्यायें भारतीय राजनीति का पतन निरन्तर करती जा रही हैं। द्वितीयक तथ्यों पर आधारित इस पत्र में मुख्यत: वर्णनात्मक एवं विश्लेषण पद्धतियों का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत पत्र इन समस्याओं के संदर्भ में नैतिक मूल्यों की स्थापना को एक समाधान के रूप में विश्लेषित करने का एक विनम्र प्रयास है।

संकेताक्षर : *भारतीय राजनीति, नैतिकता, मूल्य, लोकतंत्र, जनकल्याण*

किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में विद्यमान समस्याओं का समाधान स्वत: ही हो जायेगा यदि उस व्यवस्था की राजनीति नैतिक मूल्यों पर आद्धृत हो। जैसा कि विदित है लोकतंत्र को ऐसे शासन के रूप में देखा जाता है जो जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिए हो। अब्राहम लिंकन के ये वाक्य तभी प्रतिफलित हो सकते हैं जब किसी भी देश की राजनीति में नैतिक मूल्य विद्यमान हो इनके अभाव में राजनीतिक व्यवस्था और उस तंत्र की जनता को गम्भीर दुष्परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। जैसा कि हम वर्तमान भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में देख रहे हैं। ऐसा दृष्टिगत होता है कि व्यक्तिगत स्वार्थों और राजनीतिक दलों के द्वन्द्व ने नैतिक मूल्यों को उठाकर ताक पर रख दिया है। राजनेताओं के समस्त क्रियाकलाप स्वार्थ निदेशित हो गये हैं। भारत का स्वतंत्रता संग्राम नैतिकता के मानदण्डों को स्थापित करता है किन्तु इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि स्वतंत्रता के उपरान्त नवोदित सत्ता जैसे-जैसे आगे बढ़ी उसमें नैतिक मूल्यों का ह्रास दृष्टिगत होता गया जिसने आज विकराल रूप धारण कर लिया है। भारतीय परम्परा कभी भी ऐसी नहीं रही। भारतीय परम्परा ने हमेशा कर्तव्य पालन को महत्व दिया और राजा के ऐसे कर्तव्यों को प्रतिपादित किया जो प्रजा-रंजन अर्थात जन कल्याण से प्रेरित हों।

भारतीय चितंन परम्परा में यदि राजनीति की धारणा पर दृष्टिपात किया जाये तो वह धर्म पर आधारित नैतिक प्रयोजन से जनकल्याण हेतु निर्धारित नीति के रूप में व्याख्यायित की गई है। यहाँ धर्म का तात्पर्य किसी समुदाय विशेष से न होकर व्यापक अर्थ में है। धर्म का आशय मानव समाज का संचालन करने वाले नियमों का ज्ञान प्राप्त अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करने से लगाया गया है। ऐसे नियमों के समुच्चय को ही धर्म कहा जा सकता है जो सद्गुण और न्याय पर आधारित हो। प्राचीन भारतीय राजनीतिक परम्परा के परिप्रेक्ष्य में यदि कौटिल्य के चितंन पर दृष्टिपात किया जाये तो स्पष्ट होता है कि वह राजनीतिक क्षेत्र में धर्म, न्याय एवं नैतिकता को ही प्राथमिकता देकर जनकल्याण को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हैं।

कौटिल्य के शब्दों में-

''तस्मात्स्व धर्मभूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।
स्व धर्मसंदधानो हि प्रेत्य चेह न नन्दति। ।''[1]

अर्थात् राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा को धर्म और कर्म के मार्ग से भ्रष्ट न होने दे। अपनी प्रजा को धर्म और कर्म में प्रवृत्त रखने वाला लोक और परलोक में सुखी रहता है। उस समय धर्म राजा की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश रखता है। वस्तुत: कौटिल्य प्रजा को अधिकार प्रदान करते हुए राजा पर नैतिक मूल्यों एवं धर्म के साथ प्रजा के नियंत्रण को भी स्वीकार करता है। यदि राजा प्रजा के विरूद्ध कोई कार्य करता है तो ऐसी स्थिति में प्रजा द्वारा ऐसे राजा का त्याग किया जा सकता है। कौटिल्य का कहना है कि 'निरंकुश राजा की अपेक्षा राजा का आश्रय नहीं प्राप्त होना ही अच्छा है।[2] 'उसका यह मानना है कि प्रजा के सुख में सुख और प्रजा के हित में ही राजा को अपना हित समझना चाहिए। बात तो यह है, कि राजा का अपना प्रिय और हितकारी कोई कार्य पृथक् नहीं है। प्रजा प्रिय और हितकारी कार्य ही राजा का प्रिय और हितकर कार्य है। 'इस बात को ध्यान में रखकर राजा नित्य उद्योग में तत्पर हों और नीति के अनुसार आज्ञा देता रहे। जो नीति के अनुसार चलेगा, उसकी उन्नति होगी और संकट उससे कोसों दूर भाग जावेगा।'[3] इस प्रकार प्राचीन भारत में शासकीय प्रतिनिधि अर्थात राजा के कर्तव्यों के संदर्भ में नैतिक मूल्यों की प्रधानता रही जो मूलत: धर्म से सम्बद्ध है। यह धारणा वेदव्यास जैसे ऋषियों से लेकर कौटिल्य और शुक्र तक सभी के चिंतन में दृष्टिगत होती है। इन्होंने राजनीति को राजधर्म के रूप में प्रतिपादित किया और धर्म के महत्व को सभी कार्यकलापों में महत्वपूर्ण स्थान दिया।

आधुनिक भारत के निर्माताओं ने भी भारतीय राजनीति को इसी दृष्टि के साथ आत्मसात किया। पुनर्जागरण काल और भारत की स्वतंत्रता के पश्चात कुछ समय तक भारतीय राजनीति इसी धर्म और नैतिकता के संदर्भ में विकसित एवं परिभाषित दिखाई देती है। गांधी स्पष्ट रूप से भारत में ऐसी ही व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे जो आदर्श और नैतिकता पर आधारित सम्पूर्ण जन कल्याण का विचार अपने केन्द्र में स्थापित करे। इसीलिये वे राजनीति के आध्यात्मीकरण के पक्षधर थे। 'गांधी के चिंतन में 'राजनीति' धर्म और नैतिक मूल्यों से युक्त होकर समाज के लिए रूपान्तरणकारी बन जाती है। गांधी ने राजनीति के नीति-प्रधान एवं लोककल्याणकारी पक्ष को अत्यन्त महत्व दिया है। गांधी के अनुसार राजनीति मानवीय मूल्यों पर आधारित है। उन्होंने राजनीति में 'साध्य' और 'साधन' की पवित्रता पर बल देकर मानवता-प्रेरित धर्मपरायण राजनीति को समाज में स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने नैतिकता एवं नीतिपरकता के ढाँचे में ही शासन कार्यों को संचालित करने की प्रेरणा प्रदान की। उनकी मान्यता थी कि राजनीति को नैतिक आदर्शों, सदाचार एवं सद्गुणों पर आधारित होना चाहिए।'[4] वे प्रत्येक राजनीतिक संस्था को नैतिक मूल्यों की कसौटी पर कसना आवश्यकता मानते थे। उनका मानना था जो राजनीति धर्म से विहीन है, वह मृत्युजाल के तुल्य है और आत्मा को पतन के गर्त में धकेलती है। यहाँ पर वे धर्म को संकीर्ण अर्थ में स्वीकार नहीं करते वरन् वे सभी पंथों के मूल तत्व को एक मानते हुए कहते हैं कि सभी धर्मों का सारतत्व एक ही है। उनकी दृष्टि में राजनीति वहीं तक वरेण्य है जहाँ तक वह नैतिकता की कसौटी पर खरी उतरती हो। इस प्रकार वे राजनीति से नैतिक मूल्यों का एक अटूट सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

उपर्युक्त विचार चिंतन इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं नैतिक मूल्यों के बिना राजनीति अपने स्वत: पतन की ओर अग्रसर हो जाएगी। भारत के वर्तमान राजनीतिक संदर्भ को इसी रूप में विश्लेषित किया जा सकता है। वर्तमान भारतीय राजनीति अपने पुरातन कालीन इतिहास को विस्मृत कर कुछ निहित स्वार्थों के मद्देनजर नैतिक मूल्यों से विहीन होती नजर आ रही है। 'देश की मौजूदा राजनीति एवं आधुनिक नेता विकृत सोच की उपज हैं। देश की राजनीति अपराधीकरण तथा काले धन के पंजों में फंसती जा रही है। झूठ का बोलबाला है। नेतागण सार्वजनिक जीवन में गंदगी फैला रहे हैं। राजनीति एक व्यवसाय बनती जा रही है, जनता की सेवा तो अतीत की बात हो गई है। राजनीति में धन-बल, बाहु-बल का निरन्तर दुरुपयोग होता जा रहा है। नित नये घोटाले सर्वोच्चता के कीर्तिमान स्थापित करने की होड़ में लगे हैं। एक घोटाले की जाँच पूरी होती नहीं की दूसरा घोटला सामने आ जाता है। साम्प्रदायिक हिंसा राजनीति का एक अविच्छिन्न हिस्सा बनती नजर आ रही है। कुछ सत्ता लोलुप स्वार्थी राजनेताओं ने भारतीय राजनीति का अवांछित अपहरण कर अपनी क्रीड़ा स्थली के रूप में निर्मित कर लिया है जो भ्रष्टाचार की राह पर चलते हुए सम्पूर्ण पुरस्कार स्वयं ही प्राप्त कर लेने की होड़ में बढ़ चढ़कर भाग ले रहे हैं। प्रजारंजन का भारतीय आदर्श जो प्राचीन मनीषियों और आधुनिक भारत के जन्मदताओं द्वारा नैतिक मूल्यों को समावेशित करते हुए रखा गया था अब कहीं दूर तक दिखलाई नहीं पड़ता। स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है भारतीय राजनीति की ये सभी समस्याएँ मूलत: नैतिक मूल्यों के पतन के फलस्वरूप ही उत्पन्न हुयी हैं।

भारतीय राजनीति में नैतिक मूल्यों के पतन ने उसका स्वरूप इस हद तक बिगाड़ दिया है कि उसका चेहरा ही स्पष्ट नहीं हो पाता। जो राजनेता आज अपने विचार रखता है कल उससे पलट जाता

है। नेतृत्व शून्यता से ग्रसित भारतीय राजनीति में अब लोकतांत्रिक मूल्य पृष्ठभूमि के विषय हो गये हैं। कुछ राजनीतिक दल अमेरिकी शैली के आधार पर केन्द्रीय नेतृत्व को भुनाने का प्रयास करने में लगे हैं, दूसरे भारतीय जनता को लूटने में। ऐसे में भारतीय राजनीति नेतृत्व हीनता के संकट से जूझती हूई अंधेरे कुएं की तरफ बढ़ती नजर आ रही है। ''आज राजनीतिक दलों, विचारधाराओं, कार्यक्रमों और आश्वासनों की बहुतायत के बावजूद ऐसा एक भी नेता नहीं है, जो जनता में कोई राजनीतिक विश्वास जगा सके, उसे कोई सपना दे सके और यदि सपना दे भी दे तो उसे पूरा कर सके तथा उसे किसी परिवर्तनगामी चेतना से जोड़ सके। प्रजातंत्र का मुखौटा ओढ़ कर जो ताकतें इस देश की सत्ता पर काबिज़ हैं या जिनमें यह सत्ता हासिल करने की आपाधापी है, वे भ्रष्ट और बेईमान तो हैं ही, कहीं-कहीं सांमतवादी और कहीं-कहीं फासिस्ट मनोवृत्तियों और महत्वाकांक्षाओं से भी परिचालित हैं और उनके लिए इस देश की प्रजातांत्रिक प्रक्रिया महज़ एक सुविधा, एक सीढ़ी हो गयी है, जिसे वे मन चाहे आधारों पर टिका कर ऊपर पहुँचने की कोशिश करते हैं। इतना ही नहीं, वे एक तरह की जड़ता और दृष्टिहीनता के भी गहरे शिकार हैं और यथास्थितिवाद की गलियों में घूम रही उनकी राजनीति के पास भविष्य की कोई सड़क नहीं है, उसका कोई सपना नहीं है।''[5] गांधी, सरदार पटेल, लोहिया, जयप्रकाश और नेहरू का नाम लेने वाले आज सबसे बड़े अविश्वसनीय लोग हो चुके हैं। अवसरवादी नेतृत्व और इसकी विश्वसनीयता का अभाव वर्तमान भारतीय राजनीतिक का सबसे बड़ा संकट कहा जा सकता है।

भारतीय राजनीति में ऐसा वक्त भी रहा है जब नेतृत्व जनसंघर्षों से उभरकर सामने आया और इस नेतृत्व का मुख्य लक्ष्य जनता को उनके अधिकारों तक पहुंचाना रहा। इस दौर में राजनीतिक दलों में भी थोड़ी बहुत सच्चरित्रता परिलक्षित होती थी, किन्तु वर्तमान राजनीतिक परिवेश सम्पूर्ण रूप से बदल गया है, राजनीति से पूर्णत: नैतिक मूल्यों का लोप हो गया है। आपातकाल के पश्चात् यह स्थिति में निरन्तर तीव्र गति से पतन की ओर अग्रसर हुई है। अधिकांश दल उन उम्मीदवारों को खोजने का प्रयास करते हैं जो येन केन प्रकारेण जीतने में सक्षम हो जायें। 'अपराधी, व्यापारिक घरानों के दलालों, जातीय समीकरणों के अनुकूल पड़नेवालों की इसी में लॉटरी खुल गई। ऐसे-ऐसे लोग संसद में पहुंचने लगे हैं जिन्हें देखकर देश की जनता को शर्मसार होने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता। बाजार सज गए और इन्हीं बाजारों में राजनीतिक दलों के टिकट खरीदे जाने लगे। यही लोग टिकट पाने के बाद चुनाव जीतने के लिए वोट को भी खरीदने लगे। यह राजनीति हमें मुंह चिढ़ा रही है और हम भारत के लोग इसे देखने को विवश है। कोई भी राजनीतिक दल यह दावा नहीं कर सकता कि उसने आज तक अपराधियों को टिकट नहीं दिया।'[6] वस्तुत: स्थिति कुछ ऐसी बन गयी है कि कानून बनाने वाले स्वयं कानून के उल्लघंन के मामलों में फंसे हुए हैं, ऐसे में उनसे नैतिकता आधारित जनहित के कानूनों की आशा करना व्यर्थ सा लगता है। एसोशिएशन फोर डेमोक्रेटिक रिफोर्म्स की रिपोर्ट पर दृष्टिपात किया जाये तो ज्ञात होता है वर्तमान भारतीय संसद (लोकसभा) में ऐसे सांसदों का प्रतिशत 34 है, जिनके विरूद्ध आपराधिक माामले चल रहे हैं, इनकी संख्या कुल निर्वाचित 541 सदस्यों में से 186 है। 2009 के लोकसभा चुनावों के बाद निर्वाचित सांसदों का यह प्रतिशत 30 था और संख्या 158।[7] इससे स्पष्ट है कि संसद के निर्वाचित सदस्यों में आपराधिक छवि वाले राजनेताओं की संख्या में वृद्धि हुई है। एसोशिएशन की रिपोर्ट में आगे बताया गया है कि वर्तमान संसद सदस्यों में से 112 ऐसे सदस्य हैं जिनके विरूद्ध गम्भीर आपराधिक मामले दर्ज हैं जिनमें हत्या, हत्या का प्रयास, साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाना, अपहरण एवं महिलाओं के विरूद्ध अपराध सम्मिलित हैं। यदि दलों के अनुसार ऐसे सदस्यों पर दृष्टिपात किया जाये तो भारतीय जनता पार्टी के 63, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 3, ए.आई.ए.डी.एम.के. के 3, शिव सेना के 8 और आल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस के 4 सांसद हैं।[8] आश्चर्यजनक रूप से यह तथ्य सामने आया कि चुनावों के दौरान जिन उम्मीदवारों के विरूद्ध आपराधिक मामले दर्ज थे उनके जीतने की प्रवृत्ति स्वच्छ छवि वाले उम्मीदवारों की अपेक्षा अधिक थी। अभी हाल ही में सरकार द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल एक सूचना से भी यह तथ्य स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीति का अपराधीकरण केवल केन्द्रीय राजनीति तक ही सीमित नहीं है वरन् राज्यों में भी कोई अच्छी स्थिति नहीं है। इस सूचना के द्वारा प्राप्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण भारत में चुने हुए सांसद एवं विधायकों (लोकसभा एवं विधानसभा) की कुल संख्या 4896 में से 1765 सांसद एवं विधायकों के विरूद्ध 3045 आपराधिक मामले चल रहे हैं।[9]

वस्तुत: भारतीय राजनीति का दामन नैतिक मूल्यों ने इस कदर छोड़ा है कि अब सर्वत्र अनैतिकता से भरी अवसरवादी राजनीति ही दृष्टिगत होती है। वर्तमान में लोककल्याण के लक्ष्य तिरोहित हो गये हैं अब लोकसेवक कहे जाने वाले स्वयं के सेवक हो गये हैं। अब राजनीति में जाने का नजरिया जन सेवा न होकर चुनाव में हुये खर्च का कई गुना धन कमाना हो गया है। और जब चुनाव में खर्च होने वाले धन और चंदे में दिये जाने वाले धन के संदर्भ में जनता द्वारा सूचना मांगने की बात आती है तो सभी दल जो

कि प्रत्येक मंच पर आपस में एक दूसरे के विरूद्ध कीचड़ उछालते दिखाई देते हैं, अचानक गजब की एकता का प्रदर्शन करते है और ऐसा विधेयक लाने पर सहमत जाते हैं जो उनकी आय एवं खर्च से सम्बन्धित गोपनीयता को बनाये रखे। यहाँ अभी हाल में हुए घोटालों का नाम गिनाना बेमानी है, अब वे भारतीय राजनीति के लिए बहती गंगा हो गये हैं जब चाहे हाथ धो लें। जातिवाद पर आधारित, काले धन को पोषित करती और आपराधिक तत्वों से भरी भारतीय राजनीति बड़े विकट दौर से गुजर रही है। भारत में प्रशासनिक सुधारों हेतु गठित द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी यह महसूस किया है कि 'भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार की जड़ें इतनी गहरी जम गई हैं कि अधिकतर लोग भ्रष्टाचार को अपरिहार्य समझते हैं और इससे लड़ने के किसी भी प्रयास को व्यर्थ समझते हैं। यह कटुता इतनी तेजी से फैल रही है कि इससे हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था का रूग्ण हो जाने का अंदेशा बना रहता है।'[10]

ऐसी अवस्था में प्रश्न उपस्थित होता है कि भारतीय राजनीति को कैसे बचाया जाये? इस समस्या का एक ही हल दृष्टिगत होता है वह है भारतीय राजनीति में नैतिक मूल्यों और चरित्र की पुन: स्थापना। जब तक इन नैतिक मूल्यों को पुन: अपनाया नहीं जाता तब तक भारत विकास के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। ऐसा नहीं कि पूर्व में प्रयास नहीं किये गये या वर्तमान में कोई प्रयास नहीं किये जा रहे। अनेक कानूनों का निर्माण किया गया है और कुछ नये कानूनों का निर्माण किया जा रहा है पर कानूनों के निर्माण में भी जो सच्चरित्रता चाहिए वह राजनीतिक दलों में दिखाई नहीं देती। आवश्यकता इस बात की है कि कानूनों का निर्माण संवेदनशीलता के साथ नैतिक मूल्यों को दृष्टिगत रखते हुए किया जाये। यहाँ पर जनता की भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है जब भी चुनाव का समय आये जनता को बड़े ध्यान ऐसे उम्मीदवारों का बहिष्कार करना चाहिए जो आपराधिक प्रकृति के हों या पूर्व में भ्रष्टाचार में लिप्त रहें हों तथा केवल योग्य एवं कुशल उम्मीदवारों का ही चुनाव करना चाहिए। भारतीय राजनीति को सर्वोच्च स्थान पर स्थापित करने का एक ही उपाय है उसमें नैतिक मूल्यों को स्थापित किया जाये वह स्वत: उन्नत हो जायेगी।

संदर्भ सूची

1. शास्त्री, पण्डित गंगाप्रसाद (अनुवादक) (विक्रम संवत 1997), कौटलीय अर्थशास्त्र (मूल संस्कृत और हिन्दी अनुवाद सहित), प्रकाशक चतरसेन गुप्त, महाभारत कार्यालय, दिल्ली, प्रथम अधिकरण, तीसरा अध्याय, श्लोक संख्या-16, पृ. 12
2. शास्त्री, पण्डित गंगाप्रसाद (अनुवादक), वही, चाणक्य प्रणीत सूत्र 14, पृ. 674
3. शास्त्री, पण्डित गंगाप्रसाद (अनुवादक), वही, 19वां अध्याय 16वां प्रकरण श्लोक संख्या- 40, पृ. 64
4. सुधा, खुशबू, धर्म, राजनीति एवं मूल्यहीनता, पोईन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1999, पृ. 63
5. प्रिय दर्शन, नेतृत्व का सूखा, राजकिशोर (संपा.), भारत का राजनीतिक संकट, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ. 62
6. एचटीटीपीः//ए.प्रभासाक्षी.कॉम/शोआर्टिकल.एएसपीएक्स? आर्टिकलआईडी=080725-131042-110010(एक्सेसड ऑन सेपटेम्बर,17,2018)
7. एचटीटीपीः//डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.आईबीटाइम्स.को.इन/186-इण्डियन-मेम्बर्स-पार्लियामेंट-हेव-क्रिमिनल-केसेज-इन्क्लुडिंग-मर्डर-रेप-600584 (एक्सेसड ऑन सेपटेम्बर,18, 2018)
8. उपर्युक्त
9. एचटीटीपीः//टाईम्सऑफइण्डिया.इण्डियाटाईम्स.कॉम/इण्डिया/36-ऑफ-एमपीज-एमएलएज-फेसिंग-ट्राइल-इन-3045-क्रिमिनल-केसेज/आर्टिकलशो/63231553.सीएमएस (एक्सेसड ऑन सेपटेम्बर,18,2018)
10. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की चतुर्थ रिपोर्ट, शासन में नैतिकता, भारत सरकार, पृ. 1

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 48-51

भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक दल तथा धर्म : एक अध्ययन

ISSN 2348-3857

सुमन शर्मा
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

प्रस्तावित शोध-पत्र, भारतीय राजनीति में लोकतान्त्रिक सत्तात्मक संघर्ष में लोकतंत्र, धर्म और राजनीतिक दलों के अन्त: सम्बन्धों का विश्लेषण करता है। एक ओर राजनीतिक दल ''धार्मिक राजनीति की प्रवृत्ति'' को अपने वोट बैंक का सुविधाजनक साधन बना रहे है वहीं दूसरी ओर धार्मिक नेता अपने ''ऐतिहासिक-सांस्कृतिक-धार्मिक मूल्यों'' की रक्षा हेतु राजनीतिक दलों को माध्यम बना रहे हैं। सत्ता-संघर्षात्मक खेल में राजनीतिक दलों द्वारा लोकतान्त्रिक मूल्यों की धूमिल रक्षात्मक प्रवृत्ति के नाम पर धार्मिक मूल्य स्थापित किये जा रहे हैं। हम तर्क देते हैं कि लोकतान्त्रिक सत्तात्मक संघर्ष में राजनीतिक दलों द्वारा 'धर्म की राजनीति' को 'लोकतंत्र की राजनीति' पर स्थापित किया जा रहा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संदर्भित किया जाता है कि राजनीतिक दलों की ''जन सेवा की भावना'' का रूपान्तरण ''सत्ता -सेवा की भावना'' में परिलक्षित हो रहा है।

संकेताक्षर : *लोकतंत्र, धर्म, राजनीतिक दल तथा सत्ता*

भारतीय लोकतंत्र, जो संसदीय लोकतंत्र के साथ-साथ धर्म निरपेक्ष लोकतंत्र की भी स्थापना करता है। यह तथ्य एक वृहद समस्या के रूप में देखा गया है कि धर्म-निरपेक्ष लोकतंत्र को राजनीतिक दलों द्वारा कैसे सुदृढ़ व्यावहारिक ढांचा प्रदान किया जाता है? स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं पश्चात् दोनों ही पृष्ठभूमि में लोकतंत्र, धर्म और राजनीतिक दल आपस में घनिष्ठ रूप से राजनीतिक सत्ता की गुत्थी में फंसे हुए हैं। धार्मिक मुद्दों को आधार बनाकर राजनीतिक दलों द्वारा लोकतान्त्रिक सतात्त्मक खेल खेला जाता है। भारतीय लोकतंत्र का अलोचनात्मक पहलू है-राजनीतिक दलों की लोकतंत्र व धर्म की अन्त:सम्बन्धित राजनीति। भारतीय संविधान की प्रस्तावना ''धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य'' का अहवान करती है।[1] राजनीतिक दलों द्वारा इसे मूल-राजनीति (Grassroot) में लागू करना होगा। ऐतिहासिक तथा आधुनिक, दोनों ही परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक दल और धर्म लोकतांत्रिक चुनावी राजनीति में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

लोकतंत्र का अर्थ-लोकतंत्र (Democracy) शब्द यूनानी भाषा के डेमॉस (Demos) + क्रेटिया शब्दों से मिलकर बना है। डेमोस का तात्पर्य है- जनता तथा क्रेटिया का अर्थ है-शक्ति, अत: डेमोक्रेसी का शाब्दिक अर्थ है-जनता की शक्ति।[2] अब्रहम लिंकन ने लोकतंत्र की जो परिभाषा दी है, वह इसके शब्दार्थ के अत्यधिक निकट है। उनके अनुसार लोकतंत्र ''जनता का, जनता के द्वारा तथा जनता के लिए'' स्थापित शासन व्यवस्था है।[3] (1864 में अपने गेटण्बरी भाषण में लोकतंत्र का अर्थ बताया)

राजनीति दल का अर्थ-लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को स्थापित करने, उसे गतिशील रखने तथा उसे बनाये रखने हेतु राजनीतिक दल अपरिहार्य होते हैं। राजनीतिक दल, जन-सामान्य की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक गतिविधियों की अभिव्यक्ति हेतु निर्णायक भूमिका निभाते हैं। इसलिए राजनीतिक दलों को ''लोकतंत्र का प्राण'' तथा ''शासन का चतुर्थ अंग'' कहा जाता है। प्रो. मुनरो के शब्दों में, ''लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली दलीय शासन प्रणाली का दूसरा नाम है विश्व के इतिहास में कभी भी ऐसी स्वतंत्रता सरकार नहीं रही है, जिसमें राजनीतिक दल का अस्तित्व न हो।''[4]

धर्म का अर्थ-यतो अभ्युदयीन: श्रेयससिद्धि: स धर्म:। धर्म वह अनुशासित जीवन क्रम है, जिसमें लौकिक उन्नति (अविद्या) तथा अध्यात्मिक परमगति (विद्या) दोनों की प्राप्ति होती है। बी.आर. अम्बेडकर के अनुसार:-''धर्म को नजरअन्दाज करना

एक जीवन-तार को नजरअन्दाज करना है। धर्म एक संस्था या प्रभाव है, अन्य सामाजिक प्रभावों और संस्थानों की तरह यह उस समाज को नुकसान भी पहुंचा सकता है या मदद कर सकता है, जिस समाज पर इसकी पकड़ होती है। ''[5]

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत विश्व का महानत्तम लोकतांन्त्रिक राष्ट्र है। राजनीतिक दलों के मध्य लोकतांत्रिक तरीके से सत्तात्मक संघर्ष का खेल खेला जाता है हमारे देश में ब्रिटिशकालीन शासन से ही ''लोकतंत्र की राजनीति'' को ''धर्म की राजनीति'' से जोड़ा जाता रहा है। 1857 की क्रांति के पश्चात् जब ब्रिटिश सत्ता की सुदृढ़ता लचीली होने लगी, तब ब्रिटिश सरकार ने ''धर्म की राजनीति'' का शुभारम्भ किया। 1870 के पश्चात् ब्रिटिश नीति में परिवर्तन हुआ तथा ''फूट डालों और राज करों'' की नीति के माध्यम से मुसलमानों को हिन्दुओं के विरूद्ध भड़काना प्रारम्भ किया। भारत में राजनीति शक्ति को मजबूत करने हेतु ब्रिटिश शासकों ने धार्मिक-विभाजन की नीति का उपयोग किया। बाल गंगाधर तिलक व महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन की धार्मिक नीति के विरूद्ध भारतीय जन-मानस को जागरूक कर उनका समर्थन प्राप्त किया। उन्होंने धार्मिक नारे व प्रतीकों का उपयोग किया, जैसे; तिलक द्वारा आयोजित गणेश उत्सव तथा शिवाजी उत्सव। ब्रिटिश सरकार के सहयोग से मुस्लिम-सांस्कृतिक संगठन ने भी अपनी-धार्मिक गतिविधियों में वृद्धि की। ब्रिटिश नीतियों के परिणामस्वरूप हिन्दू मुस्लिम संघर्ष के तत्व धीरे-धीरे राष्ट्रीय आन्दोलन में घुल गये। [6]

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्वतंत्रता-प्राप्ति आन्दोलन चरम परिणति पर पहुंच रहा था तब ब्रिटिश सरकार ने अपनी सत्ता को भारतीय जन-सामान्य के हित में घोषित करने हेतु सुधारों (अधिनियमों) की योजना का प्रारम्भ किया। इन अधिनिमयों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार ने धर्म के चोले में अपनी सत्ता को बनाये रखा। 1909 के अधिनियम में प्रत्यक्ष रूप से ''धर्म-राजनीति'' का श्रीगणेश किया गया। इस अधिनियम से मुसलमानों के लिए 'पृथक निर्वाचन प्रणाली'' का आरम्भ किया गया। इसके पीछे वास्तविक उद्देश्य था कि सतात्मक संघर्ष (भारत व ब्रिटिश सरकार के मध्य) में ब्रिटिश सरकार ने प्राधिकार को कायम रखने हेतु मुस्लिमों के हितों का पक्षपोषण किया। सन् 1919 के अधिनियमों में मुसलमानों के अतिरिक्त सिक्खों, यूरोपियनों, आंग्ल-भारतीय व ईसाइयों के लिए भी पृथक व्यवस्था लागू की गई। जब स्वतंत्रता प्राप्ति आन्दोलन अपनी चरण परकाष्ठा पर पहुँच गया तथा ब्रिटिश सरकार की सत्ता की जड़ कमजोर होने लग गयी, तब ब्रिटिश सरकार ने अपनी रणनीति ''मैक्डॉनल्ड अवार्ड (1932)'' के माध्यम से अभिव्यक्त की। इस ''साम्प्रदायिक पंचाट'' के माध्यम से ''धर्म की राजनीति'' को एक धर्म विशेष समूह (हिन्दू) पर लागू करने का प्रयास किया गया। अन्ततः महात्मा गांधी के प्रयत्नों (पूना पैक्ट, 1932) के माध्मय से हिन्दूओं को ''धर्म की राजनीति'' से अलग कर एकजुट किया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात

सन् 1950 में संविधान द्वारा निर्देशित भारतीय राज्य धर्मनिरपेक्ष होने की इच्छा रखता है। लेकिन व्यवहार में धर्म भारतीय लोकतंत्र की गहराई में प्रवेश कर चुका है। जो संविधान के धर्म निरपेक्ष आदर्शों के खिलाफ एक आतंक है। यह आतंक देश की राजनीति को मानव-जाति के विध्वंस का कारक बना सकता है, क्योंकि राजनीतिक दल इस आंतक (धर्म) का प्रयोग सत्ता संग्राम के खेल में कर रहे हैं। राजनीति व धर्म के बीच अन्तः सम्बन्धों के नवीन तथ्य उभरने लगे थे, जैसे; धर्म आधारित राजनीति दलों का अस्तित्व में आना। धीरे-धीरे धर्म विशेष पर आधारित राजनतिक दलों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने लग गई। राजनीतिक दलों ने राजनीति शक्ति में अपना वर्चस्व कायम करने हेतु धर्म का उपयोग करने लग गये। हिन्दू महासभा, राम-राज्य परिषद, जनसंघ (वर्तमान में भाजपा) ने राजनीतिक जन-समर्थन हेतु धार्मिक तत्वों का प्रयोग किया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल (RSS), भारतीय जनता पार्टी जैसे राजनीतिक दलों के माध्यम से राजनीतिक स्तर पर कार्य करता है। वर्तमान समय में RSS विश्व हिन्दू परिषद् जैसे व्यापक संगठन का प्रयोग राजनीतिक शक्ति शून्यता में कर रहा है। [7]

धर्म के आतंक का अभिप्राय : सम्पूर्ण मानव जाति पर धर्म के आधार पर किये जाने वाले घातक प्रहार को 'धर्म के आतंक' की संज्ञा दी जा सकती है। यह एक प्रकार का ''वाक युद्ध'' है, जो कभी भी सशस्त्र युद्ध का रूप ले सकता है। अपने धर्म आधारित विचारों, प्रेरणाओं व लक्ष्यों द्वारा मानव-समुदाय को प्रभावित करना भी ''धर्म के आतंक'' का अदृश्य रूप है।

राजनीतिक दलों द्वारा सम्बद्धित ''धर्म का आतंक'' तथा लोकतंत्र

1980 के दशक से ''धर्म के आतंक'' को पल्लवित व पोषित करने का कार्य राजनीतिक दलों द्वारा किया जाता रहा है। साम्प्रदायिक दंगों से सम्बन्धित 7 जांच आयोगों के प्रतिवेदन का विश्लेषण करने पर निष्कर्ष निकलता है कि उन सभी में राजनीतिक दलों द्वारा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ''धर्म आधारित राजनीति'' की आलोचना की गई है। सन् 1969 में रघुवीर दयाल आयोग ने कहा है कि ''राजनीति दलों को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए धार्मिक

या जातीय भावनाओं को नहीं उभारना चाहिए। '' सन् 1970 में दत्ता आयोग ने कहा- ''राजनीतिक दलों को किसी समुदाय की धार्मिक भावनाओं के नाम पर अपील करके वोट प्राप्त करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। '' जोसेफ विथयाथिस आयोग (1971) ने कहा- धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक दलों में भी सामान्य सदस्यों में धार्मिक तत्वों का प्रवेश हो गया है, यह अहितकर प्रवृत्ति है, जिसे सम्बद्ध दलों को रोकना होगा। सन् 1979 में हुए जमशेदपुर-दंगों की जांच के लिए गठित आयोग ने कहा था- ''राजनीतिक दल सम्प्रदायों को सदैव ही वोट बैंक समझते है और तद्रूप ही अपने कार्यक्रम व कार्यवाही सम्बन्धी योजना बनाते हैं। वोट का अर्थ है-सत्ता व राजनीतिज्ञों को अन्य किसी भी बात (लोकतान्त्रिक मूल्य) की तुलना में सत्ता कहीं अधिक प्रिय है। [8]

स्वतंत्रता के पूर्व एवं पश्चात् धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों का गठन किया गया है। मुस्लिम लीग (1906), शिरोमणी अकाली दल (1920), राम राज्य परिषद् (1948), हिन्दू महासभा (1915) आदि राजनीतिक दलों का उत्थान धार्मिकता के आधार पर किया गया था। साम्प्रदायिक दल धर्म को राजनीति में केन्द्र-बिन्दु पर रखते हैं तथा धर्म के आधार पर प्रत्याशियों का चुनाव करते है और वोट मांगते हैं। **प्रो. मॉरिस जॉन्स** के शब्दों में ''कोई राजनीतिक दल किसी विशेष धार्मिक समुदाय की राजनीतिक गतिविधियों की रक्षा हेतु बना हो, जो स्पष्ट रूप से अपने आप को साम्प्रदायिक कहता है; जैसे मुस्लिम लीग (दक्षिण भारत में), अकाली दल (पंजाब में), हिन्दू महासभा (उत्तर भारत में)। जनसंघ के बारे में मोरिस जोन्स लिखते हैं, ''जब तक कटुरता की मनोवृति से पूर्ण राष्ट्रीय स्वयं सेवक दल, जिसमें हिन्दू सांस्कृतिक जोश और सैन्यवादी अभ्यास दोनों का संयोग है, वह जनसंघ के कवच में कार्य करता है, तब तक सम्प्रदायिंकता इस दल का एक महत्वपूर्ण पहलू बना रहेगा। ''[9]

भारत में लगभग सभी राजनीतिक दल किसी न किसी स्तर पर धर्म से सम्बन्धित रहते है, यहां तक कि कांग्रेस भी इससे मुक्त नहीं हैं। केरल में ईसाई समुदाय के साथ कांग्रेस का ऐसा गठजोड़ रहा है, जिसे संकुचित अर्थ में साम्प्रदायिक कहा गया है। सन् 1980 में स्थापित भारतीय जनता पार्टी एक हिन्दू राष्ट्रवादी दल कहा जाता है, जिसे जनसंघ का उत्तराधिकारी भी माना जाता है। 2014 के आम चुनावों में भारतीय जनता पार्टी को संसद में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। 1984 के बाद किसी एक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ तथा एक हिन्दूत्ववादी राजनीतिक दल भारतीय शासन का संचालन कर रहा है।[10] अन्तत: भारत में धर्म के आधार पर राजनीतिक दल सत्तात्मक संघर्ष का खेल खेलने लगे हैं। अक्टूबर 2004 में पी.वी. दिनेश द्वारा दायर जनहित याचिका में सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्र, चुनाव आयोग और कांग्रेस-भाजपा सहित छ: राष्ट्रीय दलों को नोटिस जारी किया, जिसमें संविधान के धर्मनिरपेक्ष प्रावधान के उल्लंघन के नाम पर धर्म के साथ दलों को राजनीतिक पहचान की मांग की गई थी। मुख्य न्यायाधीश आर.सी. लाहोटी व न्यायमूर्ति जी.पी.माथुर की बेंच ने राजनीति दलों को नोटिस जारी किया, जिसमें अखिल भारतीय मुस्लिम लीग, अखिल भारतीय हिन्दू महासभा, अखिल भारतीय क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक, बैकवर्ड पीपुल्स पार्टी, तथा अकाली दल सहित 22 राजनीति दल है। जिसमें कहा गया था कि ''भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है, तथा संविधान में यह प्रावधान शासन (सरकार) को धर्म से अलग रखने हेतु बनाया गया था।''[11] राजनीतिक दलों के धर्म आधारित आचरण पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सरकार को सचेत किया गया है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि राजनीतिक दल सर्वोच्य न्यायालय के नीति-निर्देशों को आचरण में लागू नहीं कर पाये हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीतिक में लोकतंत्र, धर्म तथा राजनीतिक दल आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं हैं कि हमारा देश विश्व का महानतम लोकतांत्रिक राज्य हैं इस लोकतांत्रिक राष्ट्र में विभिन्न राजनीतिक दल सत्ता-संघर्ष का खेल खेलते हैं। राजनीतिक दलों द्वारा लोकतांत्रिक मूल्यों को मध्यनजर रखते हुए सत्तात्मक राजनीति का खेल खेला जाता है। किन्तु वर्तमान समय में राजनीतिक दल द्वारा सत्ता प्राप्त करने हेतु **''जन-सेवा की प्रवृत्ति''** के स्थान पर **''शक्ति सेवा की प्रवृत्ति''** ने ले लिया है। राजनीतिक दलों द्वारा व्यक्ति के सार्वजनिक जीवन (लोकतांत्रिक) के स्थान पर व्यक्तिगत जीवन (धार्मिक) पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। उदाहरण कर्नाटक में धार्मिक अल्पसंख्यकों के रूप में लिंगायत को अन्य समुदायों से वर्गीकृत करने का कांग्रेस सरकार का निर्णय तथा मध्यप्रदेश में 03 अप्रैल, 2018 को 5 हिन्दू धार्मिक नेताओं को मंत्रियों के रूप में शामिल करने का भाजपा सरकार का निर्णय। कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी को मंदिर यात्राएं तथा प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की राजनीतिक धार्मिकता को देखने से आभास होता है कि भारतीय राजनीति में सत्ता संघर्ष में राजनीतिक दलों द्वारा ''धर्म केन्द्रित राजनीति'' का सहारा लिया जा रहा है। प्रोफेसर ए.पी.एस. चौहान कहते हैं कि ''राजनीति दलों द्वारा धर्म का उपयोग लोकतंत्र की भावना के खिलाफ है। '' संविधान निर्माताओं ने पाश्चात्य उदारवादी लोकतंत्र को अपनाया है, इसलिए भारत राजनीतिक दलों द्वारा किसी धर्म विशेष के साथ कोई समझौतात्मक सम्बन्ध स्थापित नहीं किरना चाहिए। हालांकि हमारा देश धर्म-निरेपक्ष राष्ट्र

है, लेकिन धर्म-निरपेक्ष आदर्श राजनीति दलों द्वारा संचालित नहीं किये जा रहे है। सम्पूर्ण राष्ट्र का संचालन करने वाले राजनीतिक दल धर्म के आधार पर सत्ता प्राप्ति का प्रयत्न करेंगे तो सामान्य जन पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा? इस विषय पर उत्पन्न गहन चिन्तन की आवश्यकता दृष्टिगत हो रही है।

निष्कर्ष

भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक दलों द्वारा धर्म आधारित राजनीति का प्रयोग करने से ''धर्म निरपेक्ष देश'' का आदर्श धूमिल हुआ है। भारत में विभिन्न धर्मों व समुदायों के व्यक्ति निवास करते हैं, राजनीतिक दल किसी एक विशेष धर्म के हितों का प्रतिनिधित्व का दावा कैसे कर सकते हैं? उनके द्वारा सभी धर्मों व समुदायों के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करना होगा, तभी भारतीय राष्ट्र सच्चा धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र कहलायेगा। लेकिन अभी यह मार्ग कठिन सा लग रहा है। इसके लिए जन सामान्य का सहयोग भी अत्यधिक आवश्यक है। एक शिक्षित समुदाय ''सभी धर्म समान हैं'' को व्यवहारिक रूप में अपनाता है किन्तु अशिक्षित समुदाय राजनीति दलों के झूठे वादों में आते है और धर्म की राजनीति को प्राथमिकता देते हैं। भारतीय समुदाय में मूल-जड़ से पंथ-निरपेक्ष वातावरण को अपनाना होगा। सभी नागरिक को समझना है कि जिस प्रकार उनका स्वयं व्यक्तिगत धर्म होता है उसी प्रकार अन्य का भी अपना व्यक्तिगत धर्म है। सम्पूर्ण-मानव समुदाय को प्रत्येक एक के धर्म को सम्मान की दृष्टि से देखना होगा। धर्म के आधार पर राजनीति का खेल-खेलने का अर्थ है:-सम्प्रदायिकता आधारित वातावरण को प्रज्वलित करना। यह वातावरण लोकतंत्र का जड़ों को समाप्त कर देता है। अतः, राजनीतिक दलों द्वारा शुद्ध राजनीतिक सत्तात्मक खेल खेलना चाहिए तथा चुनावी वातावरण में धर्म को मुद्दा नहीं बनाना चाहिए राजनीतिक दलों द्वारा लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना हेतु राजनीतिक जागरूकता का संचार करना होगा। राम-जन्म भूमि विवाद अभी तक सुलझाया नहीं गया। राजनीतिक दल इस विवाद का लाभ वोट-बैंक की राजनीति में उठा रहे है। स्वयं भारतीय जन-मानस विवेकहीन हो रहा है, क्योंकि धर्म व्यक्ति का आन्तरिक विषय है जिसे वह बाहरी विषय बना रहे है। धर्म को आन्तरिक विषय से बाहरी विषय में परिवर्तन करने का कार्य राजनीतिक दलों द्वारा किया जा रहा है। राजनीतिक दलों का दायित्व है कि वह लोकतांत्रिक मूल्यों एवं विभिन्न धार्मिक समुदायों के हितों में सन्तुलन स्थापित करें।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. कश्यप, सुभाष, हमारा संविधान (भारत का संविधान और संवैधानिक विधि), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2013, पृ.52
2. पुरोहित, बी.आर, राजनीतिकशास्त्र के मूल सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2007, पृ. 289
3. गाबा, ओम प्रकाश, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा, मयूर पेपरबैक्स, दिल्ली-2014, पृ. 237
4. पुरोहित, बी.आर, राजनीतिकशास्त्र के मूल सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2007, पृ. 368
5. जाटवा, डी.आर, रिलिजन इन मॉडर्न सोसायटी दी पिजलिंग इश्यू, नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 2000, पृ.-1
6. शर्मा, टी.आर., रिलिजन एण्ड पॉलिटिक्स इन मॉडर्न इण्डिया: ए हिस्ट्रोरिकल अवरव्यू इन मोइन शकीर (ed.) रिलिजन स्टेट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, अजन्ता पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1989, पृ. 51
7. रॉय, अजीत, आर.एस.एस. एण्ड इट्स कल्चर आइडॉलॉजी रूट्स इन मोइन शकीर (ed.) रिलिजन स्टेट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, अजन्ता पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1989, पृ. 57
8. पुखराज जैन व बी.एल. फडिया, भारतीय शासन एवं राजनीतिक, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2012, पृ. 483
9. जॉन्स, मॉरिस, भारतीय शासन पद्धति (अनुवाद), पृ. 190
10. दीवाकर, रेखा, पार्टी सिस्टम इन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2017, पृ. 126-127
11. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 4 अक्टूबर, 2014

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 52-57

मानवाधिकार एवं शोध : राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के सन्दर्भ में अध्ययन

डॉ. अनिल कुमार पारीक
सहायक आचार्य, लोक प्रशासन
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

शोध सारांश

मानव होने के कारण प्राप्त अधिकार ही मानवाधिकार कहलाते हैं। भारत में मानवाधिकारों की स्थिति जटिल रही है। भारत में अनेक वर्ग ऐसे हैं जिनके मानवाधिकारों का निरन्तर हनन हुआ है। भारत सरकार ने 1993 में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम पारित किया जिसके तहत राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। इसका मुख्यालय नई दिल्ली में है। इसमें 8 सदस्य होते हैं। आयोग अपने समक्ष प्रस्तुत किसी पीड़ित अथवा उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दायर याचिका पर स्वयं सुनवाई एवं कार्यवाही करता है। आयोग मानवाधिकारों से सम्बन्धित विभिन्न संधियों का अध्ययन भी करता है। आयोग द्वारा मानवाधिकारों की सुरक्षा हेतु अनेक परियोजनाएं संचालित की जाती रही है। इनमें बिहार एवं उत्तर प्रदेश के बी.पी.एल. परिवारों में विद्यमान भोजन के अधिकार से संबंधित स्थिति का अध्ययन, वृद्धजनों के मानव अधिकार, कानून नीति एवं कार्यान्वियन का अध्ययन, यौन और प्रजनन स्वास्थ्य एवं कल्याण के संदर्भ में मानव अधिकार पर देश का अध्ययन, केरल में प्रवासी श्रमिकों के बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार, एन.एच. आर.सी. के सहयोग से एम.ए.आर.जी. द्वारा 11 विषयों पर 27 पुस्तिकाओं का विकास, महिलाओं के खिलाफ अनुसंधान अध्ययन आदि प्रमुख है। ये शोध परियोजनाएं देश में मानवाधिकारों के हनन की जानकारी प्रदान करती है एवं इन परियोजनाओं के परिणामों से राष्ट्र में मानवाधिकारों की सुरक्षा हेतु नवीन कदम उठाया जाना संभव होता है।

संकेताक्षर : *मानवाधिकार संरक्षण, सिविल सोसायटी, मनोचिकित्सा, आन्तरिक लेखाकंन, न्याय शास्त्र*

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन भारतीय संसद ने मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 पारित करके अक्टूबर 1993 में किया। इसका मुख्य कार्य मानवाधिकारों का उल्लघंन, हनन आदि मामलों की शिकायतों की जांच करना है। यह समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य मानवाधिकारों के प्रति चेतना का प्रसार करता है। इस क्षेत्र में कार्यरत गैर सरकारी संगठनों के प्रयासों को प्रोत्साहित करता है। आयोग का एक प्रमुख कार्य मानवाधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना एवं विभिन्न शोध परियोजनाओं को बढ़ावा देना है। [1]

आयोग की शोध परियोजनाएं

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मानवाधिकारों की स्थिति पर विविध आयामी शोध मानवाधिकार आयोग की प्राथमिकता में रहे हैं। आयोग के शोध विभिन्न संगठन करते हैं। यह शोध परियोजनाएं व्यावहारिक धरातल पर मानवाधिकारों की समुचित जानकारी प्रदान करने में सक्षम है। प्रस्तुत शोध पत्र में आयोग द्वारा किये जा रहे शोध के दो प्रमुख क्षेत्रों का चयन किया गया है। यथा - (अ) वर्तमान में चल रही परियोजनाएँ एवं (ब) पूर्ण हो चुकी शोध परियोजनाएँ

(अ) वर्तमान में चल रही परियोजनाएं

बिहार एवं उत्तर प्रदेश के बी.पी.एल. परिवारों में विद्यमान भोजन के अधिकार से संबंधित स्थिति का अध्ययन : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने सितम्बर, 2012 में 'हरियाली' सेंटर फोर रूरल डेवलपमेंट, नई दिल्ली को एक अनुसंधान अध्ययन का कार्य सौंपा था।[2] इसके उद्देश्य अग्रलिखित है- बी.पी.एल. परिवारों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं जीवन-यापन की दशाओं का पता लगाना तथा यह जानना कि बी.पी.एल. परिवारों को पर्याप्त भोजन अथवा इसके प्राप्ति के साधनों की पहुंच कहां तक है? इसके साथ ही, घरेलू स्तर पर खाद्य पदार्थों के संबंध में किए

जाने वाले लिंग भेदभाव का पता लगाना तथा लड़के एवं लड़की तथा वयस्कों के आहार संबंधी ढांचे का अध्ययन करना। लोक वितरण प्रणाली (पी.डी.एस.) के तहत मुहैया करवाए गए खाद्यान्न के साथ-साथ आई.सी.डी.एस. के तहत मुहैया कराए गए भोजन तथा खासतौर पर बच्चों को कुपोषण एवं भुखमरी की समस्या से निपटने के लिए मुहैया कराए गए मिड-डे मील के प्रभाव को जानना। बी.पी.एल. परिवारों एवं बच्चों में कम पोषण एवं भुखमरी के कारण रोगों की संख्या एवं मृत्युदर की घटनाओं एवं मौजूदगी का पता लगाना। बी.पी.एल. परिवारों की खान-पान की जरूरतों के संबंध में नागर समाज संगठनों (Civil-Society) एवं निजी संस्थानों की भूमिका का आकलन करना तथा बी.पी.एल. परिवारों एवं बच्चों में भुखमरी की समस्या को कम करने तथा उनकी पोषण स्थिति को सुधारने के लिए नीतियां बनाना है।

वृद्ध जनों के मानव अधिकार : कानून, नीति एवं कार्यान्वयन केरल के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा फरवरी, 2016 में सेन्टर फॉर ह्यूमन राइट्स नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ एडवांस लीगल स्टडीज, कलामस्सेरी, कोच्चि को उक्त अध्ययन का कार्य सौंपा गया था। 3 इस कार्य को 18 महीने की समयावधि में पूर्ण किया जाना था। अनुसंधान अध्ययन के उद्देश्य हैं- वृद्ध लोगों की श्रेणी का विश्लेषण उनके द्वारा की जा रही समस्याओं का पता लगाना, सामाजिक वास्तविकताओं की पृष्ठभूमि में वृद्ध लोगों के अधिकारों का संरक्षण करने के लिए कानून लागू करने में तर्क का पता लगाना वृद्ध लोगों को दिए गए संरक्षण के क्षेत्र का निरीक्षण उनके लिए सरकार द्वारा प्रस्तावित नीतियों एवं कार्यक्रमों की पहुंच की संवीक्षा करना उनके लिए उपयुक्त सभी कानूनों के उपबंधों का विश्लेषण करना केरल तथा नजदीकी दक्षिणी राज्यों में 'अभिभावक एवं वरिष्ठ नागरिक भरण-पोषण एवं कल्याण अधिनियम, 20074 तथा अन्य संबंधित कानूनों के कार्यान्वयन का आकलन करना तथा उनकी बेहतरी के लिए प्रभावी सुधारों हेतु संस्तुतियां तैयार करना।

विदेशों के लिए केरल के युवाओं का बड़ी संख्या में प्रवास करने की दृष्टि से इस अध्ययन में इस बात की भी जांच की जा रही है कि क्या उनकी ये प्रवृत्तियां उनके वृद्ध लोगों के वित्तीय सुरक्षा की कमी का कारण तो नहीं हैं। इसके अलावा, अनुसंधान अध्ययन में इसकी भी जांच हो रही है कि क्या वृद्ध लोगों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के लाभ उनके सही लाभार्थियों तक पहुंच रहे हैं या नहीं।

यौन और प्रजनन स्वास्थ्य एवं कल्याण के संदर्भ में मानव अधिकारों पर देश का आकलन /राष्ट्रीय जांच

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा मार्च, 2016 में यौन और प्रजनन स्वास्थ्य एवं कल्याण के संदर्भ में मानव अधिकारों पर देश का आकलन की शुरूआत की गई। इस राष्ट्रीय जांच के उद्देश्य हेतु दिल्ली स्थित संगठनों, 'पार्टनर्स फॉर लॉ इन डेवलेपमेंट' (पी.एल.डी.) एवं समा रिसोर्स ग्रुप फॉर विमेन एण्ड हेल्थ को दायित्व सौंपा गया। इस अनुसंधान अध्ययन का मुख्य उद्देश्य घरेलू, राष्ट्रीय कानून, नीति एवं अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुसार यौन और प्रजनन स्वास्थ्य अधिकारों के संबंध में विद्यमान अंतर को शामिल करना था। तत्पश्चात्, यह यौन तथा प्रजनन अधिकारों के अतिव्यापी अवयवों की जांच-पड़ताल करेगा। इस अनुसंधान अध्ययन को दो चरणों में पूरा किया जाएगा पहला डेस्क कार्य तथा दूसरा उत्तर से दक्षिण एवं पश्चिम से पूर्वी क्षेत्र में कार्यरत मुख्य विशेषज्ञों के साथ विचार-विमर्श।

तृतीय जेंडर के रूप में ट्रांसजेंडर के मानव अधिकारों पर अध्ययन

तृतीय जेंडर के रूप में ट्रांसजेंडर के मानव अधिकारों पर अध्ययन नामक इस अनुसंधान अध्ययन की शुरूआत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा केरल विकास समाज (के.डी.एस.) के सहयोग से मार्च, 2015 को नई दिल्ली में की गई। [5] वर्तमान अध्ययन का मुख्य उद्देश्य तीसरी जेंडर समूहों के रूप में ट्रांसजेंडरों के सामाजिक, आर्थिक रूपरेखा का अध्ययन करना था। यह अध्ययन भेद-भाव के विभिन्न प्रकारों की जांच तथा ट्रांसजेंडरों से संबंधित मानव अधिकार उल्लंघन के मुद्दों एवं उनके बहिष्कार सहित शिक्षण एवं रोजगार संबंधी विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों की सुविधाएं प्राप्त करने हेतु ट्रांसजेंडर द्वारा सामना की जा रही समस्याओं का मूल्यांकन करेगा। इसके अलावा, यह अध्ययन केन्द्र, राज्य या स्थानीय सरकार के साथ-साथ कानून एवं नीति, यदि कोई हो, के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय एवं ट्रांसजेंडरों के समग्र विकास हेतु उठाए जाने वाले कदम हेतु प्रदान की जाने वाली सुविधाओं एवं शुरूआत किए गए कार्यक्रमों योजनाओं का गहन विश्लेषण करेगा।

केरल में प्रवासी श्रमिकों के बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार' संबंधी मानव अधिकार मुद्दे

'केरल में प्रवासी श्रमिकों के बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार' नामक इस अध्ययन का कार्यभार राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा डॉ. सी.बी.जचारियास ऑफ सैक्रेट हर्ट कॉलेज, थेवड़ा केरल को नवम्बर, 2014 में सौंपा गया। 6 इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य केरल में प्रवासी मजदूरों के बच्चों को उनके माता-पिता

के रोजगार हेतु प्रवास की वजह से शिक्षा के अधिकार से वंचित रखने संबंधी मामले की जांच करना था। यह अध्ययन केरल में तथा संबंधित राज्यों में रह रहे प्रवासी श्रमिक मजदूरों की शिक्षा के स्तर की तुलना करेगा। यह अध्ययन प्रवासी श्रमिकों के बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन के लिए जिम्मेदार कारकों का विश्लेषण करेगा।

एन.एच.आर.सी. के सहयोग से एम.ए.आर.जी. द्वारा 11 विषयों पर 27 पुस्तिकाओं का विकास

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, मल्टीपल एक्शन रिसर्च ग्रुप (एम.ए.आर.जी.), नई दिल्ली के सहयोग से नवम्बर, 2015 में कमजोर तथा हाशिए के लोगों के अधिकारों हेतु तथा उनके कानूनी ज्ञान, अधिकारों के प्रति सम्मान एवं अधिकारों की रक्षा कुशलता के बारे में कानूनी जागरूकता के प्रसार हेतु विभिन्न मानव अधिकार विषयक पुस्तिकाओं के प्रकाशनार्थ एक परियोजना की शुरूआत की। 7 समग्र रूप से, एम.ए.आर.जी. 11 विषयों पर 27 पुस्तिकाओं का प्रकाशन करेगा। ये पुस्तकें प्रयोग में आसान तथा मूल साहित्यिक कौशलता वाले लोगों के लिए भी सुगम होंगी। प्रत्येक पुस्तक में अपने पाठकों व उपभोक्ताओं को बेहतर समझाने हेतु चित्र शामिल होंगे। ये पुस्तकें शुरूआत में अंग्रेजी में लिखीं जांएगी एवं बाद में इसका हिन्दी में अनुवाद तथा मुद्रण करवाया जाएगा।

महिलाओं के खिलाफ हिंसा की दूसरे पहलू से पूछताछ अपराधियों के संसार का एक शोधपरक अध्ययन

दूसरे पहलू से महिलाओं के खिलाफ हिंसा की पूछताछ, अपराधियों के संसार का एक शोधपरक अध्ययन की शुरूआत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा अगस्त, 2014 में सेंटर फॉर विमेंस डेवलपमेंट (सी.डब्ल्यू.डी.एस.), नई दिल्ली के साथ की गई। 8 इस प्रकार के अध्ययन का मूल कारण दिल्ली में महिलाओं एवं लड़कियों के खिलाफ अपराध के आरोपी पुरूष अपराधियों की धारणाओं का अध्ययन करना था। इस अध्ययन के पीछे आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मनौविज्ञानिक कारकों पर आधारित महिलाओं के खिलाफ अपराध से संबंधित अपराधियों की सोच को परखना है जो उनकी पहचान एवं जीवन-शैली को समरूप बनाता है। इस अध्ययन में तिहाड़ जेल में बंद महिलाओं के खिलाफ हिंसा से संबंधित दोषियों की अपराध के पीछे की विचारधारा से संबंधित व्यक्तित्व तथा सामूहिक साक्षात्कार शामिल है। यह मामला अध्ययन अपराधियों के रूप-रेखा में मदद करेगा। यह अध्ययन मुख्यत: शहरी भारत में जेंडर, हिंसा, अपराध एवं सामाजिक स्थानान्तरण पर निष्कर्ष आकर्षित करेगा।

मानव तस्करी पर राष्ट्रीय अनुसंधान अध्ययन

मानव तस्करी पर राष्ट्रीय अनुसंधान अध्ययन नामक परियोजना की शुरूआत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा टाटा समाज विज्ञान संस्थान, मुम्बई के सहयोग से की गई। 9 इस वर्तमान अध्ययन के मुख्य उद्देश्य मानव तस्करी की प्र.ति एवं सीमा का प्राक्कलन, मानव तस्करी की आर्थिक आमदनी को निर्धारित करना, मानव तस्करी के बदलते आयामों को समझना एवं आवास, समुदाय एवं क्षेत्रीय स्तर पर शोषण के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्. तिक कारणों की पहचान थे। इस अध्ययन का मूल कारण वर्तमान प्रतिक्रिया पद्धति की जांच के मुद्दों के पीछे के सिद्धांत को समझना तथा इस अनुसंधान से सामने आई कमियों को संबोधित करने हेतु सुझाव तथा सिफारिश करना था।

पूर्ण हो चुकी शोध परियोजनाएं

जम्मू एवं कश्मीर के संघर्ष ग्रस्त क्षेत्रों में मानव अधिकारों के संरक्षण में सिविल प्रशासन की भूमिका

इस अध्ययन का कार्य लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी, उत्तर प्रदेश को सौंपा गया था। अध्ययन के मुख्य उद्देश्य थे - मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु राज्य प्रशासन, पुलिस तथा अर्ध्द-सैनिक बलों द्वारा निभाई गई भूमिका को आलोचनात्मक रूप से समझना, मानव अधिकारों के संरक्षण में गैर-सरकारी संगठनों एवं राज्य मानव अधिकार आयोग द्वारा निभाई गई भूमिका को समझना तथा मानव अधिकारों के हनन को रोकने के लिए उपचारी उपाय सुझाना। अध्ययन का मुख्य निष्कर्ष था कि अशांत क्षेत्रों में मानव अधिकारों का हनन अवश्यंभावी एवं प्रबल है तथा आम आदमी के दु:खों को दूर करने में प्रशासन को अपनी भूमिका निभानी चाहिए। सुशासन तभी संभव है जब भ्रष्टाचार का पूर्णत: उन्मूलन हो। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि कानून प्रवर्तन अभिकरणों को सशक्त बनाया जाए ताकि वे आम जनता के अधिकारों की रक्षा करने में न्यायपालिका की सहायता करने में सक्षम हों। अंतत: आतंकवाद के पीड़ितों के आर्थिक कष्टों को समाप्त करने के लिए राज्यों को फंड का निर्माण करना चाहिए।

जीविकोपार्जन हेतु वनों पर निर्भरता तथा पर्यावरण पर इसका प्रभाव -मध्य प्रदेश के मंडला जिले के बैगा जनजाति अध्ययन

यह अध्ययन लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी, उत्तर प्रदेश द्वारा किया गया था। 11 अध्ययन के मुख्य उद्देश्य थे - वनों पर बैगाओं की निर्भरता पर प्रभाव डालने वाली दशाओं को समझना यह देखना कि बैगा किस प्रकार लाभप्रद रोजगार पाते हैं। बैगा के जीवनयापन पध्दति तथा सरकारी

योजनाओं के बीच संबंध देखना बैगा लोगों पर कानूनों एवं नीतियों के प्रभाव का विश्लेषण करना तथा ऐसे उपाय सुझाना जिनके द्वारा बैगा अपने स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों का सतत प्रयोग करके लाभ प्राप्त कर सकते हैं। अध्ययन की रिपोर्ट का निष्कर्ष था कि भूमि आधारित गतिविधियों से वनों पर निर्भरता कम हो सकती है तथा इसके लिए .षि के व्यवहार्य एंव सतत् मॉडल की आवश्यकता है। रिपोर्ट में यह संस्तुति भी की गई थी कि बैगा लोगों की क्षमताओं का विस्तार करने के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाने एवं ऋण सुगमता तथा ढांचागत समर्थन देने के लिए तत्काल कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।

पूर्वोत्तर में उग्रवाद के परिणाम स्वरूप मानव अधिकारों के हनन के कारणों, राज्य के उत्तारों की प्र.ति, विशेष कानूनों का प्रयोग, गैर-राज्य कार्यकर्ताओं द्वारा उल्लंघन तथा स्थिति में सुधार हेतु व्यावहारिक सुझाव संस्तुतियों का अध्ययन -

इस अध्ययन का कार्य लाल बहादुर राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी, उत्तर प्रदेश को दिया गया था। इस अध्ययन का उद्देश्य त्रिपुरा में आदिवासियों एवं गैर-आदिवासियों (मुख्यत: बंगालियों) के बीच द्वन्द्व की प्र.ति तथा संघर्ष से संबंधित हिंसा के विषय में समझने का प्रयास करना था। अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य थे - मानव अधिकारों के हनन के स्थायीकरण में उग्रवाद की भूमिका के सर्वेक्षण, मानव अधिकारों को कायम रखने में राज्य कार्यकर्ताओं तथा गैर सरकारी संगठनों (यदि कोई हों) द्वारा निभाई गई भूमिका तथा स्थिति में सुधार हेतु उपचारी उपाय सुझाव।

अध्ययन के अनुसार त्रिपुरा में मानव अधिकारों के हनन को खत्म करने के लिए विद्रोह की स्थिति को खत्म करना एक रामबाण है। अध्ययन में विद्रोह की स्थिति को समाप्त करने के लिए अनेक उपचारी उपाय सुझाए गए हैं जिसमें विकास, प्रशासनिक योजना, शिक्षा, जागरूकता तथा सचेत सुरक्षोपाय एवं पुलिसिंग शामिल हैं।

मुसहर-सामाजिक-आर्थिक अध्ययन

यह अध्ययन ए. के. सिन्हा इंस्टीटयूट ऑफ सोशल स्टडीज पटना द्वारा किया गया था। [12] अनुसूचित जातियों में सबसे पिछड़ी जाति है - मुसहर। ये बिहार, मध्य प्रदेश तथा झारखंड राज्यों में पाए जाते हैं। अध्ययन के उद्देश्य थे - मुसहरों की सामाजिक -आर्थिक दशाओं और रहन-सहन का पता लगाना उनके व्यवसाय एवं शोषण की प्रक्रिया को रिकॉर्ड करना। बाल मजदूरी, वैश्यावृत्ति आदि के माध्यम से अमानवीय शोषण से उन्हें बचाने के लिए नीतियों का सुझाव देना तथा देशी कच्चे माल पर आधारित निवेश से सतत् विकास सुनिश्चित करना। अध्ययन में संस्तुति की गई कि मुसहरों के विकास हेतु एक विशेष कार्य योजना का विकास एवं क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। तदनुसार आयोग को रिपोर्ट के पश्चात अनुवर्ती कार्रवाई की गई थी। संस्तुतियों के आधार पर श्री के. बी. सक्सेना, आई.ए.एस. (सेवानिवृत्त) ने मुसहरों की दशाओं को सुधारने के लिए एक कार्य योजना तैयार की। कार्य योजना के साथ अध्ययन की खोजों को भारत सरकार के सभी संबध्द मंत्रालयों तथा बिहार सरकार को भेजा गया था।

मध्य प्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले में चमत्कारी हनुमान जी मंदिर में मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों की दुर्दशा

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने मध्यप्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले में चमत्कारी हनुमान जी मंदिर में पड़े मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों के मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु एस.ई.वी.ए.सी., कोलकाता को एक पायलट प्रोजेक्ट सौंपा था। 13 प्रोजेक्ट का मुख्य उद्देश्य मंदिर में पड़े मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों के परिवार के सदस्यों के बीच जागरूकता फैलाना तथा इस प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक उपचार की परिधि में उन्हें लाना था। इसका दूसरा उद्देश्य मंदिर परिसर में निदान एवं परामर्श हेतु मनोचिकित्सीय कैम्प स्थापित करने के कार्य को अंजाम देना था। प्रोजेक्ट की अंतिम रिपोर्ट में मंदिर में मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों की दयनीय दशाओं का खुलासा हुआ। ये रोगी तथा उनके रिश्तेदार या तो मंदिर परिसर में रहते हैं अथवा किसी नजदीक गेस्ट हाउस या झोपड़ी में रहते हैं तथा कई बार तो खुले मैदानों में भी रहते हैं। जहां कोई साफ-सफाई की सुविधा उपलब्ध नहीं है। पायलट प्रोजेक्ट की अवधि के दौरान 1069 मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों का साक्षात्कार लिया गया। वे 15-30 वर्ष की आयु वर्ग के थे (55.75:)। 32 प्रतिशत से अधिक दिहाड़ी मजदूर (92:) थे तथा मानसिक रूप से बीमार थे। इनका ध्यान रखने वालों, जो कि सामान्यत: रोगियों के नजदीकी रिश्तेदार थे, ने कहा कि वे मनोचिकित्सीय उपचार के लिए तैयार हैं बशर्ते कि यह उनकी पहुंच में हो तथा रोगियों को नि:शुल्क दवाएं उपलब्ध कराई जाएं।

मानसिक स्वास्थ्य में गुणवत्ता आश्वासन

नेशनल इंस्टीटयूट ऑफ मेंटल हेल्थ एंड न्यूरो साइंसेज (निमहंस), बंगलुरू ने 'मानसिक स्वास्थ्य में गुणवत्ता आश्वासन' संबंधी अध्ययन किया था। 14 अध्ययन के उद्देश्य थे - देश में मानसिक अस्पतालों में दशाओं को सुधारने के लिए कार्य योजना तैयार करना तथा मानसिक अशक्तताओं से प्रभावित व्यक्तियों के अधिकारों के विषय में जागरूकता उत्पन्न करना। मुख्य संस्तुतियों में अन्य बातों के साथ-साथ शामिल थे - मुख्यत: पृथक ब्लॉक

में बाह्रय रोगी सेवाएं उपलब्ध करानाय आपातकालीन मामलों में भर्ती हेतु पांच से दस बिस्तरों का शॉर्ट स्टे वार्ड रोगियों के साथ रिश्तेदारों के रहने के लिए व्यवस्था सहित ओपन वार्ड उपलब्ध करवाना। पृथक नर्सिंग स्टाफ, वार्ड परिचारक आदि सहित गहन देख-रेख यूनिट उपलब्ध करवाना।

रिपोर्ट की प्रतियां आवश्यक अनुवर्ती कार्रवाई हेतु देश में सभी मानसिक अस्पतालों के साथ-साथ राज्य स्वास्थ्य सचिवों को भी भेजी गई थीं।

''ऑपरेशन ओएसिस'' - पश्चिम बंगाल में मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों का अध्ययन

मार्च 2001 में आयोग के लिए सेन एंड एन्थूजियास्ट वॉलेन्टीयर एसोसिएशन ऑफ कोलकाता (एस ई वी ए सी), कोलकाता स्थित एक गैर सरकारी संगठन, ने यह अध्ययन किया था। 15 परियोजना के उद्देश्य थे - पश्चिम बंगाल में जेलों एवं अन्य हिरासत गृहों के संवासियों के बीच मानसिक रूप से बीमार एवं मानसिक रूप से अशक्त व्यक्तियों के प्रतिशत का पता लगाना तथा यह पता लगाने के लिए कि संवासियों के मानव अधिकारों का उचित प्रकार से संरक्षण हो रहा है अथवा नहीं उनके जीवन-यापन की दशाओं का मूल्यांकन करना।

आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार - भारत में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों का मूल्यांकन करने के लिए अध्ययन

यह अध्ययन भारत में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की दशाओं का मूल्याकन करने का प्रयास था। आयोग द्वारा यह कार्य पुणे स्थित एक गैर सरकारी संगठन नेशनल सेंटर फॉर एडवोकेसी स्ट्डीज (एन सी ए एस) को सौंपा गया था। यह अध्ययन तीन राज्यों महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं छत्तीसगढ़ में किया गया था। 16 अध्ययन के मुख्य उद्देश्य थे - हाशिये पर स्थित व्यक्तियों (आदिवासी, दलित, महिलाएं, एवं बच्चों) के विशेष संदर्भ में खासतौर पर भोजन, स्वास्थ्य एवं शिक्षा से संबंधित विषयों पर ई एस सी आर के उपयोग हेतु सरकारी संसाधनों के आबंटन का विश्लेषण करना तथा ई एस सी आर का उपयोग करने के लिए लोगों को सहायता करने में सभ्य समाज की पहलों का पता लगाना।

'अशक्त व्यक्तियों के अधिकार' संबंधी एन एच आर सी - सी एच आर सी - इमू लिंकेज प्रोजेक्ट

यह राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग - भारत, मानव अधिकार आयोग - कनाडा तथा इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली की संयुक्त परियोजना थी। [17]

इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य अशक्त व्यक्तियों के अधिकारों के सरंक्षण हेतु मानव अधिकार दस्तावेजों के प्रभावी प्रयोग हेतु दशाएं निर्मित करना था। इसका अन्य उद्देश्य राष्ट्रीय एवं अंतर राष्ट्रीय समर्थनों में इस्तेमाल किए जा सकने वाले अशक्त व्यक्तियों के मानव अधिकारों के क्षेत्र में न्यायशास्त्र के विकास को प्रोत्साहित करना एवं सुझाव देना था। अशक्त व्यक्तियों के अधिकारों के संवर्ध्दन एवं संरक्षण में घरेलू एवं अंतरर्ष्ट्रीय मानव अधिकार कानूनों के बेहतर प्रयोग हेतु शैक्षिक एवं सर्मथनकारी संगठनों की क्षमता सुधारना इस परियोजना का लक्ष्य था। अशक्तता पर मानव अधिकार अध्ययनों में प्रभावी परिवर्तन की दिशा में परियोजना में कार्य किया गया था। अशक्तता की प्रभावी पहुंच तथा अध्ययन कार्यक्रमों में मानव अधिकार अव्यवों को सहायता देने के लिए संसाधन सामग्री एवं सदर्भों को संग्रहित एवं व्यापक रूप से साझा किया गया था। इन सामग्रियों में शामिल थे - (क) अशक्तता के संदर्भ में विधिक संरचना एवं उनकी प्रासंगिकता का गहन विश्लेषण (ख) अशक्तता विशिष्ट न्यायशास्त्र के उदाहरण अथवा जो अधिकारों के अवयवों, राज्य के दायित्वों तथा व्यापक मानव अधिकार सिद्धान्तों को स्पष्ट करने में सहायक हों। [17] अनुसंधान पेपरों से संसाधन किट का निर्माण किया गया जिसमें मानव अधिकार अशक्ता एवं कानून तथा बिबलियोग्राफी में पाठयक्रम हेतु विषय परक डिजाइन शामिल है। उपर्युक्त परियोजनाएं निश्चित ही भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु प्रकाश स्तम्भ के रूप में कार्य करती है। मानवाधिकार आयोग निरन्तर नए-नए विषयों पर शोध हेतु सक्रिय रहता हैं। इस तरह लोकतांत्रिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था जवाबदेहिता एवं पारदर्शिता की आधारशिला पर विकसित होती हैं। [18] मानवाधिकारों की रक्षा से ही देश में सुशासन का निर्माण संभव है।

निष्कर्ष

उक्त शोध परियोजनाओं से मानवाधिकारों के पालन हेतु समुचित कदम उठाने का मार्ग प्राप्त होता है। यह परियोजनाएँ देश में मानवाधिकारों की स्थिति एवं चुनौतियों से सामना करवाती है। इन शोध परियोजनाओं के निष्कर्ष से मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु समुचित कदम उठाये जा सकते है। संक्षेप में मानवाधिकार आयोग का यह कार्य न केवल नागरिक स्वतंत्रता का प्रसार करता है वरन देश के नागरिकों एवं सरकार को मानवाधिकारों की वस्तुस्थिति से अवगत करवाता है।

सन्दर्भ सूची

1. कटारिया सुरेन्द्र, भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2012, पृ. 85
2. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.एनएचआरसी. एनआईसी.इन
3. उपर्युक्त
4. अभिभावक एवं वरिष्ठ नागरिक भरण पोषण कल्याण अधिनियम 2007 वृद्ध माता-पिता व अभिभावकों को सामाजिक सुरक्षा के रूप में उनके मानवाधिकारों का सरंक्षण करता है
5. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.एनएचआरसी. एनआईसी.इन
6. उपर्युक्त
7. उपर्युक्त
8. उपर्युक्त
9. उपर्युक्त
10. उपर्युक्त
11. उपर्युक्त
12. उपर्युक्त
13. उपर्युक्त
14. उपर्युक्त
15. उपर्युक्त
16. उपर्युक्त
17. उपर्युक्त
18. दुबे अशोक कुमार, 21 वीं शताब्दी में लोक प्रशासन, टाटा मैक्ग्राहिल, नई दिल्ली, पृ. 223

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 58-63

भारत में दलित महिलाओं की मानवाधिकार प्रस्थिति : वर्तमान परिप्रेक्ष्य

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

चंचल रानी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, टोंक (राजस्थान)

शोध सारांश

भारत में हिन्दू समाज प्राचीन काल से ही पद सोपानों में बंधा था। समाज में कुछ लोगों को तो उच्च स्थान व अधिकार प्राप्त थे कुछ को निम्न स्थान व कम अधिकार दिये गये थे। हिन्दू समाज चार वर्णों में विभाजित था जिसमें दलित सबसे निम्न स्तर पर थे और अपने से उच्च वर्णों की सेवा का कार्य दलितों को सौपा गया था। दलितों को शिक्षा के अवसर भी न के बराबर थे। इसी प्रकार भारतीय समाज में पुरूष प्रधानता थी। जिसके कारण महिलाओं की स्थिति पुरूषों की तुलना में कमजोर थी और महिलाओं से शिक्षा के अवसर भी छीन लिये गये थे। भारत में वर्षों तक महिलाओं एवं दलितों के अधिकार सीमित थे, उनके कर्त्तव्य असीमित थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान के गठन से इस स्थिति में संवैधानिक कानूनों द्वारा परिवर्तन के प्रयास किये गये जिससे दलितों की स्थिति में कुछ सकारात्मक परिवर्तन हुए लेकिन दलित महिलाओं के लिये यह प्रयास पूर्णत: संभव नहीं हुआ। महत्वपूर्ण यह है कि यदि महिला दलित है तो उसके प्रगति के अवसर और भी सीमित कर दिये जाते है। दलित महिलाएँ सामाजिक संस्तरण में सबसे निचले स्थान पर आती है, इस प्रकार दलित महिलाएँ न केवल उच्च जाति की महिलाओं से दयनीय एवं विषम परिस्थितियों का सामना करती है बल्कि दलित वर्ग में भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण उनकी स्थिति और भी कमजोर एवं संवेदनशील है। दलित महिलाएँ तिहरे शोषण की शिकार है जिसका आधार जाति, वर्ग एवं लिंग भेद है। अत: दलित महिलाओं को मानवाधिकारों के प्रति जागरूक करने की आवश्यकता है।

संकेताक्षर : *दलित महिलाएँ, भारतीय संविधान, मानवाधिकार प्रस्थिति*

ऐतिहासिक काल से ही दलित महिलाएँ कई प्रकार के शोषण का शिकार रही हैं तथा भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उनके मानव अधिकारों का उल्लंघन होता रहा है। दलित महिलाओं को हिंदू सामाजिक-व्यवस्था में सिर्फ इतना ही स्थान दिया गया है जिससे उनकी सेवाओं का उपभोग उच्च जातियों के लोग कर सकें। ये सेवाएँ मुख्यत: दो रूपों में बाँटकर हम देख सकते हैं- पहला शारीरिक श्रम (मजदूरी, बेगार, मेला ढ़ोना आदि) एवं दूसरा उनका शारीरिक शोषण। मनुस्मृति में भी जब दलित महिलाओं के अधिकारों की बात आई तो उन्हें जानवरों के समकक्ष रखा गया। मध्ययुगीन काल से ही कुछ बदलाव की आवाजें बुलंद की गई और आजादी के बाद डॉ. अम्बेडकर के अथक प्रयासों के फलस्वरूप दलितों और उनकी महिलाओं के अधिकारों के लिए संवैधानिक दर्जा दिया गया किन्तु हिंदू सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न लेखों के आधार पर व्यवस्थित एवं जातिगत पुरानी परम्परागत और भेदभावपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने और उसमें बदलाव करने की कोशिशों को कभी छूट नहीं प्रदान की गई।

अन्याय पर आधारित मनुवादी समाज में शूद्रों और उनकी महिलाओं के शिक्षा और सम्पत्ति जैसे अधिकार छीन लिए थे। उन्हें पशुवत जीवन जीने को मजबूर किया गया। उनका क्रन्दन सुनने वाला कोई नहीं था। स्वयं बाबा साहेब भी इस व्यवस्था के शिकार हुए। अम्बेडकर से पूर्व छत्रपति शिवाजी, महात्मा ज्योतिबा फूले एवं उनकी पत्नी सावित्री बाई फूले भी इस व्यवस्था के शिकार हुए। ये महापुरूष भी उस समय की सामाजिक व्यवस्था से अछूते न रह सके तो उस समय दलित महिलाओं की स्थिति कैसी होगी, इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है जिसका असर वर्तमान में भी इस समुदाय की महिलाओं पर है। आज भी दलित महिलाओं को मात्र उपभोग की वस्तु समझा जाता है। दलित वर्ग की महिलाएँ सामान्य वर्ग की महिलाओं से प्रत्येक अर्थों में भिन्न रही है। उनका कोई भूतकाल नहीं है, वर्तमान भी धुंधला ही है। दलित समाज

की महिलाओं की यह स्थिति प्राचीनकाल से ही समाजशास्त्रियों, स्वयंसेवी संस्थाओं, समाजसेवियों, बुद्धिजीवियों एवं सरकार के लिए चिन्ता का विषय रही है। आज जब विश्व के किसी भी देश में मानवाधिकारों का हनन होता है तब उस देश के शिक्षाशास्त्री एवं बुद्धिजीवी भी गलाफाड़ कर चिल्लाते हैं लेकिन जब उसी देश में उनकी नाक के नीचे और पड़ोस में किसी दलित महिला को नंगा कर नचाया जाता है अथवा खुले में उसका बलात्कार और हत्या कर दी जाती है साथ ही उसका शोषण एवं उत्पीड़न किया जाता है तब किसी भी वर्ग के कानों में किसी भी तरह की आवाजें नहीं गूंजती, चुपचाप तमाशा देखते रहते हैं।

आज दलित महिलाएँ विभिन्न मोर्चो पर संत्रास, शोषण, उत्पीड़न, अनाचार एवं उत्पीड़न का शिकार हो रही हैं। उनके लिए अधिकारों की बात तो बहुत बार की जाती है लेकिन वास्तविकता के नाम पर उन्हें सिर्फ छला ही जाता रहा है। दलित महिलाओं को हर प्रकार के शोषण का शिकार होना पड़ता है। समाज में उन्हें प्राचीनकाल से ही सभ्यता के नाम पर कलंक समझा जाता रहा है उन्हें मानव की श्रेणी से बाहर ही रखा जाता है। दलित महिलाओं को समाज में अपने परिश्रम के साथ-साथ अपने जिस्म पर भी कोई अधिकार नहीं है। आज भी इस वर्ग की महिलाओं को उच्च वर्ग के लोगों द्वारा सस्ते श्रम में खरीदा जाता है और जब चाहे, जैसा चाहे उपभोग कर सकते हैं। दलित पुरूषों की आवाज दबाने के लिए भी उनकी महिलाओं पर अत्याचार किये जाते हैं। दलित महिलाओं के साथ प्रत्येक वर्ष बलात्कार की घटनाएँ घटित होती रहती हैं।[1]

आज 21वीं सदी में भी भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था से अछूता नहीं है। जातीय शोषण आज भी विद्यमान है चाहे वह धर्म के आधार पर हो या जातिगत आधार पर, वैज्ञानिक युग में भी सामाजिक वर्गीकरण बना हुआ है। दलित महिलाओं की दयनीय स्थिति इसी वर्ण व्यवस्था का परिणाम है। परिणामस्वरूप आज संवैधानिक युग में भी अगर उनकी स्थिति में अन्तर आया है तो किस प्रकार?

स्वतंत्रता से पूर्व दलित महिलाओं की मानवाधिकार स्थिति

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ-साथ ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करने वाली अनेक धार्मिक संस्थाओं का आगमन हुआ जिनका प्रमुख लक्ष्य मानवीयता को जाग्रत करना था। शूद्र जो दबे-कुचले थे, सड़कों पर नहीं चल सकते थे उन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। ईसाई मिशनरियाँ भारत में पश्चिमी सभ्यता का मानवीय का रूप प्रस्तुत करने में बड़ी भूमिका अदा कर चुकी है। इनका सम्बन्ध समाज सेवा, दलितों, शोषितों का उद्गार एवं महिलाओं सहित समस्त वर्गों के कल्याण से है। भारत में ज्यों-ज्यों अंग्रेजी साम्राज्य विकसित होता गया, त्यों-त्यों दलितों-पिछड़ों एवं महिलाओं के लिए स्कूलों का निर्माण किया गया जिनमें शिक्षा से लेकर दलित बालकों के जीवन की विसंगतियों को भी परखने का अवसर मिला।''[2] ब्रिटिश शासन काल में दलित महिलाएँ जातिगत धंधों को त्यागकर कृषि, व्यापार एवं उद्योगों जैसे स्वच्छ व्यवसायों में प्रवेश लेने लगी। दास प्रथा का अन्त हुआ और कॉफी, चाय के बागानों की शुरूआत हुई जिनमें दलित महिलाएँ काम करने लगी। उनकी आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आने प्रारम्भ हुए। अम्बेडकर के संघर्षशील व्यवहार के कारण ब्रिटिश शासन में ही दलितों को वोट डालने का अधिकार भी प्राप्त हुआ परन्तु यह अधिकार शिक्षा के आधार पर किया गया था जो कि दलित महिलाएँ इस अधिकार से कोसों दूर थी। अंग्रेजी शासन काल में जातिगत भेदभाव पर ध्यान नहीं दिया जाता था, जिस कारण छुआछूत की तरफ अंग्रेजों का ध्यान ही नहीं गया। उच्च वर्ग प्राचीन की भांति ही दलितों पर हावी रहा और उन्हें सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं से दूर ही रखा गया। ब्रिटिश काल में जमींदारी प्रथा का अन्त हुआ परन्तु अब दासों का स्थान श्रमिकों के रूप में दलितों ने ले लिया था और शिक्षा से उन्हें दूर रखा। कुछ समाज सुधारकों ने दलित वर्ग के विकास हेतु प्रयास भी किये परन्तु ये प्रयास पहले दलित समुदाय का विकास करते उसके पश्चात दलित महिलाओं के अधिकारों की बात सम्भव थी। स्वामी दयानन्द, घासीराम, नारायण गुरु, रानाडे, विवेकानन्द, रामास्वामी पेरियार का आन्दोलन, ज्योतिबा फूले का सत्यशोधक समाज एवं उनकी पत्नी का महिला शिक्षा आन्दोलन, अम्बेडकर का दलितोत्थान, गाँधी के छुआछूत उन्मूलन आदि आन्दोलनों के द्वारा इन समाज सुधारकों ने दलितों की दशा सुधारने के प्रयास किये। ब्रिटिश काल में दलित महिलाओं का दोहरा शोषण हुआ एक तो हिन्दुओं द्वारा शूद्र एवं दलित मानकर और दूसरा अंग्रेजों द्वारा असहाय एवं कमजोर समाज की महिलाएँ मानकर। दलित महिलाएँ उच्च जातियों के घरों में साफ-सफाई का काम करती थी और सड़कों का कूड़ा-कचरा साफ करती थी। विद्यालय जाने का इनका अधिकार नहीं था। काम के बदले इनको फटे-वस्त्र और झूठा भोजन ही मिलता था, अच्छे और साफ-सुथरे वस्त्र पहनने का इनका अधिकार नहीं था। बहुत से स्थानों पर दलित समुदाय की महिलाओं को अपने स्तन ढकने का भी अधिकार नहीं था और आभूषण पहनने पर भी प्रतिबन्ध था। पर्दाप्रथा, सतीप्रथा, देवदासी प्रथा एवं वेश्यावृत्ति इसी काल में सर्वाधिक थी। दलित समुदाय की महिलाओं को अत्यधिक शारीरिक एवं मानसिक शोषण का शिकार होना पड़ता था। दलित महिलाओं के लिए अधिकारों की

बात करना तो दूर मानवीय समुदाय से भी पृथक समझा जाता है। पुर्नजागरण काल में विभिन्न समाज सुधारकों एवं अम्बेडकर के प्रयासों से इनकी यथास्थिति सुधारने के लिए अनेक संघर्षों एवं आन्दोलनों द्वारा इन्हें जागृत करने के प्रयास किये गये और शिक्षा के महत्व को समझाने की कोशिश की गई।

स्वतन्त्रता के पश्चात् दलित महिलाओं की स्थिति

भारत में लगभग दो शताब्दी तक ब्रिटिश राज स्थापित रहा और सन् 1935 में साइमन कमीशन ने अस्पृश्य जातियों के लिए अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया जिसे डॉ. अम्बेडकर ने भी स्वीकार किया। 1947 में भारत को ब्रिटिश राज से आजादी मिली और गणतन्त्र भारत के लिए एक स्वतंत्र एवं पृथक संविधान का गठन किया गया। डॉ. अम्बेड़कर के अथक प्रयासों एवं दलित समुदाय के लिए आजीवन संघर्षरत रहने कारण भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों के लिए विशेष अधिकारों को सम्मिलित किया गया। इन अधिकारों में महिलाओं के लिए विशेष एवं समान अधिकारों को भी शामिल किया गया है जिसमें दलित महिलाएँ भी सामान्य महिलाओं की तरह समान एवं गरिमामय जीवन-यापन कर सके। भारतीय संविधान में अन्याय पर आधारित नियमों को समाप्त कर दिया गया, तथा न्याय पर आधारित समतावादी समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया गया है।''[3]

संवैधानिक एवं वैधानिक स्थिति

हर व्यक्ति जन्म से ही अधिकार लेकर आता है, चाहे वह जीने का अधिकार हो या विकास के लिए अवसर प्राप्त करने का मगर इस पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं के साथ लैंगिक आधार पर भेदभाव की वजह से इन अधिकारों से वंचित रहना पड़ता है। दलित महिलाओं के अधिकारों को सुनिश्चित करने हेतु हमारे संविधान में अलग से कुछ कानून बनाये गये हैं जिससे ये महिलाओं के जीवन में मदद कर सकें और समय-समय पर इनमें संशोधन भी किये जाते रहे हैं -

अनुच्छेद 14-विधि के समक्ष समानता, अनुच्छेद 15 के तहत धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान एवं वर्ग के आधार पर प्रतिबंध, अनुच्छेद 15 (2) में सार्वजनिक स्थलों, दुकानों, होटलों और मनोरंजन के स्थलों पर प्रवेश या कुएँ अथवा तालाबों आदि के इस्तेमाल पर प्रतिबंध निषेध किया गया है। अनुच्छेद 15(4) के अन्तर्गत राज्यों में पंचायतों सहित विभिन्न निकायों में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की महिलाओं का प्रतिनिधित्व एवं नामांकन स्वीकार किया गया है। इसके अलावा अनुसूचित जाति की महिलाओं के सामाजिक एवं शैक्षणिक स्तर को ध्यान में रखते हुए उनके विकास के अवसरों के लिए समानता प्रदान करने हेतु विशेष प्रबन्ध किये गये हैं। अनुच्छेद 16(1) में नौकरियों में आरक्षण की सुविधा, अनुच्छेद 16(2) में राज्यों के अधीन किसी नियोजन या पद से सम्बन्धित किसी भी व्यक्ति से उसकी जाति, धर्म, वंश, लिंग, निवास अथवा जन्मस्थान के आधार पर किसी नागरिक को अपात्र घोषित नहीं किया जा सकता और न कोई भेदभाव किया जायेगा। अनुच्छेद 16(4) में अनुसूचित जाति के सामाजिक-शैक्षणिक दृष्टि से पिछडे़पन को दूर करने हेतु आरक्षण का भी लाभ दिया गया है। अनुच्छेद 17 के अन्तर्गत छुआछूत का पूर्णत: अन्त किया गया है और इसके अन्तर्गत अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत प्रत्येक समाज के नागरिक को देश में जीविका जीने के साधन, व्यवहार एवं कोई भी कारोबार करने का अधिकार प्रदान किया गया हैं। अनुच्छेद 21 में दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार, अनुच्छेद 23(1) में बेगार या बलपूर्वक किसी से श्रम कराना दण्डनीय अपराध होगा। अनुच्छेद 25(2)(9) सार्वजनिक संस्थाओं में सभी हिन्दुओं को प्रवेश का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 28 में गैर सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में जिन्हें सरकार द्वारा अनुदान मिलता है उनमें धार्मिक शिक्षा दी तो जा सकती है परन्तु अनिवार्यत: नहीं होगी। अनुच्छेद 29 द्वारा राज्य द्वारा पोषित किसी शिक्षण संस्थान में अनुसूचित जातिवर्ग के किसी भी नागरिक को प्रवेश के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 35(),(2) में संसद को मौलिक अधिकारों से जुडे. संवैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन के तहत् अपराध दिये जाने एवं कानून बनाने का पूरा अधिकार दिया गया है और दण्ड की व्यवस्था भी की गई है। धारा 35 (अ)(77) के अन्तर्गत **'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955'** पारित किया गया है। यह अधिनियम 106 के जरिये संशोधित कानून के रूप में **'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955'** यह जम्मू कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर लागू किया गया है। यह अधिनियम 30 जनवरी 1990 में लागू हुआ। इस अधिनियम की धारा-3 अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके खण्ड 10 में यह प्रावधान किया गया है कि कोई भी मनुष्य अनुसूचित जाति के सदस्य का अपमान करने के उद्देश्य से कार्य करेगा अथवा अनुसूचित जाति की महिला की लज्जा भंग करना, या उपहास की दृष्टि से देखना या नीचा दिखाना, घृणा की दृष्टि से देखना, छुआछूत करना या जातिगत सम्बोधन करने पर उसे 6 माह से 5 वर्ष तक की अवधि की कैद और जुर्माने का प्रावधान किया गया है। इसके अलावा अनुसूचित जाति की महिलाओं को तंग करना, उनका अनादर करना, अनुचित दबाव बनाकर उनका

लैंगिग शोषण करना एवं गाँव छोड़ने के लिए विवश करना इत्यादि हेतु धारा 3(1) के अन्तर्गत छ: माह से पाँच वर्ष की अवधि का कारावास एवं जुर्माने का प्रावधान है। अनुच्छेद 330 और 332 के अन्तर्गत लोकसभा व राज्यसभा, विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये पृथक सीटों का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन विधेयक 1992 के द्वारा पंचायतों एवं नगरपालिकाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं हेतु 1/3 स्थानों को आरक्षित किया गया है।

अनुसूचित जाति अधिनियम, 1989

1. अनुसूचित जाति की महिला के साथ बलपूर्वक मारपीट करने, उसका अपमान करना सम्बन्धित मामले पर जुर्माने व सजा का प्रावधान है।
2. अनुसूचित जाति की किसी भी महिला की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में होने पर उस स्थिति का प्रयोग उसका लैंगिक शोषण करने के लिए सजा व जुर्माने का प्रावधान है।[4]

सामाजिक तौर पर दलित महिलाएँ आर्थिक एवं शैक्षिक तौर पर पिछड़ेपन की शिकार होती है। इसके भार से दलित महिलाएँ चाहते हुए भी इन कानूनों का उपयोग नहीं कर पाती। बहुत सारे मामलों में इन दलित महिलाओं को पता ही नहीं होता कि उनके साथ जो घटनाएँ हो रही है, उससे बचाव का कोई कानून भी है और आमतौर पर शारीरिक शोषण, मारपीट, जान से मारना आदि हिंसा का शिकार होती है इसके लिये पुलिस थाने में रिपोर्ट दर्ज पहले तो कराई ही नहीं जाती और यदि करायी भी जाती है तो दलित होने के कारण कार्यवाही ही नहीं की जाती है। इन दलित महिलाओं को यह भी नहीं पता होता कि मनपंसद कपडे़ पहनना, नौकरी या काम न करने देना, बालिग होने पर मनपंसद विवाह करना, ताने देना, शक करना, आने-जाने पर रोक लगाना, पढ़ने न देना, काम छोड़ने का दबाव बनाना आदि हिंसा है प्रताड़ना है। यहाँ तक कि घरेलू हिंसा अधिनियम से भी अधिकांश दलित महिलाएँ अनभिज्ञ है।

अपहरण, भगाना या दलित महिला को शादी के लिए मजबूर करने जैसे अपराध के खिलाफ धारा 366 लगाई जाती है, जिसमें 10 वर्ष की सजा का प्रावधान है, पहली पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना धारा 494 के जघन्य जुर्म है अभियुक्त को 7 वर्ष की सजा मिल सकती है, पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता बरतने पर धारा-498 के तहत् 3 साल की सजा दी जा सकती है, अगर कोई व्यक्ति या रिश्तेदार महिला का अपमान करता है और झूठे आरोप लगाता है तो उसे धारा-499 के तहत् दो साल की सजा का प्रावधान है। दहेज मांगना और उसके लिए प्रताड़ित करना बेहद जघन्य अपराध है जिसके लिए भारतीय कानून में आजीवन कारावास की सजा है जो धारा 304 के तहत् सुनाई जाती है दहेज मृत्यु के लिए भी अभियुक्त पर धारा-304 के तहत् 10 वर्ष की सजा का प्रावधान है। सार्वजनिक जगह पर अश्लील गीत गाने या अश्लीलता की हरकत करने के लिए धारा-294 और 3 माह कैद या जुर्माना या दोनों का प्रावधान है। दलित महिला की शालीनता भंग करने की मंशा से की गई, अश्लील हरकत के लिए धारा 354 में 2 वर्ष की सजा, महिला के साथ अश्लील हरकत या अपशब्द कहने पर धारा-509 और 1 वर्ष की सजा, बलात्कार के लिए धारा 376 लगाई जाती है और 10 वर्ष की सजा या उम्रकैद का प्रावधान है। महिला की सहमति के बगैर गर्भपात कराना भी उतना ही बड़ा अपराध है जिसके लिए धारा-313 के तहत् आजीवन कारावास या 10 वर्ष की कैद, जुर्माना आदि की कड़ी सजा के प्रावधान किये गये हैं।[5]

26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू होने के बाद दलित महिलाओं के अधिकार बहाल हुए और वे अधिकार मिले जो इन्हें पहले प्राप्त नहीं थे। मनुवादी व्यवस्था के तहत उच्चवर्गीय लोगों को जो विशेषाधिकार प्राप्त थे वे भारतीय संविधान के अमल में आने के पश्चात् समाप्त हो गये। स्वतन्त्रता से पूर्व दलित महिलाओं को मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया और पशुवत जीवन जीने को विवश किया गया था, उन्हें भारतीय संविधान द्वारा अधिकार प्राप्त हुए। डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में उनके अथक प्रयासों के बाद इस अन्यायवादी सामाजिक व्यवस्था को समाप्त कर न्याय पर आधारित समतामूलक समाज की स्थापना की गई। उपर्युक्त सवैंधानिक प्रावधानों एवं कानूनों के तहत भारत में वर्तमान में दलित महिलाओं की स्थिति निम्न प्रकार से है -

दलित महिलाओं की वर्तमान स्थिति

समाज में निम्न स्तर : भारतीय समाज में दलित महिलाओं को आज भी निम्न स्तर का समझा जाता है। भारतीय संविधान में सभी को समान अधिकार दिये गये है परन्तु दलित महिलाएँ समाज में आज भी प्रत्येक स्थान पर स्वयं को असुरक्षित महसूस करती है। भारत में अधिकांश स्थानों पर उच्च वर्ग के लोग अपने घर में किसी की मृत्यु होने पर मृत व्यक्ति की चारपाई और वस्त्र आदि दलित महिलाओं को इस्तेमाल के लिए दे दिये जाते है।

शिक्षा का अभाव : दलित महिलाओं में शिक्षा का अभाव प्राय: बना हुआ है। ये महिलायें स्वयं को असुरक्षित महसूस कर शिक्षा प्राप्त करने हेतु विद्यालय नहीं जा पाती क्योंकि या तो उच्च वर्गों द्वारा इनका उपहास उड़ाया जाता है, या विद्यालय जाने पर भी इसके साथ विद्यालयों में भी भेदभाव किया जाता है।

शौचालयों का अभाव : दलित महिलाओं के घरों में आज भी शौचालयों का अभाव बना रहता है। दलित महिलाओं को शौच हेतु घरों से दूर जंगलों में जाना पड़ता है। जहाँ इन महिलाओं के साथ छेड़छाड़ एवं शारीरिक हिंसा की जाती है।

निम्न आर्थिक स्तर : दलित समुदाय प्राचीनकाल से ही निम्न अवस्था में रहा है। परम्परागत पेशों को अपनाकर ये लोग उसी कार्य में लिप्त रहते हैं। आज भी इस समुदाय की महिलाएँ मैला ढ़ोने एवं सड़कों की साफ-सफाई एवं मजदूरी का काम ही करती है जिस काम के लिए श्रम भी कम मिलता है। कम श्रम मिलने के कारण दलित समाज की महिलाएँ सिर्फ अपने परिवार का पेट भरने में ही रह जाती है। जिस कारण ये आर्थिक एवं सामाजिक विकास के स्तर से सामन्य महिलाओं से पिछड़ी हुई हैं।

समाज में पृथक निवास स्थान : वर्त्तमान में भी इस समाज की अलग झोंपड़ियाँ अथवा मौहल्ले बनाये गये है। प्रत्येक गाँव अथवा कस्बे में दलित समुदाय अन्य वर्गों से पृथक रहते हैं। शहरों में भी इनकी कॉलोनियां अथवा झुग्गी-झोपड़ियाँ अलग स्थानों पर मिलती है। जहाँ रहन-सहन निम्न स्तर का एवं साफ-सफाई की कमी है। दलित वर्ग के लोग अगर शहर में किराये का मकान लेने जाते है तो उच्च वर्ग के लोगों द्वारा इनकी जाति पूछी जाती है और मकान किराये पर नहीं मिलता है।

रूढ़िवादी सोच : ब्राह्मणवादी सोच के कारण दलित महिलाओं में सर्वाधिक रूढ़िवादी सोच पायी जाती है, क्योंकि युगों तक दबे कुचले शोषित होने के कारण इनकी सोच भी वैसी ही बन गयी है। शिक्षा के अभाव में पिछड़ापन बना हुआ है, और अनेक रूढ़िवादी प्रथाएँ इनमें आज भी बनी हुई है। पर्दा प्रथा, ऊपरी बातें एवं अनेक स्थानों पर देवदासी, एवं वैश्यावृत्ति के धन्धों में सर्वाधिक दलित समुदाय की महिलाएँ ही लिप्त है।

राजनीतिक क्षेत्र में पिछड़ापन : दलित महिलाओं को भारतीय संविधान में समानता का अधिकार दिया गया है और पंचायतों में 1/3 स्थान आरक्षित किये गये है। समानता के अधिकार होने पर भी अधिकांश दलित महिलाएँ मतदान भी अपने परिवार की इच्छानुसार अथवा अपने पति की मर्जी से करती है। राजनीतिक नेतृत्व का इनमें पूर्णतया अभाव बना हुआ है।

परिवारिक उत्तरदायित्व : दलित महिलाएँ अपना सारा वक्त परिवारिक उत्तरदायित्व निभाने में लगा देती है। जिस कारण इनका ध्यान शिक्षा एवं राजनीति की ओर आकर्षित ही नहीं हो पाता दलित परिवारों में बच्चों की संख्या भी सामान्य परिवारों से अधिक पायी जाती है जो इनकी निम्न आर्थिक स्थिति का कारण है। पूरा समय ये महिलाएँ बच्चों एवं परिवार की देखरेख में लगा देती है और उससे बाहर निकल ही नहीं पाती है।

स्वास्थ्य सेवाओं एवं संसाधनों का अभाव : दलित महिलाओं के घरों में इनका आर्थिक स्तर निम्न होने के कारण प्राय: संसाधनों का अभाव बना रहता है। ये महिलाएँ स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं के लिए किसी नजदीकी सरकारी स्वास्थ्य केन्द्र अथवा झोलाझॉप डॉक्टरों पर ही निर्भर रहती है। जिस कारण इन महिलाओं में अत्यधिक परिश्रम करने एवं अधिक संतानोत्पत्ति के कारण शारीरिक रूप से कमजोरी आने से अनेक बीमारी घर कर जाती है। इन समुदायों में जन्मदर एवं मृत्युदर भी अन्य समुदायों से अधिक है।

अधिकतम श्रम के लिए न्यूनतम वेतन : श्रमिक के रूप में अधिकांश दलित महिलाएँ ही कार्य करती है। जिनसे पुरूषों से अधिक काम लिया जाता है और उन्हें समान कार्य के लिए समान वेतन भी नहीं दिया जाता है, जबकि भारतीय संविधान के समान कार्य के लिए समान वेतन का प्रावधान है।

निष्कर्ष : आज देश की आजादी को 70 के ऊपर दशक गुजर चुके है। लेकिन भारत के सामाजिक परिदृश्य में चार स्तरीय वर्ण व्यवस्था में पूर्णरूप से मौलिक परिवर्तन नहीं आ पाया है और यह व्यवस्था आज भी विद्यमान है। आजाद भारत में दलित महिलाओं के खिलाफ होने वाले अत्याचार एक नयी समस्या बनकर सामने आये हैं। ऐसी स्थिति में जब दलित समाज की जागरूकता में वृद्धि होने लगी है और उन्होंने आई.सी.एस. सिद्धान्त तथा दासता को अस्वीकार कर दिया तब उनके खिलाफ होने वाले अत्याचार उन्हें दबाने के लिए एक अस्त्र के रूप में सामने आये इससे वे पहले की तरह ही असुरक्षित बने रहे क्योंकि शिक्षा एवं आरक्षण के सहारे सिर्फ गिनी-चुनी दलित महिलाओं का ही विकास हुआ है। राजनीति के क्षेत्र में देश की प्रथम दलित महिला मुख्यमंत्री सुश्री मायावती एवं लोकसभा अध्यक्ष रही मीरा कुमार जैसी संघर्षशील महिलाओं ने अपना परचम लहराया है। परन्तु उनके जीवन में आया यह परिवर्तन एवं बढ़ोतरी भी उच्च वर्ग की आँखों में खटकती है क्योंकि सदियों से दबे-कुचले, दीन-हीन एवं शोषित अवस्था में रही दलित नारियां उसी स्थिति में अभ्यस्त रही है परन्तु केन्द्र व राज्य सरकारें इन सामाजिक असमानताओं को समाप्त करने

के लिए इन महिलाओं के लिए विकास व कल्याणकारी योजनाएँ बना रही है, परन्तु इनका कोई खास असर नहीं दिखाई दे रहा हैं क्योंकि असमानता तो मानसिक स्तर पर व्याप्त है। जातीय आधार पर दलित महिलाओं के साथ अत्याचार व दुराचार किया जाता है। शैक्षणिक संस्थाएँ भी इन भेदभाव व असमानता से अछूती नहीं रह गयी है। राजनीतिक क्षेत्र में दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व बहुत ही कम है और जिन दलित महिलाओं का चुनाव किया जाता है। वह भी उच्च वर्गों अथवा पुरूषों के हाथ की कठपुतली मात्र बनकर रह जाती हैं। गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण एवं भेदभाव का दबाव भी बना रहता है। सरकार को चाहिये कि निचले स्तर पर योजनाओं को लागू करें जो व्यक्तियों के विचारों को परिवर्तित कर सके।

सुझाव : उपर्युक्त निष्कर्ष के साथ कुछ सुझाव दिये जा सकते है जिनके आधार पर दलित महिलाओं को जागरूक किये जाने के साथ ही उनकी स्थिति में भी सुधार किये जा सकते हैं - वर्तमान में भारत 21वीं सदी के विकास की ओर अग्रसर है जहाँ वैश्वीकरण के दौर में भारत के प्रत्येक वर्ग का विकास किया जा रहा है। दलित महिलाओं के विकास के स्तर को बढ़ाने हेतु भी सरकार द्वारा विशेष कार्य एवं योजनाएँ चलायी जानी चाहिये। दलित वर्ग की बालिकाओं के लिए 1 से 8 तक की मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। उच्च शिक्षा हेतु भी छात्रवृत्ति एवं अनुदान की व्यवस्था की जाये। दलित महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने हेतु शहरों के साथ-साथ गाँवों में भी कुटीर उद्योगों एवं अन्य छोटे-छोटे कार्य जैसे कपड़ा-बुनना, सिलाई-कढ़ाई, बकरी पालन, आदि की व्यवस्था की जाये। दलित महिलाओं के स्वास्थ्य सेवाओं हेतु प्रत्येक गाँव एवं शहरों में मुफ्त स्वास्थ्य शिविर लगाये जाऐ एवं अस्पतालों का निर्माण किया जाये। अत्यधिक संतानोत्पत्ति पर रोक लगाने हेतु अस्पतालों एवं आशा कार्यकर्त्ताओं द्वारा परामर्श एवं परिवार नियोजन के साधन प्रदान किये जाये। सरकार द्वारा दलित महिलाओं की सुरक्षा हेतु कडे़-निर्देश लागू किये जाये ओर प्रशासन द्वारा दलित महिलाओं का शोषण एवं बलात्कार करने वालों को कड़ी सजा एवं जुर्माने का प्रावधान किया जाये। राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं को भी चाहिये कि वे स्वयं भी आगे आये और अपने पद का का प्रयोग करें इसके लिए उनके परिवार को भी सहयोग प्रदान करना चाहिये जिससे दूसरी महिलाओं में भी जागरूकता आ सकें। ग्राम पंचायत स्तर पर दलित महिलाओं को कानूनों एवं मानवाधिकारों की जानकारी भी प्रदान की जाये जिससे सभी महिलाएँ मानवाधिकारों और कानूनों की जानकारी प्राप्त कर सकें और उनका सही मायने में प्रयोग कर सके। हमारा देश सही मायने में विकास की ओर तभी अग्रसर हो सकेगा, जब प्रत्येक वर्ग एवं समाज की स्थापना समानता एवं न्याय पर आधारित हो।

सन्दर्भ सूची

1. गुप्ता, दिप्ती, दोहरे शोषण की दास्तांन की शिकार दलितों में भी दलित नारियाँ, विरेन्द्र सिंह यादव, भारत में महिला सशक्तीकरण के उभरते परिदृश्य, ऐल्फा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2013 पृ. 175
2. काजल, नीतू दलित सशक्तीकरण, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 58
3. उपरोक्त, वहीं, पृ. 93
4. खंडेला, मानचन्द दलित अधिकार एवं व्यवहर, पॉइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2008, पृ. 5-6
5. एचटीटीपीः//डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.चौथीदुनिया.कॉम
6. अग्रवाल, गिरिश, दलित और कानून, ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क, नई दिल्ली, 2010
7. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.एज्युकेशनलजर्नल.ओआरजी
8. कुमार, विवेक, शिक्षा के दायरे में दलित, दैनिक जागरण वाराणसी, 20 दिसम्बर, 2007
9. एचटीटीपीः//डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.रचनाकार.ओआरजी/2015/8/ब्लॉगपोस्ट-580.एचटीएमएल/31/08/18
10. एन्थोनी, एम.जे., दलित राइट्स : लैण्डमार्क जजमेन्टस् ऑन एस.सी./एस.टी./बैकवर्ड क्लासेज, इंडियन सोशल इन्सटयूट, न्यू दिल्ली, 1997

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 64-68

अफगान समस्या : भारतीय विदेश नीति के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. मधु बाला
व्याख्याता, राजनीति विज्ञान
एस.एस. जैन सुबोध (ओटोनोमस) पी.जी. कॉलेज, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

अफगानिस्तान के संकट से भारत को जोड़ने वाला मुख्य तत्त्व आतंकवाद है। हमारी समस्त सुरक्षा समस्याएँ अफगानिस्तान में लोकतांत्रिक सरकार के गठन व अफगानिस्तान में पाकिस्तान के प्रभाव में कमी पर टिकी है। भारत ने अफगानिस्तान में कई योजनाओं के द्वारा अपनी पैठ बनायी है। भारत वहाँ की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए अफगानिस्तान की जनता का हृदय जीतना चाहता है ताकि एक ओर तो पाकिस्तान की दुर्भावना पूर्ण उपस्थिति को नियंत्रित किया जा सके तथा दूसरी तरफ आतंकी ताकतों को अफगानिस्तान के विकास द्वारा निरुत्साही किया जा सके। भारत का एक हवाई बेड़ा जो फारखोर, तजाकिस्तान में है उसकी रक्षा व स्थायित्व का निर्धारण भी अफगानिस्तान की स्थिरता से है। भारत की प्रभावशाली उपस्थिति मध्य एशिया तथा दक्षिण एशिया में व्याप्त चीन व अमेरिका के प्रभाव को कम कर सकती है। साथ ही भारत उस आतंकवाद का सामना करने में भी समर्थ हो सकेगा जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से भारत के हितों को नुकसान पहुँचा रहा है। अफगानिस्तान के साथ नजदीकी सहयोग से भारत की स्थिति क्षेत्रीय शक्ति के रुप में भी बढ़ सकेगी।

संकेताक्षर : *हार्ट लैण्ड, बफर राज्य, तालिबान, अलकायदा, अफ-पाक नीति, हार्ट ऑफ एशिया पहल*

दक्षिण एशिया एक भाग ऐसा क्षेत्र है जिसका केन्द्र भारत है और जहाँ के वर्तमान वैश्विक परिदृश्य के प्रति दुनिया का मिजाज तेजी से बदल रहा है। भू-मण्डलीकरण, पर्यावरण, मानवाधिकार जैसे मुद्दे तेजी से उभर रहे हैं। परमाणु अप्रसार व आतंकवाद की चुनौती बरकरार है। पर कुछ ऐसे परिवर्तन भी हुए हैं जिन्होंने विश्व की राजनैतिक व सामरिक समीकरणों को बदल दिया है। उनमें एक महत्वपूर्ण परिवर्तन सोवियत संघ का विघटन है। 1991 में सोवियत संघ के विघटन व सैन्ट्रल एशियन रिपब्लिक (CAR) के उद्भव के बाद भारत द्वारा मध्य एशियाई देशों के साथ आर्थिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किये गये हैं। आज अफगानिस्तान जिस क्षेत्र में अवस्थित है उसे मध्य एशिया कहा जाता है। यह क्षेत्र 1904 में मैकाइन्डर द्वारा प्रतिपादित निबन्ध ''इतिहास की भौगोलिक धुरी'' में Heart Land या धुरी क्षेत्र की परिकल्पना में शामिल है। [1] मैकाइण्डर का कथन था कि ''हृदय स्थल दुनिया का एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जहाँ अनेक साम्राज्य की सीमायें एक साथ मिलती है। इस क्षेत्र पर जो नियंत्रण करेगा वह सारे विश्व पर नियंत्रण कर सकेगा। '' जिसे हम मध्य एशिया कहते हैं उसमें सोवियत संघ के पाँच गणतंत्र कजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उज्बेकिस्तान, किर्जिस्तान, तजाकिस्तान तो है ही अफगानिस्तान, मंगोलिया, तिब्बत, चीन का सिक्यांग प्रांत, पाकिस्तान व ईरान के कुछ उत्तरी हिस्से भी आ जाते हैं। [2]

प्रस्तुत शोध पत्र में अफगानिस्तान की ऐतिहासिक, सामरिक व राजनैतिक स्थिति का अध्ययन करते हुए वर्तमान में इसके महत्वपूर्ण घटनाचक्र का अध्ययन करने का प्रयास किया जायेगा।

ऐतिहासिक वर्णन

अफगानिस्तान एक पहाड़ी मुस्लिम स्थलबद्ध मुस्लिम राज्य है। आधुनिक अफगानिस्तान की रचना 1747 में हुई। भारत में अंग्रेजों के शासनकाल में अफगानिस्तान ने ब्रिटिश भारत व रूस के मध्य बफर राज्य (Buffer State) की भूमिका निभायी। 1907 की ''पीटसबर्ग संधि'' के द्वारा रूस ने अफगानिस्तान को ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्र के तहत स्वीकार कर लिया परन्तु ब्रिटिश सेना को उस पर अधिकार करने की अनुमति नहीं दी गयी। 1921 में अफगानिस्तान को सम्प्रभुता सम्पन्न स्वतंत्र राज्य स्वीकार कर लिया गया।

वर्ष 1926 को अमानुल्ला ने अपने आप को अफगानिस्तान का राजा घोषित कर हुकूमत की बागडोर अपने हाथ में ले ली। अमानुल्ला खुले विचारों का अफगानी था। जिसके खुले विचार कट्टरपंथियों को रास नहीं आये और अपने सुधारों का तीखा विरोध होता देखकर 1929 में अपने मुल्क को छोड़ कर भाग गया। 1933 में जाहीरशाह के नेतृत्व में पूरे चार दशकों तक अफगानिस्तान में राजशाही शासन रहा। 1953 में जनरल मोहम्मद दाऊद अफगानिस्तान के प्रधानमंत्री बने। उनका झुकाव सोवियत संघ की ओर था। उन्होंने सोवियत संघ से न केवल आर्थिक सहायता ली अपितु सैन्य सहायता भी हासिल की। 1973 में मोहम्मद दाऊद ने राजशाही का अंत कर सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथ में ले ली और फिर अफगानिस्तान को एक गणराज्य घोषित कर दिया। दाऊद के शासन के खिलाफ वामपंथी गुट ने संगठित होकर वामपंथी पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी का गठन किया। इस पार्टी ने 1978 में न केवल जनरल दाऊद का तख्ता पलट दिया वरन् अप्रैल 1978 में एक सैन्य विद्रोह द्वारा दाऊद की हत्या कर दी। इसके बाद साम्यवादी नेता नूर मोहम्मद तरानी अफगानिस्तान के राष्ट्रपति बनें। तरानी के शासनकाल में अफगानिस्तान में सोवियत संघ का हस्तक्षेप पहले की अपेक्षा और अधिक बढ़ गया। और दिसम्बर 1978 में रूस अफगानिस्तान के मध्य एक महत्वपूर्ण संधि हुई। इस संधि की खास बात यह थी कि यदि कोई देश अफगानिस्तान पर हमला करेगा तो सोवियत संघ अफगानिस्तान की हर सम्भव मदद करेगा। ऐसे हालातों में अफगानिस्तान के इस्लामी कट्टरपंथियों को मौका मिल गया और उन्होंने प्रचार किया कि उनका मुल्क सोवियत शिकंजे में जा रहा है। ऐसे लोगों ने इस्लाम के नाम पर हथियार उठा लिये व सशस्त्र संघर्ष शुरु कर दिया। 1979 में राष्ट्रपति तरान व वाम पंथी नेता हफीजुल्ला अमीन के मध्य जबरदस्त खूनी संघर्ष हुआ जिसमें अमीन जीत गया व तराकी की हत्या कर दी गयी। अमीन ने कोशिश की कि वह परिस्थितियों पर अंकुश लगा सके किन्तु वह असफल रहा। अन्ततः दिसम्बर 1979 में अफगान-सोवियत मैत्री संधि का हवाला देते हुए सोवियत संघ ने अफगानिस्तान में सैन्य हस्तक्षेप किया। [3]

अमीन को मौत की सजा देने के बाद सोवियत संघ के इशारे पर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (PDP) के परचम तले बबरक करमाल को अफगानिस्तान की सत्ता सौंपी गयी। लेकिन स्थिति तब भी संभल नहीं पायी क्योंकि अब अफगानिस्तान के मुजाहिद्दीन गुटों का संघर्ष अब सीधे-सीधे सोवियत संघ की सेनाओं के साथ शुरु हो गया दूसरी तरफ सोवियत संघ का सैन्य हस्तक्षेप अमेरिका को नहीं सुहाया। अमेरिका अफगानिस्तान के मुजाहिद्दिनों को पाकिस्तान के माध्यम से आर्थिक, व सामरिक सहायता देने लगा। जिस ओसामा बिन लादेन से अमेरिका भयाक्रांत था उसे अमेरिका की खुफिया एजेंसी (CIA) द्वारा प्रशिक्षण देकर अफगानिस्तान में सोवियत फौजों से लड़ने हेतु भेजा गया था। अफगानिस्तान में लादेन ने ''मक्तब-अल-खिदमत'' नामक संगठन की नींव रखी जहाँ वह दुनिया भर के जेहादियों को भर्ती करता था। पाकिस्तान को अमेरिका ने एक आधार शिविर के रुप में इस्तेमाल किया। 1986 में बबरक करमान को हटाकर सोवियत संघ समर्थक नजीबुल्लाह को अफगानिस्तान का शासक बनाया गया। सोवियत संघ पर अपनी सेनाओं को अफगानिस्तान से वापस बुलाने का विश्वव्यापी दबाव पड़ रहा था तो दूसरी तरफ सोवियत संघ का वहां काफी नुकसान भी हो चुका था। अन्ततः 1988 में अफगानिस्तान, सोवियत संघ, अमेरिका व पाकिस्तान के मध्य एक शांति समझौता हुआ तथा 1989 के अंत तक सोवियत सेनाएं वापस बुला ली गयी। 1993 तक आते-आते मुजाहिद्दीन अमेरिका से मिलने वाली सहायता से काफी ताकतवर हो गये और उन्होंने ताजिकों के साथ मिलकर नजीबुल्लाह को हटाकर बुरहानुदीन रब्बानी को अफगानिस्तान का राष्ट्रपति बना दिया। इसके साथ ही अफगानिस्तान में आपसी जातीय संघर्ष शुरु हो गया और 1994 में पख्तून प्रभुत्व वाले तालिबानी रब्बानी सरकार के खिलाफ लामबंद हो गये। 1996 में तालिबानियों ने काबुल पर कब्जा कर लिया व इस्लाम के नाम पर कड़े कानून लागू कर दिये जैसे महिलाओं की तालीम व संगीत पर पाबंदी, पुरुषों को दाढ़ी रखना अनिवार्य व पत्थर मारकर मृत्युदण्ड देना जैसे नियम। 1997 में तालिबानियों को पाकिस्तान व सऊदी अरब जैसे मुल्कों ने मान्यता दे दी जबकि विश्व के अधिकांश देश रब्बानी के शासन को ही वैध मानते रहे। पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई तालिबानियों को सबसे मददगार संस्था रही।

अगस्त 1996 में तालिबान हकूमत ने मजार-ए-शरीफ व बामियान पर कब्जा कर लिया। बामियान इरानी समर्थक सेना के कब्जे में था। इतना ही नहीं वरन बामियान व मजारे शरीफ के आस-पास रहने वाले शिया आबादी का भी भयावह नरसंहार किया गया। अक्टूबर 1999 में परेशान इरान ने तालिबानियों पर जबरदस्त हमला किया जिससे उनके संगठन को काफी नुकसान पहुँचा। अक्टूबर 1999 को यूएन सुरक्षा परिषद ने निर्णय लिया कि यदि 30 दिनों के भीतर ओसामा बिन लादेन को तालिबानी सरकार ने नहीं सौंपा तो उनके खिलाफ प्रतिबंध लगा दिए जायेंगे। तालिबान ने न केवल ओसामा को लौटाने से इन्कार कर दिया वरन् नवम्बर 1999 में इस्लामाबाद में स्थित अमेरिकी दूतावास व यूएन

कार्यालय पर राकेटों से जबरदस्त हमला किया। यूएन द्वारा आर्थिक प्रतिबंध लगा दिये गये किन्तु अफगानिस्तान में पोपी जिससे अफीम व दूसरे मादक पदार्थ तैयार होते हैं की बिक्री पाकिस्तान, चीन, रुस व मध्य एशियाई देशों में हो रही है। तालिबानी सरकार खुले तौर पर इनका निर्यात कर खरबों रुपये की आमदनी कर रही है जिससे यूएन के आर्थिक प्रतिबंधों का उस पर कोई खास असर नहीं हुआ। [4]

फिर अमेरिकी इतिहास में आया 11 सितम्बर 2001 का दिन जब न्यूयार्क स्थित वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की दो गगनचुम्बी इमारतों को मलबे के ढेर में बदल दिया गया। लादेन के रूप में आतंकवाद का क्रूर चेहरा विश्व के सामने आ गया। और माना गया कि आतंकवाद मानवतावाद के विरूद्ध सदी की सबसे बड़ी चुनौती है। अमेरिका ने इसके खात्में के लिए आपरेशन ''इनफिनिट जस्टिस'' व आपरेशन ''एन्ड्यूरिंग फ्रीडम'' की शुरुआत की। अक्टूबर 2001 से तालिबान प्रशासन के विरुद्ध शुरु किये गये हवाई आक्रमणों को नवम्बर में जाकर सफलता मिली जब नार्दन अलायंस के सैनिक मजारे शरीफ, हेरात, काबुल को जीतते हुए कंधार पहुँच गये और लगभग सम्पूर्ण अफगानिस्तान पर उनका कब्जा हो गया और हामिद करजई को अफगानिस्तान का राष्ट्रपति बना दिया गया। कहने को तो हामिद करजाई की जनतांत्रिक सरकार अफगानिस्तान में सत्ता सम्भाले हैं लेकिन असली समस्या यह है कि पाकिस्तान की फौज व खुफिया एजेंसी आईएसआई तालिबान से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर पायेंगे या नहीं क्योंकि तालिबान पाकिस्तान की विदेशनीति का अघोषित हथियार है। तालिबान, अलकायदा व तश्कर-ए-तौयबा का गठजोड़ इतना मजबूत है कि इसे तोड़ पाना सम्भव नहीं है। 2 मई 2011 को पाकिस्तान के एबटाबाद में आपरेशन ''जैरीनिमो'' के तहत अमेरिकी कमाण्डो ने लादेन को खत्म कर दिया है। [5] लेकिन अफगानिस्तान में तालिबान की समस्या एक जटिल समस्या है जिसकी जटिलता के निम्न बिन्दु है -

प्रथम, तालिबान विचारधारा इस्तालिम कट्टरवाद पर आधारित है जिसे न केवल अफगानिस्तान के समाज का वरन् विश्व के अन्य कट्टरपंथी समाजों व देशों का समर्थन मिल रहा है।

द्वितीय, तालिबानी आतंकियों को पहले अमेरिका और अब पाक आतंकवादी संगठनों व सेना का पूर्ण समर्थन मिल पा रहा है।

तृतीय, अफगानिस्तान की जर्जर अर्थव्यवस्था तालिबान के लिए एक उर्वरक भूमि का काम कर रही है जिससे अभावों से त्रस्त युवा वर्ग सहज ही इसकी ओर आकर्षित हो रहा है।

चतुर्थ, अमेरिका की इस घोषणा से कि उसकी सेनाएं 2011 तक अफगानिस्तान से वापिस चली जायेंगी, इससे तालिबान लड़कों की इच्छा शक्ति को ओर अधिक बल मिला है।

यद्यपि अमेरिका द्वारा 2009 में जारी ''अफ-पाक नीति'' (Af-Pak Policy) व ''हार्ट ऑफ एशिया'' (Heart of Asia) पहल के द्वारा इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया जा रहा है। अमेरिका ने अपनी नई अफ-पाक नीति में पाकिस्तान को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की है जिससे कि अफगानिस्तान की प्रशासनिक व सैन्य क्षमता का विस्तार इतना किया जाए जिससे कि अमेरिकी सेनाओं की वापसी के बाद यह सुनिश्चित हो सके कि अफगानिस्तान पुन: आतंकवाद का गढ़ न बन सके। इसी प्रकार हार्ट ऑफ एशिया (2011) पहल के तहत अफगानिस्तान के पड़ोसी देशों को इस समस्या के समाधान हेतु एक मंच प्रदान किया गया है जिससे की आपसी विचार-विमर्श से इस समस्या का बेहतर हल निकाला जा सके। भारत, पाक, अमेरिका, रूस, चीन सहित लगभग 20 देश व संगठन इसके प्रतिवर्ष होने वाले सम्मेलनों में भाग लेते हैं। [6]

वादे के मुताबिक अफगानिस्तान से अमेरिकी सेनाओं की वापसी प्रारम्भ हो रही है तो दूसरी तरफ लादेन की मौत ने समझौते का माहौल भी बना दिया है। अफगान राष्ट्रपति हामिद करजई ने शांति प्रक्रिया में शामिल होने के लिए तालिबान को हथियार डालने का आह्वान किया है। पाकिस्तानी सेना व आईएसआई का कहा है कि तालिबान अलकायदा में कई ऐसे धड़े हैं जिनसे समझौता कर अफगानिस्तान में शांति स्थापित की जा सकती है। इसके लिए ''अच्छे व बुरे तालिबान'' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। इस नीति से पाकिस्तान के हित सधते हैं क्योंकि मजहबी आतंक देश की सीमाओं के दायरे में सीमित नहीं रहता। तालिबान अलकायदा खुद पाकिस्तान के अस्तित्व के लिए खतरा बन गया है। पाकिस्तान अब तालिबान से समझौता कर अपने यहाँ आतंकवाद समाप्त करना चाहता है। हामिद करजई इसका विरोध कर रहे हैं क्योंकि अलकायदा-तालिबान से समझौते का सीधा मतलब अफगानिस्तान में तालिबान की सत्ता का पुन: कायम होना। दूसरी तरफ ओबामा प्रशासन द्वारा पाकिस्तान को दी जाने वाली 80 करोड़ डालर की सैन्य मदद रोके जाने से नाराज पाकिस्तान ने अफगान सीमा से अपने सैनिकों को हटाने की धमकी दी और कहा कि वह इतने बड़े पैमाने पर सैनिकों की तैनाती का खर्च वहन नहीं कर सकता। अत: इस प्रकार वर्तमान

में अफगान संकट के समाधान हेतु अमेरिका-पाक-तालिबान के मध्य कोई उपयुक्त निष्कर्ष तक नहीं पहुँच पा रहा है। [7]

भारत की अफगान नीति

अफगानिस्तान समस्या के संदर्भ में वर्तमान समय में भारत की भूमिका अत्यन्त सीमित है। यह भूमिका केवल अफगानिस्तान के सामाजिक व आर्थिक पुनर्निर्माण तक ही सीमित होकर रह गयी है। अफगानिस्तान की सरकार इस भूमिका की समर्थक है परन्तु पाकिस्तान व तालिबान भारत विरोधी स्थिति में है। [8] अफगानिस्तान में भारतीय विदेश नीति के समक्ष तीन विकल्प है।

प्रथम - भारत अफगानिस्तान संकट से अपने आप को बिल्कुल अलग कर ले तथा वहाँ राजनीतिक स्थिरता स्थापित होने के बाद परिस्थितिनुसार अपनी विदेश नीति का संचालन करे।

द्वितीय - भारत वहाँ अपनी सक्रिय विदेश नीति का संचालन करते हुए तालिबान के विरूद्ध चल रहे सैन्य कार्यवाहियों में बढ़ चढ़ कर हिस्सा ले।

तृतीय - विकल्प है कि भारत अपनी वर्तमान सीमित भूमिका पर टिका रहे तथा समस्या के समाधान हेतु सभी गैर-सैन्य उपायों का अवलम्बन करे।

भारत द्वारा इनमें से कौन सा विकल्प अपनाया जाए यह इस पर निर्भर करता है कि अफगानिस्तान में भारत हितों का रुप कौन सा है? जयन्तु बन्दोपाध्याय ने लिखा है कि किसी भी देश के तीन प्रमुख राष्ट्रीय हित होते हैं - सुरक्षा, आर्थिक विकास, विश्व व्यवस्था। अगर इन तीनों हितों के परिप्रेक्ष्य में देखें तो हमारा पहला हित है भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा। यदि किन्हीं कारणों से अफगानिस्तान पुन: तालिबान के नियंत्रण में चला जाता है तो वहाँ एक तरफ तो पाकिस्तान का प्रभाव बढ़ेगा व दूसरी तरफ कश्मीर व अन्य भारतीय क्षेत्रों में आतंकवाद की समस्या उत्पन्न हो जाएगी। दूसरा हित भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में अफगानिस्तान की भूमिका को मध्य एशिया से जोड़कर देखा जाए तो तेजी से बढ़ रही अर्थव्यवस्था के लिए खनिज व तेल सम्पन्न मध्य एशिया व भारत के मध्य यह एक सेतु का काम कर सकता है। भारत TAPI (तुर्कमेनिस्तान अफगानिस्तान, पाकिस्तान व भारत) गैस पाईप लाइन के विकास में इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। उज्बेकिस्तान से अफगानिस्तान तक ऊर्जा लाने के लिए भारत हेरात प्रान्त में सलमा बांध पावर प्रोजेक्ट पर काम कर रहा है। अत: यह क्षेत्र आर्थिक विकास हेतु भारत को मध्य एशिया तक जोड़ता है। और तीसरा हित विश्व व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में यदि यह क्षेत्र अस्थिर व अराजक रहता है तो इसमें बड़ी शक्तियाँ की घुसपैठ बनी रहेगी जिससे एक क्षेत्रीय शक्ति बनने के भारत के सपने को पूरा होने में बाधा उत्पन्न होगी।

अत: विकल्पों व राष्ट्रीय हितों में सम्बन्ध स्थापित करते हुए पहले विकल्प के रूप में अफगानिस्तान की समस्या से स्वयं को अलग-थलग करना उचित नहीं है। अफगानिस्तान के भविष्य के सम्बन्ध में जो भी राजनीतिक समाधान हो उसमें भारत की प्रभावशाली भूमिका आवश्यक है। तभी भारत वहाँ अपने हितों की रक्षा कर सकता है। दूसरे विकल्प के रुप में भारत वहाँ सक्रिय रहते हुए सैन्य कार्यवाही का भी हिस्सा नहीं बन सकता क्योंकि प्रथम तो पाकिस्तान व अमेरिका दोनों ही अफगानिस्तान में भारत की सक्रिय उपस्थिति नहीं चाहते और इस समय भारत ने अपने आर्थिक पुनर्निर्माण कार्यक्रम के द्वारा अफगानिस्तान जनता का जो सद्भाव अर्जित किया है वह भारतीय सेनाओं की उपस्थिति से हताहत हो सकती है। क्योंकि इतिहास गवाह है कि श्रीलंका में भारतीय सेना का भेजा जाना भारत के हित में नहीं रहा। [9]

अत: अब बचा तीसरा विकल्प जो कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उचित है। अर्थात् सीमित व चौकस भूमिका का चयन जिससे कि अफगानिस्तान में हमारी उपस्थिति भी बनी रहे और समय रहते हम हमारी नीति में आवश्यक परिवर्तन भी कर सके। भारत को अफगानिस्तान में भावी राजनीतिक घटनाओं पर कड़ी नजर रखने की जरुरत है। तथा साथ ही अफगानिस्तान के विकास के लिए जो मदद भारत द्वारा की जा रही है उसे अनवरत जारी भी रखना होगा।

निष्कर्ष

दक्षिणी एशियाई देशों में अफगानिस्तान की स्थिति नाजुक है। भारत जैसे पड़ोसी देश भी इससे प्रभावित हो रहे हैं। भारत की चिन्ता यह है कि अफगानिस्तान में न केवल 50 हजार भारतीय मूल के लोग हैं वरन् वहाँ भारत की पूंजी भी लगी हुई है। चिन्ता का अन्य कारण यह है कि यदि वहाँ कट्टरवादी इस्लामी सरकार का पुन: गठन होता है तो यह भारतीय भौगोलिक सुरक्षा को खुली चुनौती होगी। आज अफगानिस्तान एक ऐसी गुत्थी बना हुआ है जिसके भावी स्वरूप की कोई तस्वीर दिखायी नहीं देती। अमेरिका अफगानिस्तान से हटना भी चाहता है और वहाँ स्थायित्व कायम करने वाली ऐसी सत्ता चाहता है जो अमेरिका विरोधी ना हो। पर अफगानिस्तान में पाकिस्तान के जो भी सहयोगी हैं वे इस्लाम उग्रवादी हैं अमेरिका के घनघोर विरोधी। ऐसे में किसी सत्ता के उदय की सम्भावना ही नहीं है जो अमेरिका विरोधी भी न हो और पाकिस्तान-परस्त भी हो। ऐसे में अमेरिका को भारत की

ISSN 2348-3857

भूमिका को स्वीकार करना होगा। अफगानिस्तान के राजनीतिक जीवन में जो भी थोड़ा बहुत उदार राजनीतिक शक्तियाँ हैं वे भारत समर्थक है। अगर अमेरिका एक ऐसा अफगानिस्तान चाहता है जो अमेरिका विरोधी न हो और अपने पैरों पर खड़ा हो सके तो आवश्यक है कि पाकिस्तान को अफगान समस्या के समाधान के केन्द्र से हटाकर उसमें उन उदारवादी ताकतों को शामिल किया जाए जो वाकई में एक स्थिर लोकतांत्रिक अफगानिस्तान की स्थापना करना चाहते हैं।[10]

सन्दर्भ सूची

1. अधिकारी, शेखर, आधुनिक स्त्रोतेजिक चिन्तन, एस.पी.जे. पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2003, पृ. 100-101
2. कौल, बी.एम., एशिया की विकासोन्मुख एकता, श्री सरस्वती सदन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 52
3. यंगरमैन, बैरी व वाहेब, शाइस्ता, ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ अफगानिस्तान, इन्फोबेस पब्लिशिंग न्यूयार्क, 2007, पृ. 212-238
4. जॉनसन, रॉब, द अफगान वे ऑफ वार : हॉऊ एण्ड व्हाय के फाईट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2011, पृ. 200-220
5. सिंह, पवन कुमार, दहशतगर्द अमेरिका, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000, पृ. 54-58
6. प्रो. धूलिया, सुभाष, इतिहास का सबसे जटिल युद्ध, राष्ट्रीय सहारा 18 जून 2011
7. भास्कर, सी. उदय, खतरे की जोरदार आहट, दैनिक जागरण, 3 जुलाई 2011
8. एडबर्ड, बी. डेविड, बिफोर तालिबान, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिर्फो निया प्रेस, लंदन 2002, पृ. 225-237
9. तलवार, कुलदीप, खुद से जुझता अफगानिस्तान, अमर उजाला, 19 दिसम्बर 2004
10. कौशिक, पी.डी., अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना, 2004, पृ. 584

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 69-73

अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद : लोकतांत्रिक मूल्यों एवं मानव सभ्यता के लिए बड़ी चुनौती

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

डॉ. धर्मराज शर्मा

शिक्षाविद् एवं राजनीतिक विश्लेषक
अलवर (राजस्थान)

शोध सारांश

आतंकवाद सम्प्रति किसी एक देश या क्षेत्र विशेष की समस्या नहीं है, आतंकवाद ने विश्वव्यापी रूप अख्तियार कर लिया है। सकारात्मक परिणाम लाने के लिए सभी देशों को साझी रणनीति के आधार पर कार्य करना चाहिए, क्योंकि आतंकवाद किसी एक देश की समस्या नहीं है, यह सम्पूर्ण मानव जाति के लिए खतरा है। विश्व समुदाय को एक ऐसी विश्व व्यवस्था का निर्माण करना चाहिए, जो सम रसतायुक्त एवं शोषणकारी नीति से मुक्त हो। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे प्रयत्न करने होंगे, जिससे भटके युवाओं का विश्वास सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में पुन: स्थापित हो सके। आज मानवीय मूल्यों को समाज में प्रतिष्ठापित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। विश्व की समस्त सरकारों एवं जनता के मध्य सुदृढ़ तंत्र की स्थापना की जानी चाहिए। विश्व शान्ति एवं समरसता युक्त विश्व के लिए पंडित जवाहरलाल नेहरू के पंचशील के सिद्धान्त तथा गांधीवादी विचारधारा के अनुरूप अन्तरराष्ट्रीय समुदाय को रणनीति बना कर आगे बढ़ना होगा।

संकेताक्षर : *एक्ट ऑफ टैररिज्म, उपनिवेशवाद, तकनीकी विकास, आर्थिक तंत्र*

आतंकवाद को किसी दार्शनिक सिद्धान्त की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। यह एक साधन है, जिसके मूल में किसी सामाजिक या राजनीतिक परिवर्तन की आकांक्षा विद्यमान रहती है। यह एक हिंसक नीति है, जिसमें हिंसा के माध्यम से आतंक फैलाया जाता है। आतंकवाद रूपी विकराल दैत्य ने अपनी बांहें सम्पूर्ण विश्व में फैला रखी हैं। विश्व का कोई भी कोना ऐसा नहीं है, जहां आतंकवाद ने अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं कराई है।

आतंकवाद की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती है, लेकिन विश्व में आतंकवाद का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। शाब्दिक दृष्टि से 'आतंकवाद' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ब्रूसेल्स में दण्ड विधान को समेकित करने हेतु सन् 1931 में बुलाए गए तृतीय सम्मेलन में किया गया था, जिसके अनुसार आतंकवाद से तात्पर्य जीवन, भौतिक अखण्डता अथवा मानव स्वास्थ्य को खतरे में डालने वाला था। व्यापक पैमाने पर सम्पत्ति को हानि पहुंचाने वाला कार्य करके जानबूझकर भय के वातावरण का निर्माण करना है।[1] शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'टैरर' शब्द लैटिन भाषा से उत्पन्न हुआ है तथा रोमन वर्ग की भाषाओं में भी प्रचलित है। इस शब्द से उत्पन्न 'टैररिज्म' और 'एक्ट ऑफ टैररिज्म' इस समय काफी चर्चा में है। कतिपय विद्वानों के द्वारा आतंकवाद को सामाजिक खतरा उत्पन्न करने में सक्षम के रूप में व्याख्यायित किया है। **प्रो. कारपेत्स** के अनुसार, ''आतंकवाद हत्या, हिंसा का प्रयोग, फिरौती या अन्य मांगों के लिए मनुष्यों को बंधक बनाने और स्वतंत्रता का बलात अपहरण करने के लिए विशेष संगठन या गुट बनाने की ओर लक्षित अथवा अन्तर्राष्ट्रीय रूप से अभिप्रेरित राष्ट्रीय घटना अथवा अन्य गतिविधि है। आतंकवाद का तात्पर्य इमारतों का विनाश और इस प्रकार के अन्य काम भी हो सकते हैं।'' **ब्रियां एम. जेन्किंस** के शब्दों में, ''हिंसा की धमकी, व्यक्तिगत हिंसात्मक कृत्य और लोगों को आतंकित करने के उद्देश्य से हिंसा का विचार आतंकवाद की श्रेणी में आता है।'' फेरिड डेविड के अनुसार, ''राजनीतिक, सामाजिक, दार्शनिक, विचारधारात्मक या धार्मिक उद्देश्यों के लिए किया गया कोई भी ऐसा सशस्त्र हिंसक कृत्य जो मानवतावादी कानून के आदेशों का उल्लंघन करता है, आतंकवाद है।'' **द इंटरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज** के अनुसार, ''हिंसा के व्यवस्थित प्रयोग द्वारा एक संगठित समूह या दल द्वारा अपने लक्ष्यों की प्राप्ति ही आतंकवाद है। ''

आतंकवाद का सरल शब्दों में अर्थ भय उत्पन्न करके अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना है। यह उद्देश्य राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं

व्यक्तिगत हो सकते हैं। इस प्रकार आतंकवाद कोई विचारधारा या सिद्धान्त नहीं बल्कि एक तरीका, एक प्रक्रिया या फिर एक उपकरण है, जिसका प्रयोग कोई भी राज्य, राजनीतिक संगठन, स्वतंत्रतावादी समूह, अलगाववादी संगठन, जातीय या धार्मिक उन्मादी अपने उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते हैं। पाल विल्किंसन के द्वारा आतंकवाद को तीन रूपों में विभाजित किया गया है, यथा-

1. आतंकवाद को व्यवस्थित शस्त्र के रूप में प्रयोग करने की नीति।
2. सामान्य से अधिक हिंसा की धमकी अथवा हिंसक कृत्य। और
3. तात्कालिक शिकार और व्यापक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जनमत पर इस हिंसा का प्रभाव।

आतंकवाद का विस्तार : आतंकवाद सम्प्रति किसी एक देश या क्षेत्र विशेष की समस्या नहीं है, आतंकवाद ने विश्वव्यापी रूप अख्तियार कर लिया है। भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश, अल्जीरिया, सऊदी अरब, मिश्र, लेबनान, इराक, सीरिया, ईरान, फिलीस्तीन तथा इजराइल सहित विभिन्न देशों में आतंकवाद अपने पैर फैला चुका है।

आतंकवाद की प्रकृति : नवउपनिवेशवाद, बेरोजगारी, तकनीकी विकास, संचार क्रांति, परिवहन के साधनों का विकास, मादक पदार्थों की तस्करी एवं आधुनिक शिक्षा जैसे अनेक तत्वों ने आतंकवाद के स्वरूप को प्रभावित किया है। इसके परिवर्तित स्वरूप की विशेषताएं अधोलिखित हैं :-

- आतंकवाद ने विकासशील देशों के साथ-साथ विकसित देशों को भी प्रभावित किया है।
- वैश्विक आतंकवाद के फलस्वरूप देशों की विदेश नीतियां भी प्रभावित होने लगी हैं।
- सम्प्रति आतंकवाद क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय प्रकृति से ऊपर उठ चुका है तथा इसने वैश्विक रूप अख्तियार कर लिया है।
- आतंककारियों के द्वारा विश्व के प्रतिष्ठित केन्द्रों पर हमले किए जा रहे हैं, जैसे- राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक महत्व के केन्द्र। भारत की संसद, अक्षरधाम मंदिर, मुम्बई के ताज होटल, जम्मू-कश्मीर की विधानसभा, पेंटागन एवं वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर पर हमले इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
- आतंककारियों के प्रमुख हथियार मानव बम, फिदायीन हमले एवं आत्मघाती दस्ते बन गए हैं।
- विदेशी शक्तियों के द्वारा आतंकवादी संगठनों को धन-सम्पत्ति, अत्याधुनिक हथियार, आतंकवादी प्रशिक्षण शिविर उपलब्ध कराए जा रहे हैं। सीमा पार से आतंकवाद का नया स्वरूप दृष्टिगोचर हुआ है।
- आतंकवाद ने इस समय 'साइबर आतंकवाद' का रूप ग्रहण कर लिया है। आतंककारी संगठनों ने कम्प्यूटर-इंटरनेट के माध्यम से विभिन्न देशों में अपने सुदृढ़ संजाल स्थापित कर लिए हैं। [2]

यह तथ्य सर्वविदित है कि अमरीका जैसा विश्व का शक्तिशाली देश भी आतंकवाद का दंश झेल चुका है। द्वितीय विश्व युद्ध के आस-पास सन् 1940 से जापान, वियतनाम, फिलीस्तीन, कम्बोडिया, अफगाानिस्तान, इराक और सीरिया जैसे विश्व के सवा सौ देशों में आतंकवाद निरन्तर अपना प्रभाव बनाए हुए है। भारत में भी आतंकवाद के सभी रास्ते पाकिस्तान और बांग्लादेश से ही आते हैं। [3]

भारत में बढ़ती आतंकवादी घटनाएं

सन् 1947 से लेकर आज तक भारत आतंकवादी गतिविधियों से प्रभावित रहा है। आतंकवाद के कारण हजारों लोग असमय ही काल के ग्रास बन चुके हैं। भारत के विभिन्न राज्य आतंकवाद से प्रभावित हैं। जम्मू-कश्मीर प्रमुख रूप से आतंकवाद से प्रभावित राज्य है, जहां पाक प्रायोजित आतंकवादी गतिविधियां संचालित की जा रही हैं। आतंककारियों के द्वारा पाकिस्तान में प्रशिक्षण केन्द्रों का संचालन किया जा रहा है, जहां लश्कर-ए-तैयबा, जैश-ए-मोहम्मद और अन्य संगठन अपनी गतिविधियों में संलिप्त हैं। पाकिस्तान सरकार के द्वारा इन संगठनों पर कोई कार्रवाई नहीं की जा रही है। इन संगठनों के विरुद्ध कार्रवाई करना पाकिस्तान के हित में ही है। पाकिस्तान को उस वादे को पूर्ण करना चाहिए, जिसमें उसने अपनी धरती का प्रयोग भारत विरोधी तत्वों के लिए प्रयोग नहीं होने देने की बात कही थी। [4]

भारत की स्वतंत्रता के बाद से ही कश्मीर मुद्दा भारत-पाक तनाव का प्रमुख कारण रहा है। अविभाजित भारत में 562 रियासतें थी, जम्मू-कश्मीर रियासत भी इनमें सम्मिलित थी। 17 जून 1947 को तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के द्वारा पारित 'भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम' के अन्तर्गत भारत में ब्रिटिश शासन 15 अगस्त 1947 को समाप्त होना था तथा भारत का विभाजन दो देशों भारत और पाकिस्तान में किया जाना था। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के तहत रियासतों के राजाओं को यह अधिकार दिया गया कि वे भारत या पाकिस्तान में स्वेच्छा से मिलने के लिए पूर्ण

एवं निर्णायक रूप से स्वतंत्र थे। तत्कालीन ब्रिटिश वायसराय लार्ड माउण्टबेटन ने यह प्रस्ताव रखा था कि यदि किसी रियासत की जनता अपने राजा के निर्णय से सहमत नहीं है तो, उस स्थिति में वहां जनमत संग्रह कराया जाए। पाकिस्तान के द्वारा भी जम्मू-कश्मीर में समय-समय पर जनमत संग्रह की मांग की जाती रही है। पाकिस्तान के द्वारा प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर कश्मीर में जनमत संग्रह का प्रश्न उठाया गया है। 5

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम में यह प्रावधान भी रखा गया था कि यदि किसी रियासत का राजा भारत और पाकिस्तान में अपनी रियासत का विलय न करना चाहे तो, वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रख सकता है। जम्मू-कश्मीर के शासक महाराजा हरिसिंह किसी भी देश में नहीं मिलना चाहते थे। पाकिस्तान के द्वारा 'जैसे थे' की संधि पर सहमति व्यक्त की गई तथा 12 अगस्त 1947 को इस पर हस्ताक्षर कर दिए। आजादी के कुछ समय पश्चात ही पाकिस्तान ने 'जैसे थे' की संधि का उल्लंघन करना शुरु कर दिया। महाराजा हरिसिंह पर पाकिस्तान के द्वारा यह दबाव डाला गया कि वह जम्मू-कश्मीर रियासत का पाकिस्तान में पूर्ण विलय कर दे। पाकिस्तान का यह मानना था कि मुस्लिम बहुल रियासत होने के कारण जम्मू-कश्मीर को पाकिस्तान में पूर्ण रूप से विलय हो जाना चाहिए। पाकिस्तान की इस नीति से महाराजा हरिसिंह सहमति नहीं रखते थे।

पाकिस्तान के द्वारा जम्मू-कश्मीर को हड़पने की नीति से सेना की सहायता द्वारा ऑपरेशन गुलमर्ग नाम से एक योजना का निर्माण किया। पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री लियाकत अली खान ने पाकिस्तान सेना के मेजर जनरल अकबर खान को यह निर्देश दिया कि वह उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के कबाइलियों के साथ मिलकर जम्मू-कश्मीर रियासत पर अपना नियंत्रण स्थापित कर ले। कबाइलियों के द्वारा किए जाने वाले आक्रमण की कमान सेना के अवकाश प्राप्त मेजर खुर्शीद अनवर को सौंपी गई। पाकिस्तानी सेना के द्वारा कबाइलियों को लगभग 4 हजार राइफलों से सुसज्जित करके प्रशिक्षण प्रदान किया गया। ऑपरेशन गुलमर्ग के अन्तर्गत कबाइलियों ने कश्मीर की उत्तर-पश्चिमी सीमा में अपनी घुसपैठ शुरु कर दी। पाकिस्तानी सेना की सहायता से कबाइलियों ने 20 अक्टूबर 1947 को कश्मीर रियासत में प्रवेश किया तथा 25 अक्टूबर तक मुज्जफराबाद एवं बारामुला को अपने आधिपत्य में ले लिया। जब कबाइलियों के द्वारा जम्मू-कश्मीर के एक तिहाई भाग पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया गया, तब महाराजा हरिसिंह के द्वारा रियासत को पूर्ण रूप से भारत में मिलाने का निर्णय लिया गया। कश्मीरी नेता शेख अब्दुल्ला का भी यही दृष्टिकोण था कि इस रियासत का भारत में विलय कर दिया जाना चाहिए। महाराजा हरिसिंह के द्वारा पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर किए गए तथा जम्मू-कश्मीर रियासत का भारत में पूर्ण विलय कर दिया गया। तत्पश्चात नेहरू जी के द्वारा 27 अक्टूबर 1947 को जम्मू-कश्मीर में सेना को भेजा गया। भारतीय सेना के द्वारा कबाइलियों को वहां से खदेड़ दिया गया तथा इस क्षेत्र को मुक्त करा लिया गया। कबाइली तो वहां से भाग गए, लेकिन जम्मू-कश्मीर के एक तिहाई भाग पर पाकिस्तान के द्वारा अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया, जिसे पाकिस्तान इस समय आजाद कश्मीर की संज्ञा देता है।

कश्मीर इस समय भारत और पाकिस्तान के मध्य एक ज्वलनशील मुद्दा बन गया है। दोनों देश नाभिकीय शक्ति से सम्पन्न हैं तथा कश्मीर में पाक प्रायोजित आतंकवाद के कारण स्थिति और भी अधिक भयावह हो जाती है। 13 दिसम्बर 2001 को आतंककारियों के द्वारा भारतीय संसद पर हमला किया गया, जिसके कारण दोनों देशों के मध्य उग्र तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। आतंककारी संगठनों के द्वारा भारतीय शान्ति व्यवस्था, आर्थिक तंत्र एवं पर्यटन उद्योग को तबाह करने की मानसिकता रखी जाती है। मुम्बई में 26 नवम्बर 2008 को आतंककारियों के द्वारा ताज होटल पर बड़ा हमला किया गया, जिसमें भारतीय सुरक्षा बलों को चार दिन तक आतंक से जूझना पड़ा। इस आतंकवादी हमले में लगभग 180 लोग मारे गए। भारतीय विदेश मंत्री एस.एम. कृष्णा ने न्यूयॉर्क में पाक विदेशमंत्री महमूद कुरैशी से स्पष्ट शब्दों में कहा कि अब हम मुम्बई जैसे हमलों को पुन: नहीं सहेंगे और यदि हम पर हमला किया गया तो, उसका मुंह तोड़ जवाब दिया जाएगा। उनके द्वारा विश्व समुदाय एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष भी भारत का पक्ष सुदृढ़ता के साथ रखा। भारत के तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री श्री प्रणव मुखर्जी ने लोकसभा के अन्दर एवं बाहर पाकिस्तान को यह स्पष्ट संदेश दिया कि उसे उन आतंककारियों के विरुद्ध कार्रवाई करनी ही होगी, जिन्हें पाकिस्तान की जमीन पर प्रशिक्षण दिया जाता है। न्यूयॉर्क में वालस्ट्रीट जनरल को दिए एक साक्षात्कार में तत्कालीन विदेश मंत्री एसएम कृष्णा ने कहा कि पाक खुफिया एजेंसी आईएसआई तथा तालिबान के मध्य गहरा सम्बन्ध है, जिसे पाकिस्तानी सरकार तोड़ने में असफल सिद्ध हुई है। पाकिस्तान अपने अभियान को लगातार चलाने हेतु 40 से 45 मुस्लिम देशों से चंदा ले रहा है। [6] अमरीकी विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन ने इस्लामाबाद की यात्रा करते समय स्पष्ट रूप से कहा कि पाकिस्तान को खतरा भारत से नहीं बल्कि स्वयं द्वारा उत्पन्न किए गए आतंकवाद से है।

अफगानिस्तान से परास्त होने के पश्चात तालिबान को पाकिस्तान में शरण स्थली उपलब्ध हुई। उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्त की पहाड़ियां, जंगल और संघ शासित कबाइली क्षेत्र (फाटा) अफगानिस्तान की सीमा से सटे उत्तर और दक्षिणी वजीरिस्तान में तालिबानियों के द्वारा अपने अड्डे स्थापित किए गए। सैन्य अभियान के दृष्टिकोण से यह स्थान विश्व के उन कुछ क्षेत्रों में सम्मिलित है, जो सेना के लिए दुरूह और दुष्कर माने जाते हैं। ओसामा बिन लादेन इस स्थान से भली-भांति परिचित था, अत: अपने लड़ाकों के लिए उसने इस सुरक्षित स्थान का चयन किया तथा पाकिस्तान के सहयोग से अपनी स्थिति को काफी सुदृढ़ किया अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा के कुशल निर्देशन में अमरीकी सेना के द्वारा 2 मई 2011 को अलकायदा के संस्थापक और आतंक के पर्याय बने ओसामा बिन लादेन का खात्मा कर दिया गया। पाकिस्तान के द्वारा भारत में आतंकवाद को बढ़ावा देने की नीति प्रारम्भ से ही रही है तथा इस नीति को अमलीजामा पहनाने के लिए उसके द्वारा घुसपैठ को भी समर्थन दिया जाता रहा है। फरवरी 2018 में भारत सरकार के गृह मंत्रालय के द्वारा जारी किए गए आंकड़ों के अनुसार सन् 2011 के बाद जम्मू-कश्मीर में घुसपैठ की सर्वाधिक घटनाएं सन् 2017 में हुई। सन् 2011 में 247, 2012 में 264, 2013 में 277, 2014 में 222, 2015 में 121, 2016 में 371 और सन् 2017 में 406 घुसपैठ की घटनाएं हुई। इसके अतिरिक्त पंजाब में सन् 2015 से लेकर सन् 2017 तक 18, अरुणाचल प्रदेश में सन् 2015 में 41, 2016 में 35, सन् 2017 में 52 नगालैण्ड राज्य में सन् 2015 से लेकर 2017 तक 80 से अधिक, पश्चिम बंगाल में सन् 2015 से सन् 2017 तक 6 घुसपैठ की घटनाएं हुई। सरकार के पास न कोई नीति है और न कोई रणनीति है, इसी का परिणाम है, घुसपैठ की घटनाएं। मेजर जनरल **अशोक मेहता** के शब्दों में, ''तमाचे का जवाब देने के बजाय पहले तमाचा मारना पड़ेगा। हमें खुफिया ताकत को सुदृढ़ करना पड़ेगा। घुसपैठ को रोकने से पूर्व घुसपैठ करने वाले पर धावा बोलना पड़ेगा। जब तक आप पहले पहल नहीं करेंगे, तब तक यह संख्या बढ़ती ही रहेगी। ''

आतंकवाद से पीड़ित सीरिया : प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की पहचान रखने वाले देश सीरिया की तस्वीर परिवर्तित हो चुकी है। सन् 2011 से अरब क्रांति के पश्चात राष्ट्रपति बसर अल अशद की सरकार और इस्लामिक स्टेट के मध्य हुए संघर्ष के फलस्वरूप देश के बच्चों का भविष्य बर्बाद हो गया तथा सड़कों पर बच्चे रोते-बिलखते घूम रहे हैं। जिन बच्चों का भविष्य शिक्षा के माध्यम से संवारा जाना चाहिए था, उनका जीवन बम, बारूद और बंदूक द्वारा तबाह कर दिया। सीरिया के पूर्वी घोटा क्षेत्र में विद्रोहियों के अधिकार वाले क्षेत्र में बमबारी के फलस्वरूप पांच सौ से अधिक लोग काल के ग्रास बन चुके हैं। सीरियन ऑब्जर्वेटरी फॉर ह्यूमन राइट्स के अनुसार मारे गए लोगों में 120 से अधिक बच्चे शामिल हैं।[7] एक प्रतिवेदन के अनुसार सन् 2011 से 2017 तक चार लाख से अधिक लोग गृह युद्ध में मारे जा चुके हैं तथा साठ लाख लोग सीरिया, इराक, जॉर्डन और लेबनान से पलायन कर चुके हैं। यूनीसेफ के अनुसार फरवरी 2018 तक 1,33,000 बच्चे घोटा में विद्रोहियों के कब्जे में थे। सीरिया के लोगों ने इस्लामिक स्टेट के कारण यूरोप की तरफ पलायन किया तथा समुद्र पार करते समय फरवरी 2018 तक नौ हजार लोगों ने अपनी जान गंवाई।

यूरोपीय सांख्यिकी कार्यालय के अनुसार सबसे अधिक शरणार्थी सीरिया से आए, सीरिया के लगभग सवा लाख लोगों ने शरण प्राप्त करने के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत किया। सर्बिया से पृथक होकर देश बने कोसोवो से 66 हजार लोगों ने तथा अफगानिस्तान से 70 हजार लोगों ने यूरोप में शरण के लिए आवेदन किया। फरवरी 2018 तक यूरोप में शरण के लिए आवेदन करने वाले लोगों की संख्या देशों के अनुसार इस प्रकार रही :- इराक- 35,000, इरीट्रिया- 27,000, सर्बिया- 22,000, पाकिस्तान- 20,000, सोमालिया- 13,000 और यूक्रेन से 13,000 आवेदन। सितम्बर 2015 में सीरियाई बच्चे अयलान कुर्दी की इटली के पास नाव डूबने से मौत हो गई थी। समुद्र किनारे पड़े बच्चे के शव की तस्वीर सामने आने के पश्चात पूरा विश्व हिल गया था।

आतंकवाद के प्रमुख कारण

- कानून एवं न्याय प्रणाली में व्याप्त कमजोरियां,
- विभिन्न राज्य सरकारों एवं सुरक्षा एजेंसियों के मध्य समन्वय का अभाव,
- अवैध शस्त्रों का निर्माण एवं रखरखाव,
- युवा वर्ग एवं शिक्षित वर्ग का आतंकवाद के प्रति बढ़ता आकर्षण,
- विभिन्न देशों में बढ़ती सामाजिक एवं आर्थिक असमानता,
- राज्य सरकारों का योग्य एवं शिक्षित युवाओं को समान अवसर उपलब्ध कराने में असफल रहना,
- आतंकवादियों का विश्वव्यापी सुदृढ़ संजाल,
- आतंकवादियों को विदेशी शक्तियों से राजनीतिक एवं आर्थिक सहयोग प्राप्त होना,
- राज्य सरकारों के नरम रुख के फलस्वरूप आतंककारियों में भय का अभाव,

- राष्ट्रों के मध्य परस्पर सहयोग एवं समन्वय का अभाव, और
- अन्तरर्राष्ट्रीय स्तर पर राज्य सरकारों के पास दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव।

आतंकवाद ने इस समय सम्पूर्ण मानव जाति को आतंकित कर रखा है तथा विश्व का कोई भी कोना सुरक्षित दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर ऐसे सक्षम तंत्र की स्थापना नहीं की जा सकी है, जिससे आतंकवाद की समस्या को जड़ सहित खत्म किया जा सके। राजनीतिशास्त्रियों एवं बुद्धिजीवियों को इस पर विचार करना चाहिए कि आतंकवादरूपी भस्मासुर को नेस्तनाबूद किस प्रकार किया जा सकता है। आतंकवाद की समस्या को समाप्त किए बिना विश्व शान्ति दिवास्वप्न ही बनी रहेगी। आतंकवाद का जब तक समूल नाश नहीं होगा, तब तक मानव सभ्यता के लिए अमन-चैन और शान्ति की स्थापना नहीं की जा सकेगी। **प्रोफेसर बीएम शर्मा** के शब्दों में, ''**सकारात्मक सोच एवं दृढ़ इच्छा शक्ति के माध्यम से प्रत्येक समस्या का समाधान निकाला जा सकता है।**''[8] आतंकवाद को जड़ से उखाड़ने के लिए विश्व समुदाय को एक मंच पर आना होगा तथा एक साझी रणनीति के साथ कार्य करना होगा।[9] भारत के साथ-साथ विश्व समुदाय को आतंकवाद के विरुद्ध दृढ़ संकल्पित होकर आगे बढ़ना होगा। सकारात्मक परिणाम लाने के लिए सभी देशों को साझी रणनीति के आधार पर कार्य करना चाहिए, क्योंकि आतंकवाद किसी एक देश की समस्या नहीं है, यह सम्पूर्ण मानव जाति के लिए खतरा है। एक ऐसी विश्व व्यवस्था का निर्माण करना चाहिए, जो समरसतायुक्त एवं शोषणकारी नीति से मुक्त हो। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर ऐसे प्रयत्न करने होंगे, जिससे भटके युवाओं का विश्वास सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में पुन: स्थापित हो सके। आज मानवीय मूल्यों को समाज में प्रतिष्ठापित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। विश्व की समस्त सरकारों एवं जनता के मध्य सुदृढ़ तंत्र की स्थापना की जानी चाहिए। विश्व शान्ति एवं समरसता युक्त विश्व के लिए पंडित जवाहरलाल नेहरू के पंचशील के सिद्धान्त तथा गांधीवादी विचारधारा के अनुसार अन्तरराष्ट्रीय समुदाय को रणनीति बना कर कार्य करना होगा।

संदर्भ सूची

1. त्रिवेदी आर. जैन व राय एम.पी., भारतीय शासन एवं राजनीति, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, सन् 2006, पृ. 559
2. सिंह, जोगेन्द्र, 'आतंकवाद का बदलता रूप', राजस्थान पत्रिका, जयपुर, 13 सितम्बर 2003, पृ. 8
3. वेदव्यास, 'पहले अपने आप को मजबूत कीजिए', दैनिक नवज्योति, जयपुर, 4 दिसम्बर 2008, पृ. 6
4. शर्मा, आनन्द, विदेश राज्य मंत्री, भारत सरकार, पंजाब केसरी, नई दिल्ली, 16 दिसम्बर 2008, पृ. 12
5. दीक्षित, जे.एन., भारत पाक सम्बन्ध, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, सन् 2003, पृ. 118-121
6. अहमद, शकील, केन्द्रीय गृह राज्य मंत्री, भारत सरकार, 'पटना में आतंकवाद विषय पर आयोजित सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए', दैनिक भास्कर, जयपुर, 26 जनवरी 2009, पृ. 4
7. 'बम बारूदों से उजड़ी मासुमों की दुनिया', राजस्थान पत्रिका, जयपुर, 8 मार्च 2018, पृ. 15
8. शर्मा, बी.एम., राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 'समाज विज्ञान संकाय द्वारा आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार को संबोधित करते हुए', 21 मार्च 2009
9. शर्मा, डॉ. धर्मराज, संपादकीय ''आतंकवाद सम्पूर्ण मानव सभ्यता के लिए खतरा'', उपकार जगत, अलवर, 6 जनवरी 2016

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 74-78

ऋग्वैदिक राजतन्त्र - उसकी प्रकृति एवं सीमाएँ

डॉ. कैलाश चन्द शर्मा

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग

शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह, राजकीय महाविद्यालय, सवाईमाधोपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

जब आर्य लोग इतिहास के रंग मंच पर प्रकट हुए, तो वे राजनीतिक दृष्टि से संगठित हो चुके थे। वे जनों में विभक्त थे। जन के सभी व्यक्ति प्राय: ''सजात'' व ''सनाभ'' समझे जाते थे। अपने जन को ''स्व'' कहते थे और अन्य जनों के व्यक्तियों को अन्यनाभि। हो सकता है आर्यों के अत्यंत प्राचीन जन ''अनवस्थित'' दशा में हों, क्योंकि जब भी किसी प्रदेश पर स्थाई रूप से बसे नहीं होते थे, परन्तु जब वे कहीं स्थाई रूप से बस गए व उनमें उस भूमि के प्रति प्रेम उत्पन्न होने लगा तो उस भू-भाग को वे ''जनपद'' कहने लगे। वैदिक संहिताओं से आर्यों के अनेक प्राचीन जनपदों या राज्यों की सत्ता का पता चलता है, जिनमें भरत, त्रिस्सु, पुरू, श्रृंजय, शिव, गांधार प्रमुख थे। इनके शासन का स्वरूप क्या था? इस विषय पर वैदिक साहित्य से हमें कुछ जानकारी प्राप्त होती है। वैदिक काल में समाज का संगठन पितृमूलक, कुटुंबमूलक था। कई कुटुम्बों से या कुलों को मिलाकर विश और कई विशों को मिलाकर ''जन'' का संगठन होता था। कुलपतियों में से ही नेतृत्व और पराक्रम के गुणों से युक्त व्यक्ति विशपति का पद प्राप्त करते थे। विशपतियों में से ही गुणों में सर्वश्रेष्ठ जनपति के उच्च पद पर आसीन होता था। इस प्रकार राजा की उत्पत्ति समाज की पितृ प्रधान कुटुंब-पद्धति से ही हुई।

संकेताक्षर : *जनपद, पितृ प्रधान कुटुम्ब-पद्धति, ऋग्वैदिक राजतन्त्र*

वैदिक युग के जन के प्रमुख के लिए हमें ''राजन्'' शब्द का प्रयोग मिलता है। ''राजन्'' का प्राय: वरण किया जाता था। ऋग्वेद में एक स्थल पर विशों द्वारा राजा के निर्वाचन का उल्लेख मिलता है।[1] अथर्ववेद में भी एक स्थल पर विशों द्वारा राजा के वरण की कामना की गई है।

त्वां विशो वृपणं राज्याय प्रदिश: पंचदेवी।

वर्ष्मन् राष्ट्रत: ककुदि श्रेयरेव ततो न उग्रा विभजा वसूनि।।[2]

पर संभवत: समस्त जनता प्रत्यक्ष रुप से राजा के निर्वाचन में भाग नहीं लेती थी। अत: अधिक संभव है समिति के सदस्य ही राजा का वरण करते थे और साधारण जनता प्राचीन रोम की ''क्यूरिया'' की तरह उनके निर्णय पर केवल सहमति देती थी।

राजा के वरण या निर्वाचन के संबंध में अथर्ववेद के निम्नलिखित मंत्र बड़े महत्व के हैं :- ''सहर्ष हम तुम्हारा अपने अंदर आवाहन करते हैं। तुम हमारे बीच में अविचल रूप से व ध्रुव होकर स्थित रहो। सब राजा तुम्हें चाहें, तुमसे राष्ट्र का अधिकार कभी छीनना न पड़े। यहीं रह कर तुम उत्कर्ष करो, कभी तुम्हारा पतन न हो, कभी तुम विचलित न हों, इंद्र के समान तुम ध्रुव होकर रहो और इस राष्ट्र को धारण करो। ये पर्वत सुदृढ़ रूप से स्थित रहे, यह पृथ्वी भी स्थिर है, यह सारा जगत ध्रुव रूप से स्थित है, यह द्युलोक भी भली-भांति स्थिर है, इसी प्रकार प्रजाओं का यह राजा भी ध्रुव रूप से स्थित रहे। राजा वरुण देव, बृहस्पति, इंद्र और अग्नि इस राजा को ध्रुव रूप से राष्ट्र को धारण करने की शक्ति दे। ''

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्रामधि भ्रषत्।

इहैव वैग्धिमापच्योष्ठा: पर्वत: इवाविवाचलि:।।

इन्द्रे चैव ध्रुवस्तिष्ठेत् राष्ट्रमुधारय।

ध्रुवा धौर्ध्रुवा पृथिवि ध्रुवं विश्वमिदं जगत्।

ध्रुवास: पर्वता: इमे ध्रुवो राजा विशामयम्।।[3]

अथर्ववेद के उपर्युक्त मंत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब प्रजा किसी राजा का वर्णन करती थी तो स्वाभाविक रूप से उसकी यह इच्छा होती थी कि जिस व्यक्ति को उसने गुणों के कारण राजा स्वीकार किया है, वह ध्रुव रूप से राष्ट्र का शासन करें, वह पृथ्वी,

पर्वत और द्युलोक आदि के समान अपने पद पर स्थिर रहे। वरुण, बृहस्पति, इंद्र आदि देवता उसे राजकीय पद पर स्थाई रूप से कार्य करने की शक्ति दें।

इस युग में जिस व्यक्ति का ''राजन्'' के रूप में वरण किया जाता था, उसे यह आशा की जाती थी कि वह ध्रुव रूप से राष्ट्र का शासन करेगा उसे किसी निश्चित अवधि के लिए राजपद नहीं सौंपा जाता था। इसलिए अथर्ववेद में कहा गया है कि ''हे राजन्, तू सुप्रसन्न रूप से राष्ट्र में दसवीं अवस्था तक शासन करता रहे। ''

''*दशमीमुग्र सुमता वशेह।* ''[4]

वैदिक काल में राजा का वरण किस तरह किया जाता था, इस संबंध में हमें कोई निर्देश ऋग्वेद में नहीं मिलते परन्तु अथर्ववेद में ''राजन्'' ''राजकृत'' का उल्लेख मिलता है और रथकार, कमरि, सूत तथा ग्रामणी को ''राजकृत'' कहा गया है। ग्रामणी, जनपद या राष्ट्र के अंतर्गत ग्रामों के मुखिया को कहा जाता होगा। इस युग में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का पृथक् वर्ग के रूप में विकास नहीं हुआ था। उस युग में धार्मिक विधि-विधान व कर्मकांड अत्यंत सरल थे और उनका अनुसरण कराने के लिए किसी पृथक् पुरोहित वर्ग की आवश्यकता नहीं थी। प्रत्येक जन का आर्य योद्धा होता था और शस्त्र धारण करता था परंतु फिर भी समाज में रथी या रथकार विशेष महत्व रखते थे। संभवत: रथी विविध प्रकार के शिल्पी (रथ निर्माता) रहे होंगे जिनकी समिति में अति महत्वपूर्ण स्थिति रही होगी।

राजा का देवत्व

राजा के वरण के बाद ऋग्वैदिक राज्य में राजा ही राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता था। वह समस्त जन के प्रतिनिधि के रूप में जो भी विजय प्राप्त करता था, उसका सम्पूर्ण श्रेय उसी को प्राप्त होता था। ऋग्वेद में कई स्थानों पर हमें ''राजन्'' शब्द मिलता है। यही शब्द हमको आर्यों के महान् देवताओं जिनमें इंद्र, वरुण, मित्र, अग्नि, बृहस्पति, सोम और यम के लिए प्रयुक्त मिलता है, परंतु इन शब्दों का हमें किसी भी राजा के साथ प्रयोग नहीं मिलता। हां इतना जरूर है कि देवताओं की तुलना राजा के समान की है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद में एक स्थान पर अग्नि को राजा के समान आज्ञा पालन करते हुए दिखलाया गया है। [5] एक स्थान पर अग्नि को शक्तिशाली राजा की तरह अनुयायियों सहित जाते हुए बतलाया गया है। एक अन्य स्थल पर सोम व इंद्र को राजा की तरह बैठने को कहा गया है।[6] ऋचाओं में मरूतों की तुलना अपराजेय राजाओं के साथ की गई है।[7] इन सभी उदाहरणों में देवताओं की तुलना राजा के साथ की गई है। राजा की तुलना देवता के साथ सिर्फ एक स्थान पर की गई है, जिसमें पुरूकुत्स को अर्धदेव के समान कहा गया है। अथर्ववेद में भी केवल एक बार वह भी उत्तरकालीन सूक्तों में राजा परीक्षित मर्त्यों में देवता कहे गए हैं।[8] इन स्थलों से यह सिद्ध नहीं होता कि उस युग में देवत्व की भावना व्याप्त थी। पुरूकुत्स को अर्ध-देव संभवत: इस कारण कहा गया है क्योंकि उनकी विधवा मां ने उन्हें इंद्र और वरुण के विशेष प्रसाद से प्राप्त किया था। जिस ऋचा में परीक्षित को मर्त्यों में देव की उपाधि दी गई है, वह संभवत: उनकी प्रशंसा करने के लिए ही रची गई थी। वैदिक वाङ्मय में किसी भी राजा को यह उपाधि नहीं दी गई। इससे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि राजा के देवत्व की कल्पना राजा द्वारा उपकृत दरबारियों तक सीमित थी। जब समिति राजा को पदच्युत कर सकती थी, तब राजा की मस्तिष्क देवत्व की कल्पना का सर्वमान्य होना आवश्यक था। अब रही बात देवताओं के राजाओं से तुलना की तो इसका कारण यह हो सकता है कि आर्य प्रत्येक देवता को राजा मानते थे, उसे उसी रूप में देखते थे, देवताओं में राजत्व के अन्य कई उदाहरण भी हमको मिलते हैं:- ऋग्वेद में वरुण को सुनहरे आवरण में बनाए वस्त्रों में दिखलाया गया है जो कि अपने जासूसों से घिरा हुआ है। एक अन्य स्थान पर वरुण के लिए ''साम्राज्य सुकृत'' शब्द का प्रयोग किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक राजा भी वरुण के समान वैभवशाली होता होगा।[9]

राजा युद्ध का नेता

ऋग्वैदिक राज्य में या जन में राजा युद्ध का नेता भी होता था। आर्यों व अनार्यों के बीच संघर्ष के कई संदर्भ और ऋग्वैदिक समाज के विभिन्न जनों के बीच पाए जाने वाले उदाहरण से पता चलता है कि राजा का मुख्य कार्य युद्ध में सेना का नेतृत्व करना होता था।[10] एक अन्य उदाहरण में हमें पता चलता है कि राजा सभी प्रकार के सैनिक कार्यों को स्वयं संपादित करता था।[11]

राजा कानून का संरक्षक

ऋग्वैदिक राज्य या जन में राजा का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य प्रजा का रक्षण व शांति बनाए रखते हुए न्यायिक प्रशासन का संचालन करना होता था। मित्र एवं वरुण के लिए प्रयुक्त धृतवृत, विरुत, अग्नि के लिए व्रतपा, धर्मस्य गोप्ता, इत्यादि शब्द इस बात के द्योतक हैं।[12] राजा कानून का संरक्षक भी होता था। राजा के सैनिक गुणों का हमें वैदिक साहित्य में कई बार उल्लेख पाते हैं। कौशीतकी उपनिषद में राजा के एक व्यक्ति के रूप में लड़ते हुए मरने का उल्लेख है।[13] अथर्ववेद में राजा के विरोधियों को नष्ट कर उसे सर्वोच्च स्थान पर स्थापित करने की इच्छा की गई है।[14]

अथर्ववेद में ही राजा का अपने शत्रु को मारने पर जयघोष किए जाने का उल्लेख मिलता है।[15] अथर्ववेद में ही हमें राजा के कुछ सैनिक गुणों का उल्लेख पाते हैं[16] कि ''राजा चीते के समान शत्रु को गिरा देने वाला हो, अकेला मुखिया हो, इंद्र उसका साथी हो, जो सर्वदा विजयी हो, जो शत्रु हो उनको वह मिटा दे।[17] राजा से तप व ब्रह्मचर्य युक्त होने की आशा भी की जाती थी ताकि वह कर्म व आत्मनियंत्रण के द्वारा समाज का कुशल नेतृत्व कर सके। विनम्र सुशील प्रजा में शांति व समृद्धिशालिता ही अच्छे प्रशासन का मानदंड था। हमें एक ऐसे पति-पत्नी का उल्लेख मिलता है जो निर्विघ्न होकर राजा परीक्षित के भद्र शासन में घूमता था।[18] इसी ऋचा से पता चलता है कि राजा परीक्षित ने उन्हें जीवन की सारी आवश्यकताएं उपलब्ध करवाई थी। इसी कारण वह निर्विघ्न होकर घूमते थे।

राज्याभिषेक के समय राजा की युद्ध के देवता इंद्र व रक्षण के देवता वरुण के साथ तुलना की जाती थी। राजा की वरुण से समानता जो कि देवताओं में न्याय का अधिकारी था यह सिद्ध करता है कि राजा सर्वोच्च न्यायाधीश भी होता था जो आपराधिक मुकदमों का निपटारा करता था। ऋग्वेद में हमें मध्यामसि शब्द मिलता है। रौथ का कथन है कि यह शब्द न्यायाधीश के लिए आया है। व्हिटनी ने इस शब्द का अर्थ राजा के आदमियों द्वारा लगाए जाने वाले घेरे के अर्थ में लिया है। कुछ विद्वानों का विचार है कि मध्यामसि शब्द प्रशासनिक न होकर निजी न्यायकर्ताओं अर्थात् पंचों के लिए प्रयुक्त होता था।

शतपथ ब्राह्मण से पता चलता है कि राजा दंडनीय था और वह स्वयं दंड धारण करता था। जिससे कि समाजकंटकों को दंड दिया जा सके। सभा के सदस्य जो कि समाचर या सभासद् कहलाते थे वह भी न्याय का काम करते थे। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ऋग्वेद में सभा शाही न्याय का केंद्र होती थी क्योंकि राजा भी सभा का सदस्य होता था, अत: वह भी न्याय कर्त्ता की भूमिका निभाता था।[19]

राजा विधि निर्माता नहीं अपितु संरक्षक

वैदिक साहित्य में पता चलता है कि राजा के पास विधि संबंधी भी अधिकार होते थे। ऋग्वेद में धर्म शब्द बार-बार प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द विभिन्न स्थानों पर विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, यथा रीति-रिवाज, नैतिक, कानून, सामान्य कर्तव्य व नियम। कभी-कभी धर्म को ऋत या यज्ञ के संदर्भ में भी प्रयुक्त किया गया है। राजा प्रजा के असामाजिक व अधार्मिक कार्यों से रक्षा करता था। इसीलिए वह मनुष्यों में सर्वोच्च था।[20] संभवत: इसी कारण वह प्रजा का प्रिय था। वस्तुत: राजा विधि का निर्माता न होकर केवल उसका संरक्षक होता था। राजा विधि को बनाए रखने वाला था, क्योंकि विधि राजपद को बनाए रखने वाली थी। कोई राजपद तभी तक न्यायोचित था जब तक कि राजा ''राजपद'' की उच्च परंपरा का पालन करता था। समाज ही विधि का स्रोत था। इसलिए राजा अनुचित कार्य नहीं कर सकता था। ''विधि'' के संरक्षक का राजपद का यह सिद्धांत उसके अभिषेक समारोह से स्पष्ट होता है[21] जिसमें राजा की पीठ पर छड़ी से हल्का प्रहार किया जाता था जो इस बात का सूचक था कि राजा पवित्र नियमों को बनाए रखने वाला है, अत: वह दंड से क्षम्य है, अदण्ड्य है।[22]

यह कहा जा सकता है कि राजा सर्वोच्च कार्यकारी अधिकारी था, युद्ध का सर्वोच्च सेनापति, प्रशासनिक मुखिया व सर्वोच्च न्यायाधीश था। ऋग्वेद काल में राजपद का स्वरूप लोकप्रिय एवं लौकिक था। राजा ''ऋत'' की रक्षा के लिए शत्रुओं के विनाश के लिए एवं धर्म को बनाए रखने के लिए आवश्यक था। परंतु उत्तर वैदिक काल में राजपद नामक संस्था धर्म के साथ बहुत अधिक संयुक्त हो गई और उसके साथ धार्मिक कर्मकांड जुड़ गए। लोकप्रिय अनुष्ठानों में राजसूर्य, वाजपेय एवं अश्वमेध सभी धार्मिक रंगों में रंग दिए गए। उदाहरण के लिए ऋग्वेद में अश्वमेध यज्ञ में हमें केवल पुजारी, होता, अध्वर्यु, आवया अग्निमेधा और संस्तर मिलते हैं, जो संपूर्ण अश्वमेध यज्ञ को पूरा करते थे।[23] किंतु ब्राह्मण युग में काफी महंगे व लंबे चलने वाले हो गए थे। इससे धार्मिक कृत्यों में जटिलता उत्पन्न हुई जिससे वैदिक काल के लोगों में काफी परिवर्तन हुआ। धार्मिक कर्मकांडों की नई व्यवस्था में जटिल जातियों की उत्पत्ति हुई और वर्ण व्यवस्था पनपी व ब्राह्मण देवों में श्रेष्ठ कहें जाने लगे।[24] ऋग्वैदिक काल के लोकप्रिय अनुष्ठानों को धार्मिक (कर्मकांडी) रूप प्रदान किया गया और राजसूर्य, वाजपेय आदि अनुष्ठानों का राजपद के लिए आवश्यक बनाया गया जिससे अंतत: राजपद धर्म की सहायक संस्था के रूप में उत्तर वैदिक समाज में स्थापित हुआ।[25] इन धार्मिक विधि और विधानों के उत्तरोत्तर बढ़ते प्रभाव से ब्राह्मण काल तक आते-आते ऐसा वातावरण बनने लगा जिसमें राजा के देवत्व की भावना पनप सकती थी। युद्ध में विजय इंद्र देवता की कृपा का फल कहा जाता था और इंद्र की उपाधियां पूरी तरह राजा के ऊपर आरोपित की जाती थी।[26] राज्याभिषेक के समय पुरोहित कहते थे कि भगवान सविता के आदेश पर ही अभिषेक किया जाता है और यह अभिषेक के समय राजा के शरीर में अग्नि सविता और बृहस्पति देवता प्रवेश करते हैं। अश्वमेध व वाजपेय यज्ञ द्वारा राजा को देवता का पद मृत्यु के बाद प्राप्त होता है, यह भी धारणा थी किंतु

वैदिक काल में हमें ऐसा कुछ दिखाई नहीं देता है[27] किंतु ब्राह्मण काल में भी हिंदू ग्रंथकारों ने राजपद को देवी बताया है न कि किसी राज व्यक्ति को। ईश्वर प्रणीत वर्णाश्रम धर्म का प्रजा से पालन कराना राजा का प्रमुख कर्तव्य माना जाता था। बाद के काल में राजपद को देवी मानने के पीछे यह भी कारण हो सकता है कि इससे राजा की आज्ञा का पालन अधिक अच्छी तरह हो सकता था किंतु राजा यदि अधर्मशील हो तो वह धर्मशास्त्र के सहारे से वह अपने दुराचार या जुल्म का समर्थन नहीं कर सकता है, उसे धर्मशास्त्र ने राक्षस का अवतार माना है।

राजा के ऊपर नियंत्रण : वैदिककाल में राजा धर्म का रक्षक, पोषक और समर्थक समझा जाता था। वैदिक काल में राजा का आदर्श, ऋत और धर्म की रक्षा करने वाले धृतव्रत वरुण देव थे। मगर विधि नियम साक्षात देवदत्त माने जाते थे और यह अनिवार्य होता था कि राजा उनका पालन करें।

वैदिक काल के राजा की शक्तियां विभिन्न प्रकार की थी और वह अनेक प्रकार के कार्य करता था। परंतु मनुष्य स्वभाव दुर्बल है और औसत दर्जे के राजा से राज्य पद के उच्च आदर्शों की आशा नहीं की जा सकती थी। यह सच है कि प्राचीन वैदिक साहित्य में राजशक्ति के ऊपर वैधानिक रोक का कोई उल्लेख हम को प्राप्त नहीं होता किंतु समिति कुछ सीमा तक राजा को निरंकुश या कर्तव्य भ्रष्ट होने से रोकती थी, कुछ वैदिक उद्धरणों से पता चलता है कि समिति के प्रतिकूल होने पर राजा का अपने पद पर रहना कठिन होता था तथा राजा पूरी तरह समिति पर निर्भर था। ऋग्वेद के एक मंत्र में उल्लेख है कि राजसत्ता को हस्तगत करने की इच्छा से एक नेता ने समिति को भी अपने वश में करने की योजना बनाई थी।

आवशिचन्त आ वो गतं आ वोहं समिति: ददे।[28]

ऋग्वेद के एक स्थल पर आदर्श राजा ने अपनी समिति में जाने की इच्छा प्रकट की थी। अथर्ववेद से पता चलता है कि समिति राजा को पदच्युत भी कर सकती थी।

ध्रुवाय ते समिति: कल्पतामिव।[29]

इस ऋचा में पदच्युत राजा पुन: सिंहासनारूढ़ होने पर सबसे पहले यही आकांक्षा करता है कि मेरी समिति सदा मेरी बनी रहे। ब्राह्मण धन का अपहरण करने वाले राजा को यह श्राप दिया जाता था कि तुम्हारी समिति तुम्हारा साथ न दे।

नास्मै समिति: कल्पते न मित्रं नयते वयम्।[30]

स्पष्ट है कि यह संस्था अत्यंत प्रभावशाली थी, बहुधा इसके समर्थन पर राजा का भविष्य निर्भर रहता था। समिति के विरुद्ध हो जाने पर राजा की स्थिति अत्यंत संकटपूर्ण हो जाती थी। खोए हुए राज्य को फिर से प्राप्त करने वाले राजा की स्थिति तब तक सुदृढ़ नहीं मानी जाती थी जब तक कि समिति उससे सहयोग करने को तैयार न हो जाए। समिति राजा का बहुत बड़ा सहारा मानी जाती थी। ऋग्वेद में उल्लेखित है कि एक राजा ने अपने विपक्षियों के विनाश की प्रार्थना की थी तथा दावा किया था कि उसने उनके चित्त, उनकी जीवन पद्धति और उनकी समिति पर आधिपत्य कायम कर लिया है।[31] समिति पूर्व वैदिक काल की राजव्यवस्था का ऐसा अंग थी कि उसके बिना राजा की कल्पना नहीं की जा सकती थी। भैंस के लिए जिस प्रकार वन था, सोमरस के लिए जिस प्रकार घड़ा था, उसी तरह राजा के लिए समिति थी।[32]

समिति के नियंत्रण के अलावा राजा के ऊपर अन्य नियंत्रण भी थे, ये नियंत्रण राजा को निरंकुश होने से रोकते थे तथा कर्तव्यों की ओर प्रेरित करते थे। इन नियंत्रणों को हम धार्मिक नियंत्रण कह सकते हैं। इनका प्रभाव भी इतना अधिक होता था कि कोई भी राजा इनका उल्लंघन करने का साहस नहीं कर सकता था। इसमें सबसे प्रमुख प्रतिबंध ऋत की अवधारणा थी। ऋत की अवधारणा उस काल के लोगों की सिद्धांतिक मान्यताओं की ओर इंगित करती है। अब प्रश्न उठता है ''ऋत'' क्या थी? विंटरनित्स, मैक्डोनल, कीथ आदि सभी ने ऋत की व्याख्या सृष्टि की नियमितता, भौतिक एवं नैतिक व्यवस्था से की है। वस्तुत: ऋत नैतिक नियम होते थे। देवता नैतिक नियमों का पालन करने तथा कराने वाले होते थे। ऋत का अर्थ होता है ''जगत की व्यवस्था'' इसे प्राकृतिक नियम भी कहा गया है। सूर्य, चंद्रमा, तारे, दिन-रात आदि इसी नियम द्वारा संचालित है। यह नियम देवताओं को भी नियमित करता है। ऋत का संचालक वरुण को माना गया है। आगे चलकर ऋत सिद्धांत कर्म सिद्धांत को जन्म देते हैं। कर्म सिद्धांत के अनुसार जैसा हम बोते हैं वैसा ही काटते हैं। वैदिक राजा इसी ऋत की अवधारणा से बंधा था। वह ऋत्त की परंपराओं का उल्लंघन नहीं कर सकता था। समाज उससे यह आशा करता था कि वह देवताओं की भांति भूतल पर भी ऋत को लागू करेगा। राजा का भी पूरा प्रयास यही रहता था कि वह ऋत की अवधारणा का पालन करें। इसका उल्लंघन करने पर राजा को जन विरोध का सामना करना पड़ता था। ऋत व लोकमत राजा को न्याय पक्ष पर रहने को बाध्य करते थे।

इस तरह हम देखते हैं कि राजा सर्वाधिकार संपन्न होते हुए भी स्वतंत्र नहीं था वह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनेक प्रकार के प्रतिबंधों से वह बंधा हुआ होता था व्यवहार में राजा के ऊपर जो सीमाएं थी उनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है। सर्वप्रथम राजा स्वयं धर्म के अधीन होता था। राजा स्वयं धर्म का पालन

करता था और प्रजा से भी धर्म का पालन कराता था। अधिकतर कानूनों का स्रोत धार्मिक तथा सामाजिक परंपराएं थी, राजा उन्हीं के अनुसार आदेश व आज्ञा निकालता था। राजा को सदैव स्वर्ग व नरक का ध्यान रहता था। दूसरे वैदिक काल में राजा का वरण किया जाता था। बाद के काल में राजा के वरण की परंपरा तो नहीं रही किंतु युवराज अथवा उत्तराधिकारी की नियुक्ति के समय राजा प्रजा की सहमति का ध्यान रखा जाता था। तीसरे वैदिक काल में समिति व सभा जैसी लोकप्रिय संस्थाएं थी और पुरोहित तथा मंत्री राजा के परामर्शदाता होते थे। राजा अकेले कोई काम नहीं करता था। कालांतर में समिति व सभा का स्थान राज्यसभा व दरबार ने ले लिया, परंतु पुरोहित और मंत्रियों का महत्व कम नहीं हुआ। चौथे, यह संभव हो सकता है ''राजन'' के वरण के बाद शपथ लेता था। बाद के काल में तो हमें शपथ का उल्लेख मिलता है इस तरह राजा शपथ से भी बंधा रहता था। पांचवें, राजा को देवांश मानते हुए भी देवत्व का महत्व राजा को व्यक्तिगत रुप में नहीं, बस उसके पद को दिया जाता था। पाश्चात्य जगत की भांति भारतीय धर्म शास्त्रियों तथा विचारकों ने राजा को चाहे जैसा भी शासन करने का दैवीय अधिकार कभी भी प्रदान नहीं किया। छठे, राजा के विषय में प्राचीन भारतीयों की धारणाएं अति उच्च थी, उसे प्रजारक्षक, प्रजापालक, प्रजा का पिता, सेवक और प्रजा के हितों का रक्षक समझा जाता था। अत: साधारणत: हम वैदिक राजा को स्वेच्छाचारी या अत्याचारी नहीं पाते और अंत में यदि कोई राजा स्वेच्छाचारी या अत्याचारी बन भी जाता था तो प्रजा की समिति को उसे हटाने का नैतिक व धार्मिक अधिकार प्राप्त था। इस बात के अनेक प्रमाण हमको ऋग्वैदिक अथर्ववैदिक ऋचाओं में मिलता है।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद 10.1.73
2. अथर्ववेद 3.4.2
3. अथर्ववेद 6.87.1-2, 6.88.1-2
4. अथर्ववेद 3.4.7
5. ऋग्वेद 4.4.1
6. ऋग्वेद 9.7.5, 10.43.2
7. ऋग्वेद 1.85.8
8. ऋग्वेद 1.25.15
9. ऋग्वेद 1.28.10
10. ऋग्वेद 7.33.3, 7.33.5, 7.83.8
11. ऋग्वेद 10.75.4
12. ऋग्वेद 1.25.8, 1.15.6, 8.23.14
13. कौषीतकी उपनिषद 1.11.1
14. अथर्ववेद 1.9.4
15. अथर्ववेद 4.8.2
16. अथर्ववेद 4.22.7
17. ऋग्वेद 11.5.17
18. अथर्ववेद 20.127.7-10
19. ऋग्वेद 3.17.1, 7.89.5, 8.98.1, 10.56.3
20. ऋग्वेद 10,174.5
21. ऐतरेय ब्राह्मण 8.12
22. सामवेद 5.4.7
23. ऋग्वेद 1,162.5
24. सामवेद 2.2,2.6
25. तैत्तिरीय संहिता 1.7.3
26. ऐतरेय ब्राह्मण 8.2
27. शतपथ ब्राह्मण 12,4.3
28. ऋग्वेद 10,166.4
29. अथर्ववेद 6,88.3
30. अथर्ववेद 5,19.15
31. ऋग्वेद 10,196.4
32. ऋग्वेद 9,92.6

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 79-84

इसरो का ऐतिहासिक सफर, उपलब्धियाँ और बदलते परिदृश्य के साथ चुनौतियां

ISSN 2348-3857

अनिता महला

शोधार्थी, भूगोल विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

हमारे देश में अन्तरिक्ष अनुसंधान की शुरूआत 1960 के दौरान हुई जब विदेशी उपग्रह 'सिनकॉम-3' द्वारा प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में टोकियो ओलंपिक खेलों के सीधे प्रसारण ने संचार उपग्रहों की क्षमता को प्रदर्शित किया। जिससे डॉ. विक्रम साराभाई ने तत्काल भारत के लिए अन्तरिक्ष 'प्रौद्योगिकी के उपयोग को पहचाना। उनका मानना था कि अंतरिक्ष के संसाधनों में इतना सामर्थ्य है कि राष्ट्रीय विकास में मानव व समाज की वास्तविक समस्याओं को दूर कर सकते हैं। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 1969 में इसरो की स्थापना हुई। इसरो के प्रौद्योगिकी अन्वेषण, उपकरणों के निर्माण, रख -रखाव, क्रियान्वयन, प्रक्षेपण व निगरानी हेतु देश के विभिन्न भागों में अन्तरिक्ष केन्द्रों की स्थापना की गई। इनमें विक्रम साराभाई अन्तरिक्ष केन्द्र, इसरो उपग्रह केन्द्र, अन्तरिक्ष उपयोग केन्द्र, सतीश धवन अन्तरिक्ष केन्द्र, तरल मोदक प्रणाली केन्द्र, इसरो ट्रेलीमेट्री ट्रेकिंग व कमाण्ड नेटवर्क, विकास एवं शैक्षिक संचार इकाई, प्रधान नियंत्रण सुविधा, इसरो जड़त्व प्रणाली इकाई, भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला, राष्ट्रीय सुदूर संवेदन संस्था है। इन सभी इकाईयों के माध्यम से इसरो ने तीन विशिष्ट भाग- संचार तथा सुदूर संवदेन के लिए उपग्रह, अंतरिक्ष परिवहन प्रणाली तथा अनुप्रयोग कार्यक्रम चलाए। इन तीनों माध्यमों का उपयोग नागरिक तथा सुरक्षा उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है। इनमें दूरसंचार प्रसारण, मौसम विज्ञान, सामरिक सुरक्षा, आपदा प्रबंधन, खोज व बचाव कार्य, कृषि अनुसंधान, जल की उपलब्धता, बाढ़ व सूखे से प्रभावित क्षेत्रों का अनुमान, वन व वन्य जीवों की प्रजातियों से जुड़ी सुविधाएँ व सर्वे, शैक्षणिक नवाचार में उन्नत तकनीकी, GPS व GIS में सहायता आदि कार्य शामिल हैं। PSLV, GSLV प्रक्षेपणयानों के निर्माण, उन्नत व बहुउद्देशीय उपग्रहों के निर्माण व प्रक्षेपण कार्यक्रम, चन्द्रयान व मंगलयान जैसे अभियान, विदेशी उपग्रहों का भी भारतीय प्रक्षेपणयानों के माध्यम से सफलता पूर्वक प्रक्षेपण कर इसरो ने स्वयं को वैश्विक स्तर समृद्ध व सक्षम सिद्ध किया है। इन सभी अभियानों व कार्यक्रमों के दौरान इसरो को कई प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ा है परन्तु चुनौतियों के मुकाबले इसरो की कार्य प्रणाली व क्रियान्वयन गतिविधि दोनों ही श्रेष्ठ साबित हुए हैं। इन सभी सम्मिलित प्रयासों से वर्तमान समय में होने वाले फायदे और आने वाले समय में संभावित लाभ का अनुमान लगा सकते हैं। मानव सहित अंतरिक्ष अभियान को अगर स्टार्टअप और उद्योग से जोड़ दिया जाए तब दुनिया में श्रेष्ठ प्रौद्योगिकी अभियान बनने की क्षमता है।

संकेताक्षर : *क्रायोजेनिक इंजन, व्यावसायिक उपलब्धियां, वैश्विक साख, उन्नत प्रौद्योगिकी अन्वेषण*

भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन, भारत का राष्ट्रीय अन्तरिक्ष संस्थान है जिसका मुख्यालय बेंगलूरू, कनार्टक में है। इस संस्थान की स्थापना 1969 में हुई जो पहले 1962 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय अन्तरिक्ष अनुसंधान समिति (इन्कोस्पार) का अधिक्रमण करके किया गया। डा. विक्रम साराभाई ने राष्ट्र के विकास में अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी की भूमिका तथा महत्व को पहचानते हुए इसरो को भारत सरकार की अन्तरिक्ष ऐजेन्सी के रूप में कार्य करने हेतु निर्देशित किया। इसरो विश्व की छठी वृहत्तम अंतरिक्ष ऐजेंसी बन गया है। इसरो के पास संचार उपग्रह (INSAT) तथा सुदूर संवेदन (IRS) उपग्रहों का विशाल समूह है, जो तत्काल विश्वसनीय संचार एवं भू प्रेक्षण की बढ़ती मांग को पूरा करता है। इनमें प्रसारण, संचार, मौसम पूर्वानुमान, आपदा प्रबंधन उपकरण, भौगोलिक सूचना प्रणाली, मानचित्रकला, नौवहन, दूर चिकित्सा, दूरस्थ शिक्षा संबंधी उपग्रह। इन उपयोगों के अनुसार सम्पूर्ण आत्मनिर्भरता हासिल करने में, लागत प्रभावी एवं विश्वसनीयता प्रमोचक प्रणालियां विकसित करना आवश्यक है जो ध्रुवीय उपग्रह

प्रमोचक रॉकेट (PSLV) के रूप में है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्वसनीय व कम लागत के कारण उपग्रह प्रक्षेपित करने वाला प्रमुख प्रक्षेपणयान के तौर पर जाना जाता है। इसके साथ ही भू-तुल्यकालिक उपग्रह प्रमोचक रॉकेट (GSLV) को अधिक भारी और अधिक माँग वाले भू-तुल्यकारी संचार उपग्रहों को ध्यान में रखते हुए विकसित किया गया।

प्रौद्योगिकी क्षमता के अतिरिक्त इसरो ने देश में विज्ञान एवं विज्ञान की शिक्षा में भी योगदान दिया है। अंतरिक्ष विभाग के तत्वाधान में सुदूर संवेदन, खगोलिकी तथा खगोल भौतिकी, वायुमण्डलीय विज्ञान तथा सामान्य कार्यों में अन्तरिक्ष विज्ञान के लिए विभिन्न समर्पित अनुसंधान केन्द्र तथा स्वायत्त संस्थान कार्यरत है।

इसरो भारत सरकार के स्पेस डिपार्टमेन्ट द्वारा प्रबंधित किया जाता है जो सीधे भारत के प्रधानमंत्री को रिपोर्ट करता है। वर्तमान में इसरो के निदेशक डॉ. के. सिवन, स्पेस डिपार्टमेन्ट के सचिव के तौर पर तथा स्पेश कमीशन के चेयरमैन के रूप में भी कार्य करते हैं।

भारत के अन्तरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम की शुरूआत वर्ष 1961 में हुई जब भारत सरकार ने अन्तरिक्ष विकास की जिम्मेदारी नाभिकीय ऊर्जा विभाग (Department of Atomic Enegry)को सौंपी।

इसरो का लक्ष्य वक्तव्य व उद्देश्य : अन्तरिक्ष विज्ञान में अनुसंधान व ग्रहीय अन्वेषण के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास में अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी का प्रयोग। भारत में विकसित अन्तरिक्ष तकनीक का उपयोग नागरिक तथा सुरक्षा उद्देश्यों हेतु करना।

एन्ट्रिक्स : यह भारत सरकार की पूर्ण स्वामित्व वाली कम्पनी है इसका प्रशासनिक नियत्रंण अन्तरिक्ष विभाग के पास में है। इसकी स्थापना अन्तरिक्ष उत्पादों, तकनीकी परामर्श सेवाओं और इसरो द्वारा विकसित प्रौद्योगिकी की वाणिज्यिक सम्भावनाओं और प्रचार-प्रसार के लिए सरकार के स्वामित्व वाली प्राइवेट लिमिटेड के रूप में की गई।

इसरो द्वारा विकसित प्रक्षेपण यान

उपग्रह प्रक्षेपण यान (SLV) : यह चार चरण वाला ठोस प्रणोदक रॉकेट था, जिसके माध्यम से रोहिणी श्रृंखला के उपग्रहों को प्रक्षेपित करने का उद्देश्य रखा गया। इस योजना का संचालन एपीजे अब्दुल कलाम की अध्यक्षता में किया गया। इस यान का उद्देश्य 400 किलोमीटर की ऊँचाई तक पहुंचना और 40 किलो के पेलोड को कक्षा में स्थापित करना था। इस यान का पहला प्रक्षेपण 10 अगस्त 1979 को श्रीहरिकोटा से हुआ। वर्तमान में यह सेवा में नहीं है।

संवर्धित उपग्रह प्रक्षेपण यान (Augmeuted satelite launch vehicle) : इसरो द्वारा विकसित एक पांच चरण वाला ठोस ईधन रॉकेट था। यह पृथ्वी की निचली कक्षा में 150 किलो के उपग्रह स्थापित करने में समर्थ था। इस प्रक्षेपण यान को 24 मार्च 1987 में भू-स्थिर कक्षा में पेलोड के लिए आवश्यक प्रौद्योगिकियों के विकास के लिये प्रक्षेपित किया गया। इसका उपयोग करके SCROSS श्रृंखला के उपग्रह प्रक्षेपित किये गये। वर्तमान में यह सेवा में नहीं है।

धुव्रीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (PSLV) : इसरो द्वारा संचालित प्रक्षेपण यान प्रणाली है जिससे सुदूर संवेदी उपग्रहों को सूर्य तुल्यकालिक कक्षा में प्रक्षेपित करने के लिए विकसित किया गया है। PSLVछोटे आकार के उपग्रह को भू-स्थिर कक्षा में भी भेजने में सक्षम है।

भूस्थिर उपग्रह प्रक्षेपण यान (GSLV) : इस प्रक्षेपण यान को उपग्रहों को पृथ्वी की भूस्थिर कक्षा में स्थापित करने के लिये 2001 में पहली बार लॉन्च किया गया। यह बहुचरण रॉकेट है जो उपग्रहों को 36000 किलोमीटर तक की ऊँचाई पर स्थापित कर देता है जो भूमध्य रेखा की सीध में होता है। GSLVकोGSATश्रृंखला के उपग्रहों को प्रक्षेपित करने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है।

भूस्थिर उपग्रह प्रक्षेपण यान संस्करण 3 (GSLV-MK3) : इसे भूस्थिर कक्षा में उपग्रहों और भारतीय अन्तरिक्ष यात्रियों को प्रक्षेपित करने के लिए विकसित किया गया है। GSLV-3में स्वदेश निर्मित कार्योजेनिक रॉकेट इंजन की तीसरे चरण की सुविधा के अलावा GSLV की तुलना में अधिक पेलोड ले जाने की क्षमता है।

इसरो की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ

- 19 अप्रेल 1975 को पहला उपग्रह 'आर्यभट्ट' लाँच
- 10 अगस्त 1979 को SLV-3लोंचर का प्रयोगात्मक परीक्षण।
- 30 अगस्त 1983 कोINSAT-IBउपग्रह का सफल प्रक्षेपण।
- 1984 में भारत के राकेश शर्मा अंतरिक्ष की यात्रा करने वाले पहले भारतीय।
- 17 मार्च 1988 को भारत के पहले रिमोट सेसिंग सेटेलाईटIRS-IAलांच।
- 10 जुलाई 1992 को स्वदेशी तकनीक वाले INSAT-2Aको सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में भेजा गया।
- 23 जुलाई 1993 को INSAT-2Bका सफल परीक्षण।
- 29 सितम्बर 1997 को पहली बारPSLVयान प्रक्षेपित जिससेIRS-IDभेजा गया।

- 12 सितम्बर 2002 को अंतरिक्ष में जाने वाली पहली महिला यात्री कल्पना चावला के नाम पर कल्पना-1 सेटेलाइट लाँच।
- 20 सितम्बर 2004 को पूरी तरह से शिक्षा पर आधारित उपग्रह एडुसैटGSAT-3से प्रक्षेपित।
- 22 दिसम्बर 2005 को 'डायरेक्ट टू होम'के लिएINSAT-4Aउपग्रह लाँच।
- 22 अक्टूबर 2008 को चन्द्रयानाI की सफलता के साथ ही इसरो की ऐतिहासिक चन्द्र मिशन की शुरूआत हुई। इसेPSLV-C11 के जरिये अन्तरिक्ष में भेजा गया।
- 1 जुलाई 2013 को इसरो में भारत का नैविगेशन उपग्रहIRNSS-1Aको सफलतापूर्वक प्रक्षेपित किया गया। इसी के साथ भारत ने अमेरिका के तर्ज पर अपना स्वदेश निर्मितGPSसिस्टमबनाने की दिशा में कदम बढाया।
- 2014 में इसरो ने सफलतापूर्वक मंगल ग्रह पर मंगलयान भेजा जो पहले ही प्रयास में सफलतापूर्वक प्रक्षेपित हुआ। इस मिशन पर सिर्फ 450 करोड़ रुपये खर्च किए जो नासा के मंगल मिशन का महज 10 वां हिस्सा था।
- फरवरी 2017 को इसरो नेPSLV-P37के जरिये एक साथ 104 उपग्रह प्रक्षेपित कर विश्व रिकार्ड बनाया। इस शानदार उपलब्धि ने दुनिया में भारत द्वारा छोडे गये छोटे उपग्रहों के प्रक्षेपण की सुविधा देने वाला देश बना दिया।
- 5 जून 2017 को इसरो ने भारत का सबसे भारी रॉकेटGSLV-MK III लॉन्च किया। यह रौकेट अपने साथ 3136 किग्रा वाला संचार उपग्रहGSAT-19लेकर गया, इससे विदेशी प्रक्षेपकों पर भारतीय निर्भरता खत्म।
- 12 जनवरी 2018 को इसरो ने अपना 100 वां उपग्रह लाँच करके रिकॉर्ड कायम किया। श्री हरिकोटा से PSLV-C40सेएक साथ तीन स्वदेशी उपग्रहों सहित कुल 31 उपग्रह प्रक्षेपित किए। जिनमें कनाडा, फिनलेंड, फ्रांस, दक्षिण कोरिया, ब्रिटेन और अमेरिका के उपग्रह शामिल है।
- इस तरह इसरो अब तक 20 देशों के 237 विदेशी उपग्रहों का प्रक्षेपण कर चुका है।
- अन्तरिक्ष विज्ञान में लगातार नये आयाम गढ़ते हुये इसरो ने 16 सितम्बर 2018 कोPSLV-C42से दो ब्रिटिश उपग्रहों को लॉन्च कर पूर्णतया व्यवसायिक उड़ान भरी है। अन्तरिक्ष में अनुसंधान व शोध के क्षेत्र में यह बड़ी उपलब्धि है।

भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली : इसरो द्वारा प्रक्षेपित बहुउद्धेशीय भू-स्थिर उपग्रहों की एक श्रृंखला है जो दूरसंचार प्रसारण, मौसम विज्ञान, खोज और बचाव कार्य के लिए उपयोग में ली जाती है। 1983 में शुरू की गईINSATश्रेणी एशिया प्रशान्त क्षेत्र में सबसे बड़ी देशीय संचार प्रणाली है। यह भारत सरकार के अन्तरिक्ष, दूरसंचार, मौसम विज्ञान, आकाशवाणी विभाग और दूरदर्शन चैनल की संयुक्त योजना है। इनसेट उपग्रह श्रृंखला विभाग भारत के टीवी और संचार आवश्यकताओं की सेवा करने के लिए विभिन्न बैंड में ट्रांसपोडर प्रदान करते है। यह उपग्रह GSLVप्रक्षेपण यान से 36,000 किलोमीटर की ऊँचाई में प्रक्षेपित किये जाते है। इसरो अन्तराष्ट्रीय Cospas-Sarsat कार्यक्रम के एक सदस्य के रूप में दक्षिण एशियाई और हिन्द महासागर क्षेत्र में खोज और बेवाच अभियान के लिए संकटापन्न चेतावनी संकेतों को प्राप्त करने के लिए उपग्रहों के ट्रांसपोडर का इस्तेमाल करता है।

भारतीय रिमोट सेंसिंग प्रणाली : इसरो ने भारत में कृषि, जल संसाधन, वानिकी और पारिस्थितिकी, भूविज्ञान, जलग्रहण, समुद्री मत्स्य पालन और तटीय प्रबंधन में सटीक व उपयोगी जानकारियाँ जुटाने के लिए स्वदेशी भारतीय रिमोट सेंसिंग उपग्रह कार्यक्रम विकसित करना शुरू किया। इस उद्देश्य के लिए भारत ने राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधन प्रणाली को स्थापित किया जो अन्तरिक्ष विभाग के अन्तर्गत कार्य करता है। IRS प्रणाली विभिन्न उपग्रहों के साथ विश्व में चल रहे नागरिक उपयोग के लिए सबसे बड़ी दूरसंवेदी उपग्रहों की श्रृखंला है।

रडार इमेजिंग सैटेलाइट : रडार इमेजिंग सैटेलाइट एक अत्याधुनिक सूक्ष्म तरंग सुदूर संवेदी उपग्रह है जो सभी मौसम की विभिन्न परिस्थितियों में दिन-रात के दौरान भू सतहों के लक्षणों के प्रतिबिम्ब लेने में सक्षम है। अत्याधुनिक सी बैण्ड5.35 Ghzमें सिंथेटिक एपर्चर रडार जो कृषि उपयोग हेतु खरीफ मौसम में चावल मॉनीटरन और प्राकृतिक आपदा प्रबंधन जैसे बाढ, चक्रवात आदि में उपयोगी है।

गगन : जीपीएस एडेड जियो ऑगमेटिक नैविगेशन प्रणाली को इसरो और भारतीय विमान पतन प्राधिकरण ने सयुक्त रूप से विकसित किया है। 2013 को शुरू यह योजना भारत की महत्वाकांक्षी उपग्रह अधारित संवर्धन प्रणाली है जो विमान मार्ग पर नैविगेशन के लिए अन्तरिक्ष में गगन संकेत का उपयोग करने के साथ और भारतीय हवाई क्षेत्र के उपर बिना सीधे मार्गदर्शन के बगैर परिशुद्धता पहुँच के सक्षम हो जायेगा। भारत दुनिया में विमानन क्षेत्र के लिए जीवन सुरक्षा, अंतरिक्ष आधारित उपग्रह नेविगेशन सेवाओं को प्रदान करने वाला चौथा देश है। गगन प्रणाली निकट

भविष्य में भारतीय भूमि परिदृश्य के ऊपर सटीक सेवाएँ प्रदान करने के लिए APV1/1.5स्तर के प्रमाण पत्र को प्राप्त करेगा। गगन से दो भू-समकालिक उपग्रहों GSAT-8औरGSAT-10के माध्यम से पूरे भारतीय उड़ान सूचना क्षेत्र और उससे आगे के क्षेत्र को कवर करते हुये संकेत प्रसारित किये जा रहे हैं। GSAT-15के ऑनबोर्ड पर एक अतिरिक्त ट्रांसपोडर कक्षा में भेजा जायेगा।

चन्द्रयान 1 : भारत का प्रथम चंद्रयान मिशन, सतीश धवन स्पेस सेन्टर, शार (श्रीहरिकोटा) से 22 अक्टूबर, 2008 कोPSLV-C11 द्वारा सफलतापूर्वक प्रक्षेपित किया गया। चन्द्रयान चन्द्रमा के रासायनिक, खनिजीय और प्रकाश भौमिकी मानचित्रण के लिए चन्द्रमा सतह से 100 किलोमीटर ऊंचाई पर चन्द्रमा की परिक्रमा कर रहा है। खनिज मानचित्रण में मैग्नीशियम,एल्यूमीनियम, सिलिकॉन, कैल्सियम, लोहा और टाइटेनियम तथा उच्च परमाणु संख्या तत्वों के साथ रेडॉन, यूरेनियम और थोरियम का उच्च स्थानिक विभेदन प्राप्त करना है। स्थायी रूप से छाया में रहने वाले उत्तर व दक्षिण ध्रुवीय क्षेत्रों के खनिज एवम् रासायनिक इमेजिंग, सतह पर पानी व बर्फ की खोज, चट्टानों में रसायनों की पहचान। चन्द्रमा सतह की ऊँचाई की भिन्नता का मानचित्रण करना। चन्द्रयान ने चांद पर पानी की मौजूदगी का पता लगाकर इस सदी की महत्वपूर्ण खोज की है। इसरो के अनुसार चन्द्रमा पर पानी समुद्र, झरने, तालाब या बूंदों के रूप में नहीं होकर खनिज व चट्टानों की सतह पर मौजूद है।

मंगलयान (MASS ORBITER MISSION) : भारत का प्रथम मंगल मिशन है जो इसरो की महत्वकांक्षी योजनाओं में से एक है। 5 नवम्बर 2013 को आंध्रप्रदेश के श्री हरिकोटा केन्द्र से PSLV-C25द्वारा सफलतापूर्वक उपग्रह प्रक्षेपित किया गया जिसने 300 दिनो का सफर तय कर 24 सितम्बर 2014 को मंगल की कक्षा में प्रवेश करने के साथ ही ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की। भारत अपने प्रथम प्रयास में ही सफल होने वाला पहला देश तथा रूस, अमेरिका, यूरोपीयन अन्तरिक्ष एजेन्सी के बाद दुनिया का चौथा देश बन गया है। मंगल पर भेजा गया दुनिया का सबसे सस्ता मिशन है जो अमेरिका के मंगल मिशन खर्च का दसवां भाग है।

इसके उद्देश्य :-अन्तरग्रहीय मिशन के संचालन के लिए उपग्रह डिजाइन, योजना और प्रबंधन के लिए आवश्यक प्रौद्योगिकी का विकास करना है। मंगल की सतह की आकृति, स्थलाकृति और खनिजो का अध्ययन करेगा, सुदूर संवेदन तकनीक का उपयोग कर मंगल ग्रह पर मिथेन व CO_2का अध्ययन करना, मंगलग्रह के ऊपरी वायुमण्डल पर सौर हवा, विकिरण और बाह्य अन्तरिक्ष के गतिशीलता का अध्ययन।

इसरो की भविष्यगत महत्वाकांक्षी योजनाएँ :

भारतीय मानव अन्तरिक्ष कार्यक्रम (गगनयान मिशन) : भारत सरकार के मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार के विजय राघवन ने कहा कि इसरो 2022 तक मानव सहित अन्तरिक्ष अभियान को निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार पूरा करेगा। इसरो के चेयरमैन के. सिवन के अनुसार 'गगनयान काफी चुनौतीपूर्ण है पर इसरो इन चुनौतियों' से निपटने की क्षमता रखता है। इसके लिए प्रौद्योगिकी विकसित की जा चुकी है, जिसमें मानव क्रू मॉडल के साथ ही पर्यापरण नियत्रंण व जान बचाने की प्रणाली भी शामिल है।'

गगनयान मिशन : कुल 9000 करोड़ की लागत वाला गगनयान भारतीय चालित कक्षीय अन्तरिक्ष यान है जिसे तीन लोगों को ले जाने के हिसाब से डिजाइन किया जायेगा। इसके लिए अपग्रेड किये गये संस्करण को डॉकिंग क्षमता से लैस किया जायेगा। जिसकी बेंगलुरू के इसरो टेलीमेट्री ट्रेकिंग कमांड सेटंर से निगरानी की जायेगी। इस अभियान की कमान महिला वैज्ञानिक वी.आर. ललिताम्बिका करेंगी। इसरो ने इसे 'राष्ट्रीय मिशन' करार दिया है। इसका प्रक्षेपणGSLV-MARK 3से किया जायेगा।

मिशन के दौरान आने वाली चुनौतियां : बेंगलुरू शहर के बाहरी क्षेत्र में ट्रेनिंग सेन्टर खोला है जो अन्तरिक्ष यात्रियों को प्रशिक्षित करेगा परन्तु इतने कम समय में मानव को अन्तरिक्ष तक पहुचांने और धरती पर वापस लाने वाली तकनीक से प्रशिक्षित करना आसान नहीं है। इसके लिए इसरो एस्ट्रोनोट ट्रेनिंग एण्ड बायोमेडिकल इंजीनियरिंग सेन्टर विकसित करेगा परन्तु इसमें अभी समय लगेगा। समय पर प्रशिक्षण हेतु गगनयान मिशन के यात्रियों को रूस के कास्मोनॉट ट्रेनिंग सेन्टर से प्रशिक्षित करवाया जा सकता है। अगर भारत गगनयान अभियान में सफल रहेगा तो मानव को अंतरिक्ष में पहुँचाने वाला चौथा देश बन जायेगा।

इसरो टीवी चैनल : विज्ञान के प्रति जागरूकता बढाने के लिए ISRO TVचैनल लॉन्च करेगा। भारत विज्ञान और अन्तरिक्ष समर्पित टीवी चैनल लॉन्च करेगा ताकि इसके फायदों को देशभर के लोगों तक पहुँचाया जा सके। इस टीवी चैनल पर विज्ञान के उपयोग एवम लाभ को क्षेत्रीय भाषाओ के साथ-साथ अंग्रेजी में भी प्रसारित किया जायेगा।

इसरो का व्यवसायिक प्रौधोगिकी समझौता : बिजली उपकरण बनाने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी भेल ने विभिन्न क्षमता की लिथियम आयन बैटरी के विनिर्माण के लिए इसरो के साथ प्रोद्योगिकी स्थानान्तरण समझौता किया है। समझौते के तहत कम्पनी इस प्रोद्योगिकी के जरिये अन्तरिक्ष स्तर के विभिन्न क्षमता

के सेल (बैटरी) का निर्माण करेगी। यह कम्पनी के कारोबार का दायरा बढाने की रणनीति का हिस्सा है। लिथियम आयन बैटरी निर्माण से जुडी प्रौद्योगिकी का विकास इसरो ने विक्रम सराभाई अन्तरिक्ष केन्द्र में किया है।

चन्द्रयान 2 अभियान : भारत ने चन्द्रयान 2 की अपनी महत्वाकांक्षी परियोजना में 'एकला चलो' का रूख अपनाते हुये रूस की सहायता के बिना ही मिशन कामयाब करने की रणनीति अपनाई है। यह मिशन अक्टूबर 2018 में शुरू होना था परन्तु तकनीकी समस्या के कारण अगले वर्ष तक सम्पन्न हो पायेगा। इस संबंध में डॉ. एम. अन्नादुरै (निदेशक, यू आर राव सेटेलाइट सेंटर, बेंगलुरू) ने कहा कि चन्द्रयान 2 में लूनर रोवर को भेजा जाना है जिसकोGSLV MK 3से भेजा जायेगा। देरी की वजहGSLV MK 2की बजायGSLV MK 3को उपयोग में लेना है। इसरो के अनुसार पहियेदार रोवर चन्द्रमा की सतह पर चलेगा तथा विश्लेषण के लिए मिट्टी या चट्टान के नमूनों को एकत्रित करेगा।

चुनौतियाँ व बाधाएँ

सीमित संसाधन व निजी भागीदारी : सबसे बड़ी समस्या लॉन्च व्हीकल से संबंधित है। इसरो के पास दो लॉन्च पेड़ और केवल एक व्हीकल असेम्बली है। इसरो इतने बड़े पैमाने पर गतिविधियां चला रहा है जिस कारण दो लगातार लॉन्च के बीच तैयारियों के लिए कम ही समय रहता है। जबकि इसरो अपने कार्यक्षेत्र में लगातार विस्तार कर रहा है। इसरो को भविष्य की चुनौतियों से निपटने के लिए अधिक फंड एवम अधिक स्वायत्ता की आवश्यकता है परन्तु केन्द्र सरकार ने 2017 में अन्तरिक्ष कार्यक्रम की नीतियो में फेरबदल कर निजी कम्पनियों को साझेदार बनाने के विकल्प रखें ताकि योजनाओं को समय पर पूरा किया जा सकें। निजी क्षेत्र की भागीदारी के इतिहास पर नजर डाले तो उनके लक्ष्य ने देशहित से ज्यादा व्यवसाय विस्तार की नीतियां अधिक रही है। सरकारी दबाव के चलते इसरो ने कृत्रिम उपग्रह निर्माण की अपनी कार्यप्रणाली में परिवर्तन करते हुये पहली बार उपग्रह निर्माण में निजी क्षेत्र को शुरूआती तौर पर दो सुदूर संवेदी उपग्रहों के निर्माण हेतु छः कम्पनियो के कंसोर्टियम (विभिन्न कम्पनियों का समूह) के साथ एक अनुबंध किया है। इस कंसोर्टियम में कई कम्पनियां शामिल है :- अल्फा डिजाइन टेक्नोलॉजीज, न्यू टेक सॉल्यूशंस, एडिन टेक्नालॉजीज, अवन्टेल सिस्टम्स, सीसीएक्स केबल असेम्बलीज, विन्यास इनोवेटिव टेक्नोलॉजीज। इनमें अल्फा डिजाइन टेक्नोलॉजीज इस कंसोर्टियम की लीड पार्टनर कम्पनी होगी। जबकि यह कम्पनी इतावली डिफेंस फर्म 'इलेट्ट्रोनिका' की मुख्य भारतीय साझेदार भी है जिसका नाम कथित तौर पर कमीशन खिलाने के लिए 'पनामा पेपर्स' में सामने आया है। रिपोर्टस के अनुसार इतावली डिफेंस फर्म ने भारत में रक्षा क्षेत्र के ठेकों के लिए5% से17%तक कमीशन देने के एग्रीमेंट किये थे। इन सब घटनाओ के विरोध के कारण स्पेस एप्लीकेशन सेंटर के डायरेक्टर डॉ. तपन मिश्र को तत्काल पद से हटाकर इसरो का सलाहकार बना दिया गया जो एक गम्भीर व चिन्तित सवाल खड़े कर रहा है जिससे कामयाबी के शिखर परपहुँचे इसरो को निजीकरण के चलते नुकसान न उठाना पड़े।

इस कंसोर्टियम को निम्न महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गये हैं। इलेक्ट्रिकल और मेकेनिकल हार्डवेयर का संयोजन,परिक्षण, लॉन्च करने के लिए उपग्रहों पर नियंत्रण। उल्लेखनीय है कि उपग्रह निर्माण की प्रक्रिया में इन सभी कम्पनीयो को इसरो की अवसंरचना का उपयोग करने की स्वंत्रता होगी। वस्तुत: शुरूवात में इन दोनोसुदूर संवेदी उपग्रहों के निर्माण का व्यय इसरो द्वारा ही वहन किया जायेगा जबकि कंसोर्टियम इसरो के निरीक्षण में कार्य करेगा। इस तरह की नीति तो और चिन्तित करने वाली है जिसमें इसरो के कार्यों में सहयोग कम बाहरी दखलदांजी अधिक है। दिसम्बर 2016 से अब तक 2 उपग्रहों के निर्माण की निजी भागीदारी अब कुल 27 उपग्रहों के निर्माण तक पहुँच चुकी है। सबसे गम्भीर चिन्ता का विषय यह है कि इसरो की तकनीकी बुलंदियों के मुख्य प्रक्षेपण यानPSLV तथा SSLVके निर्माण की जिम्मेदारी भी निजी कम्पनियों को देने का दबाव है जिसके चलते वरिष्ठ वैज्ञानिकों ने राष्ट्रपति को पत्र लिखकर हस्तक्षेप करने की मांग की है।

वैश्विक प्रतिद्वंद्विता : इसरो अपनी पूरी कार्यक्षमता के उपयोग द्वारा सैटेलाइट लॉन्चिंग का एक सस्ता विकल्प बन सकता है लेकिन परियोजनाओं के धीमे क्रियान्वयन और सरकार द्वारा पर्याप्त समर्थन न मिल पाने के कारण भारत इस क्षेत्र में वैश्विक स्तर पर पिछड़ सकता है। ध्रुवीय कक्षाओं और छोटे उपग्रहों के मामले में इसरो ने अच्छी दक्षता हासिल कर ली है लेकिन भू-समकालिक उपग्रह प्रक्षेपण यान व क्रायोजेनिक इंजन के मामलो में विश्व स्तर पर पीछे है। अत:GSLVके व्यावसायिक लॉन्चिग में अभी ओर आगे जाकर सोचना होगा।

निष्कर्ष

वर्ष 1969 में स्थापना से लेकर अब तक इसरो की कार्यप्रणाली चमत्कारों से कम नहीं रही है, 'सीमित संसाधनों के साथ अपार खोज अन्वेषण'। और इन्ही कारणों से इसरो 'स्पेस पायोनियर अवॉर्ड' 2015, 'गाँधी शांति पुरस्कार' 2014 तथा लगातार 3

बार 'राजभाषा कीर्ति पुरस्कार' से नवाजा गया है। इन महान उपलब्धियों के बावजूद अगर भारत सरकार को इसरो की तकनीकी प्रौद्योगिकी व कार्य क्षेत्र में विस्तार के लिए निजी कम्पनियों के सहयोग की आवश्यकता पड़ रही है तो यह भविष्य में तकनीकी चोरी से लेकर भरोसेमंद आविष्कारों के अन्वेषण पर संकट की स्थिति उत्पन्न कर सकती है। इसरो को वैश्विक स्तर पर नासा जैसी तकनीकी एजेंसी से व्यवसायिक चुनौतियां मिल रही है और इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार को निजीकरण के बजाय रणनीतिक तौर पर इसरो को ढ़ांचागत रूप से अधिक मजबूत व ज्यादा वित्तीय सहायता उपलब्ध करानी चाहिये। इससे इसरो के नागरिक सेवा व राष्ट्रहित के लक्ष्य को प्राप्त करने में सुगमता रहे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मालवीय, गिरिश, डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.मीडियाविजिल.कॉम, सितम्बर 3, 2018
2. एचटीटीपीएस://स्पेशल कवरेज.न्यूज.इन >नेशनल
3. डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.द वायर हिन्दी.कॉम, 2018
4. एचटीटीपीएस://डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.इसरो.जीओवी.इन >हिन्दी
5. चौनियाल, डॉ. देबीदत्त, सुदूर संवेदी एवम् भौगोलिक सूचना प्रणाली के सिद्धान्त, शरदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2016, पृ. 103-104
6. बेमिसाल इसरो, विशेष, राज्यसभा, टीवी, सितम्बर 11, 2018
7. चौनियाल, डॉ. देबीदत्त, उपर्युक्त, पृ. 105
8. एचटीटीपीएस :// डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.इसरो.जीओवी.इन
9. एचटीटीपीएस :// डीओएस.जीओवी.इन/लॉन्च व्हिकल. एजपीएक्स
10. एचटीटीपीएस ://एचआई.एम.विकीपिडिया.ऑओआरजी>
11. एचटीटीपीएस ://डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.इसरो.ओआरजी/ लॉन्चरस/एएसएलवी, दिसम्बर 28, 2014
12. एचटीटीपीएस ://डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.इसरो.जीओवी.इन > एससीआरओवीएस-सी2
13. एचटीटीपीएस ://डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.द. हिन्दू.कॉम/टूडेज पेपर/टीपी नेशनल/आर्टिकल 1820727.इसीइ. जुलाई 25, 2011
14. जीएसएलवी एमके 3,द नेक्स्ट माइलस्टोन : इन्ट्रव्यू : के. राधाकृषणन फ्रंटलाईन, फरवरी 7, 2014
15. एचटीटीपीएस ://डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू. दृष्टि आईएएस डॉट कॉम> हिन्दी > इसरो की चुनौतियाँ एवं उपलब्धियाँ, फरवरी 9, 2018.

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 85-89

राजस्थान की सशक्त महिला : एक विकासात्मक अध्ययन (शिक्षा के विशेष सन्दर्भ में)

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

डॉ. अंजु सुथार

सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, बाड़मेर (राजस्थान)

शोध सारांश

''किसी भी देश की आत्मा, जिसका कोई इतिहास है, उसकी भाव, भाषा वहाँ की महिला के विकास प्रगति एवं समृद्धि में बोलती है। महिला समाज की रचनात्मक शक्ति है। उसके आगे बढने से देश आगे बढता है। उसके रूक जाने या धीमे हो जाने से देश थम जाता है। समाज की व्यवस्था या अव्यवस्था, नागरिक दायित्व की दृढता या उपेक्षा, आत्मशक्ति की मजबूती या दुर्बलता जैसी संवेदनशील भावनाओं को वह जैसा चाहे वैसा मोड़ दे सकती है। वह अपने भीतर सारी व्यवस्थाओं को समेटे रहती है। इन सबके चलते महिला सृष्टि निर्माता की अद्वितीय कृति कहलाती है। इस कामधेनू, अन्नपूर्णा एवं रिद्धि-सिद्धी का उच्च स्वरूप उसकी शिक्षा के स्वरूप पर निर्भर करता है। अत: एक प्रकार से बालिका शिक्षा समस्त राष्ट्र की शिक्षा रूपी गंगा का उद्गम स्थल गंगोत्री है। अतएव शिक्षा सामाजिक परितर्वन का सबसे महत्वपूर्ण साधन होता है। शिक्षा का सीधा संबंध मनुष्य के मानसिक गठन से है। शिक्षा द्वारा मनुष्य के मन पर जैसे संस्कार पड़ते हैं, वह वैसा ही बन जाता है। शिक्षा सामाजिक विकास की धुरी भी है। समाज को संस्कारवान बनाने हेतु स्त्री शिक्षा का महत्व सर्वविदित है। एक शिक्षित स्त्री दो परिवारों को प्रशिक्षित तथा संस्कारवान बनाती है। महिला विकास तथा सशक्तीकरण का यह क्रम भारत के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगत हुआ और राजस्थान भी इससे अछूता ना रहा है। यूं तो महिला विकास के अनन्त पहलू हो सकते हैं किन्तु शिक्षा निर्विवाद रूप से महिला कल्याण का सर्वश्रेष्ठ उपाय सिद्ध हुई है। शिक्षा के अभाव के कारण ही महिलाओं की स्थिति दयनीय रही है और शिक्षा के सकारात्मक प्रयासों का प्रभाव ही महिला सशक्तीकरण को और अधिक दृढता भी प्रदान करता है। तद्नुसार राजस्थान में महिलाओं की स्थिति में असाधारण परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं।

संकेताक्षर : *राजस्थान, महिला, विकास, शिक्षा, समाज*

वैदिक काल से ही नारी का स्थान सर्वोच्च रहा है। हमारे सम्पूर्ण ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं कि नारी सदियों से ही शक्ति के रूप में पूजी जाती रही है। ऋग्वेद में भी लिखा है कि ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता। '' प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में नारी को पुरुषों से उच्च माना गया है। वैदिक युग में नारी के विकास की चरमोत्कर्ष स्थिति थी जो नारी के लिए स्वर्णिम युग की ओर इंगित करती है। बिना रोक टोक के मेलमिलाप, स्त्री शिक्षा, स्वंयवर की व्यवस्था, विधवा विवाह पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था, सती प्रथा बाध्यता के रूप में नहीं थी तथा समाज में स्त्रियों का सम्मान एंव आदर आदर्शात्मक तथा मर्यादायुक्त रहा है। वैदिक युग की नारी बुद्धि और ज्ञान के क्षेत्र में प्रवीण थी। नारी को वेदाध्ययन एवं यज्ञ सम्पादन करने का पूर्ण अधिकार था। सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में उसकी उपस्थिति अनिवार्य थी तथा उस युग में पर्दा प्रथा प्रचलित नहीं थी। [1]

वैदिक युग में नारी की स्वर्णिम स्थिति में राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक संरचना में परिवर्तन के साथ बदलाव दर्ज होता गया। उतरवैदिक युग में नारी की स्थिति में भेद परक विकास प्रारम्भ हुआ। वैदिक कर्मकाण्ड की जटिलता बढने तथा याज्ञिक कार्यों में आडम्बर बढने के फलस्वरूप नारियों को याज्ञिक कार्यों से अलग रखने का उपक्रम किया जाने लगा तथा ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि उन्हें वेदों के अध्ययन या मंत्रोचारण के उपयुक्त नहीं समझा गया। शनैः-शनैः नारी की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और वैयक्तिक सभी स्थितियों पर प्रतिबन्ध लग गये। [2] नारी के उपनयन संस्कार पर आघात किया गया। धर्मशास्त्रकाल में वह अबला, याचिका, सेविका आदि समझी जाने लगी। नारी की स्थिति दिन प्रतिदित विकृत होती गई। मध्यकाल में तो यह भयावह हो गई।

मध्यकाल में नारी मानसिक दासता में आंकठ जकड़ी थी। समाज जन्य क्लेश अस्वीकृत होते हुए भी उनमें उसकी मौन स्वीकृति थी। ऐसे समय 19वीं सदी के प्रारम्भ में समाज का एक वर्ग इन दुष्परिणामों से प्रकम्पित हो सामाजिक चेतना की ओर उन्मुख हुआ। महान् समाज सुधारकों के द्वारा भारतीय स्त्रियों पर लादी गई निर्योग्यताओं को चुनौती दी गई। ब्रिटिश सरकार ने भी इस दिशा में अपनी सकारात्मक पहल की। दूसरी तरफ महात्मा गांधी के आह्वान पर लाखों स्त्रियों ने घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लिया। स्त्रियों को अपनी शक्ति और सामर्थ्य का एहसास हुआ। सदियों से मानसिक दासता में जकड़ी नारी में एक नई चेतना का अभ्युदय हुआ। फलस्वरूप स्वतन्त्रता पूर्व की नारी की स्थिति में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्तर पर सांकेतिक परिवर्तन हुए। [3]

स्वतन्त्रता पश्चात महिला विकास और सशक्तीकरण के प्रयास

भारत के इतिहास में सर्वप्रथम सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, विधवा जीवनयापन को एक सामाजिक बुराई के रूप में देखा जाने लगा। महिलाओं में अपने अधिकार व कर्तव्यों के प्रति जागरूकता का प्रादुर्भाव हुआ। यद्यपि भारतीय समाज उस समय तक पुरुष प्रधान ही था। [4] सामाजिक निर्योग्यताओं के अन्तर्गत स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न अछूता सा ही था। शिक्षा का सीधा सम्बन्ध नौकरी से लिया जाता था तथा नौकरी करना स्त्रियों के लिए उचित नहीं माना जाता था। स्वतत्रंता से पूर्व भारत में स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत 6 से भी कम था। पारिवारिक निर्योग्यताओं के अन्तर्गत परिवार में दजेह की मांग, सदस्यों की सेवा इत्यादि शोषण एक सामान्य बात थी। [5] स्वतन्त्रता का शोषण करना एक सामान्य बात थी।

पाश्चात्य शिक्षा तथा ज्ञान के प्रसार से देश में बौद्धिक चिन्तन की नई भावना उत्पन्न हुई जिसका प्रयोग धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक संस्थाओं के नये सिरे से अध्ययन एवं विश्लेषण के लिए किया गया। स्वतन्त्रता पश्चात धर्म निरपेक्ष राज्य की घोषणा इसका सबूत है, प्रजातान्त्रिक मूल्यों की घोषणा इसका उदाहरण है।

स्वतन्त्रता पश्चात राष्ट्र नागरिकों के जीवन के उन्नयन, सामाजिक न्याय आधुनिकीकरण आत्मविश्वास के रणनीति की साथ प्रतिबद्ध था। [6] भारतीय संविधान में महिलाओं को कानून एवं समाज में सरंक्षण तथा पर्याप्त सम्मान मिला और एक बार पुन: नारी को अपना खोया हुआ सम्मान प्राप्त करने का मौका मिला। अनुच्छेद 14 समता के अधिकार के बारे में है जिसके अनुसार किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्यों द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा। अनुच्छेद 15 के अनुसार राज्य केवल धर्ममूल वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर नागरिकों के बीच कोई विभेद नहीं करेगा। यानी कि हमारा संविधान स्पष्ट रूप से यह कहता है कि पुरुष एवं महिला को समान अधिकार प्रदान किये गये है।

महिला शिक्षा और राजस्थान

महिला विकास तथा सशक्तीकरण का यह क्रम भारत के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगत हुआ और राजस्थान भी इससे अछूता ना रहा है। यूं तो महिला विकास के अनन्त पहलू हो सकते है किन्तु शिक्षा निर्विवाद रूप से महिला कल्याण का सर्वश्रेष्ठ उपाय साबित हुई है। शिक्षा के अभाव के कारण ही महिलाओं की स्थिति दयनीय रही है और शिक्षा के सकारात्मक प्रयासों का प्रभाव ही महिला सशक्तीकरण को और अधिक दृढता भी प्रदान करता है।

मध्यकाल और महिला शिक्षा

मध्ययुग में स्त्री शिक्षा मुख्य रूप से उच्च वर्ग तक तथा कुछ सीमा तक मध्यम वर्ग तक सीमित थी। कहीं-कहीं पर विदुषी स्त्रियों के उल्लेख मिलते है। महाराणा कुम्भा की पुत्री रमाबाई संगीत विद्या तथा शास्त्रों में दक्ष थी। मीराबाई हिन्दू दर्शन की विद्वान थी। मध्यकालीन राजस्थान की शिक्षित लड़कियों में देलवाड़ा की राजकुमारी का महत्वपूर्ण स्थान है। पुराअभिलेखागारीय सामग्री, शाहपुरा राज्य की ख्यात एवं बनेड़ा अभिलेखागार के पत्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उच्च कुलोत्पन्न स्त्रियों की शिक्षा की उतम व्यवस्था थी। जयपुर के पोथीखाने के एक चित्र से ज्ञात होता है कि राजवंश की एक राजकुमारी को एक वृद्ध व्यक्ति द्वारा राजमहल के अन्दर ही पढ़ाया जाता था। डॉ. गोपीनाथ शर्मा लिखते हैं-''हमें ऐसे ग्रन्थ सैकड़ों की संख्या में मिलते है, जिनमें गीता, भागवत रामायण तथा कथानकों के ग्रन्थ मुख्य है, जिन्हें धर्मनिष्ठ स्त्रियों तथा विदुषियों के पठनार्थ लिखवाया गया।[7] मध्यम वर्ग की कुछ लड़कियाँ लड़कों के साथ पढ़ने जाती थी, किन्तु उनकी पढ़ाई शीघ्र छुड़ा दी जाती थी। इसका कारण यह था कि स्त्री शिक्षा के लिए अलग से कोई व्यवस्था नहीं थी। उस समय ऐसा भी विश्वास प्रचलित था कि यदि लड़कियाँ पढ़ेगी तो शीघ्र ही विधवा हो जाएँगी। जन साधारण लड़कियो की शिक्षा के प्रति पूरी तरह उदासीन था। [8]

स्वतंत्रता पश्चात शिक्षा : बढ़ते आयाम

नई शिक्षा नीति 1986 में कहा गया है कि ''समानता के उद्देश्य को साकार बनाने के लिए सभी को शिक्षा का समान अवसर

उपलब्ध करवाना ही पर्याप्त नहीं होगा बल्कि ऐसी व्यवस्था होना भी जरूरी है जिसमें सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर मिले। वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का उद्द्श्ेय है कि सामाजिक माहौल और जन्म के संयोग से उत्पन्न पूर्वाग्रह और कुण्ठाएं दूर हो। ''[9]

मध्यकालीन अंधविश्वास जनित इस धारणा का प्रभाव नवजागरणकाल तक रहा। उस समय भारत में स्त्री साक्षरता 1.07 प्रतिशत थी और स्वतंत्रतापूर्व तक ये 4 प्रतिशत आँका गया था।[10] स्वतंत्रता के पश्चात साक्षरता के प्रतिशत में आमूलचूल बदलाव दृष्टिगत होते है। राजस्थान के साक्षरता के प्रतिशत को इस प्रकार समझा जा सकता है-

राजस्थान की साक्षरता: आजादी से आज तक (1951-2011)

महिला साक्षरता	महिला साक्षरता
1951	2.66%
1961	7.01%
1971	10.06%
1981	14.00%
1991	20.44%
2001	49.85%
2011	52.66

राजस्थान के समस्त जिलों में साक्षरता के प्रतिशत मे उत्तरोत्तर वृद्धि दिखायी पड़ती है। यथा मेवाड़ में 1921 में कुल 667963 स्त्रियों में से मात्र 1544 स्त्रियाँ साक्षर थी। जबकि उदयपुर सिटी में कुल 18474 स्त्रियों में से मात्र 426 स्त्रियाँ साक्षर थी।[11] सन् 1991 में मेवाड़ क्षेत्र की स्त्रियों में साक्षरता 17.40 प्रतिशत था। जो सन् 2001 में बढ़कर 37.88 प्रतिशत हो गया। 12 उदयपुर शहर की महिला साक्षारता दर 1921 में 2.3 प्रतिशत थी जो 2001 में बढ़कर 43.71 प्रतिशत हो गई। शिक्षा को ही बढ़ावा देने हेतु 12 अगस्त 1943 को जयपुर की महारानी गायत्री देवी ने जयपुर में लड़कियों के लिए एक स्कूल खोला।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार द्वारा स्त्रियों में शिक्षा के विकास के गम्भीर प्रयास होने लगे जिससे कि सामाजिक परिवर्तन के लक्ष्यों को हासिल किया जा सके। 1959 में राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट के आधार पर तीसरी पंचवर्षीय योजना में वयस्क स्त्रियों की शिक्षा हेतु कई स्कूली पाठयक्रम प्रारंभ किये गये। बाल सेविका प्रशिक्षण एवं शिशु देखभाल कार्यक्रम प्रमुख था। पांचवी पंचवर्षीय योजना में स्त्रियों हेतु शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि के साथ मुफ्त पाठ्य पुस्तकें, दोपहर का भोजन, गणवेश व छात्रवृति आदि सुविधाएँ लागू की गई। छठी पंचवर्षीय योजना में स्त्रियों के लिए अभियांत्रिक, इलेक्ट्रोनिक्स, कृषि, पशुचिकित्सा, मत्स्य, पालन व वन सम्बन्धी पाठयक्रम में नामांकन हेतु प्रोत्साहित किया गया। छठी पंचवर्षीय योजना 1978-83 के प्रारूप में यह स्वीकार किया कि शिक्षा का लाभ समाज के बहुसंख्यकों तक नहीं पहुँच पाया है। वस्तुत: छठी पंचवर्षीय योजना 1980-85 में अशिक्षा के समूल नाश पर जोर देते हुए व्यापक प्राथमिक शिक्षा के साथ नौकरी अभिनवमुखी शिक्षा का सूत्रपात किया गया। इस योजना में 'महिला और विकास' एक अलग से अध्याय जोड़ा गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में स्त्रियों के लिए छात्रावास प्रशिक्षित महिला अध्यापक, खेलकूद में प्रोत्साहन, प्रतिभाशाली छात्राओं के लिए उच्च शिक्षा में प्रोत्साहन हेतु छातत्रवृति योजना आदि कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये।[13]

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन 1989 में 15 से 35 वर्ष की आयु के 80 मिलियन अशिक्षितों को 1995 तक पूर्ण साक्षर बनाने के ध्येय से प्रारम्भ किया गया। बाद में 9 से 14 वर्ष के आयु समूह को इस में संलग्न करते हुए 17 मिलियन अशिक्षित लोगों की साक्षरता का लक्ष्य निर्धारित किया गया। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन शिक्षा के क्षेत्र में आत्मविश्वास का ही प्रयास नहीं अपितु महिला समानता के मूल्यों के संवर्द्धन का भी एक प्रभावी प्रयास था। राजस्थान, जहां 80 प्रतिशत महिलाएँ 1992 में अशिक्षित थी उनकी साक्षरता हेतु स्वीडिश अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्था (SIDA) के सहयोग से 'लोक जुम्बिश योजना' प्रारम्भ की गई। शिक्षाकर्मी योजना भी समान रूप से सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में पिछड़े गांवों में प्रारम्भ की गई। इसके अलावा (IRDP) (एकीकृत ग्रामीण विकास योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम महिलाओं व बच्चों के विकास के लिए प्रारम्भ की गई। वर्ष 2002 में राजस्थान में साक्षरता के तीसरे चरण में सतत् शिक्षा कार्यक्रम 19 जिलों के लिए तथा PRI कार्यक्रम 21 जिलों के लिए जहाँ बड़ी संख्या में निरक्षर शेष रह गये हैं, स्वीकृत कर ली गई। इसके अलावा राजस्थान के 22 हजार वार्ड पंच से लेकर जिला प्रमुख स्तर तक अशिक्षित जन प्रतिनिधियों हेतु राष्ट्रीय साक्षरता मिशन ने एक प्रशिक्षण कार्यक्रम को स्वीकृति दी हैं जो पूर्ण साक्षरता की दिशा में एक क्रान्तिकारी पहल हैं।

राजस्थान में जिलेवार साक्षरता दर 2011 साक्षरता दर (%)

क्र.सं.	जिले का नाम	समस्त	पुरूष	महिला
1	गंगानगर	69.64	78.5	59.7
2	हनुमानगढ़	67.13	77.41	55.84
3	बीकानेर	65.13	75.9	53.23
4	चुरू	66.75	78.78	54.04
5	झुंझुनु	74.13	86.9	60.95
6	अलवर	70.72	83.75	56.25
7	भरतपुर	70.11	84.1	54.24
8	धौलपुर	69.08	81.22	54.67
9	करौली	66.22	81.41	48.61
10	सवाईमाधोपुर	65.39	81.51	47.51
11	दौसा	68.16	82.98	51.93
12	जयपुर	75.51	86.05	64.02
13	सीकर	71.91	85.11	58.23
14	नागौर	62.8	77.17	47.82
15	जोधपुर	65.94	78.95	51.83
16	जैसलमेर	57.22	72.04	39.71
17	बाड़मेर	56.53	70.86	40.63
18	जालौर	54.86	70.67	38.47
19	सिरोही	55.25	69.98	39.73
20	पाली	62.39	76.81	48.01
21	अजमेर	69.33	82.44	55.68
22	टोंक	61.58	77.12	45.45
23	बूंदी	61.52	75.44	46.55
24	भीलवाड़ा	61.37	75.27	47.21
25	राजसमंद	63.14	78.42	47.95
26	उदयपुर	61.82	74.74	48.45
27	डूंगरपुर	59.46	72.88	46.16
28	बाँसवाड़ा	56.33	69.48	43.06
29	चित्तौड़गढ़	61.71	76.61	46.53
30	कोटा	76.56	86.31	65.87
31	बारां	66.66	80.35	51.96
32	झालावाड़	61.5	75.75	46.53
33	प्रतापगढ़	55.97	69.5	42.35

उपर्युक्त आंकड़े यद्यपि पुरुष तथा महिला साक्षरता के मध्य अंतराल की ओर इंगित करते है तथापि सम्यक रूप में प्रतिशत में बढ़ोतरी हुयी है।

राजस्थान में महिला साक्षरता दर 1991 की जनसंख्या के अनुसार 20.44 प्रतिशत थी जो 2001 में जनगणनानुसार बढकर 44.34 प्रतिशत हो गई। वहीं भारत में महिला साक्षरता दर 2001 में 54.16 प्रतिशत पाई गई। 2001 में राजस्थान में पुरूष साक्षरता 76.46 प्रतिशत थी। पिछले चार दशकों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन से साक्षरता दर में 5 गुणा वृद्धि हुई हैं। [14]

निष्कर्ष

यूनानी दार्शनिक प्लेटो जब आदर्श राज्य की रचना में प्रवृत हुआ, उसने शिक्षा की ओर सबसे पहले ध्यान दिया और शिक्षा को अपने राज्य की बुनियाद माना। उसके राज्य में शिक्षामंत्री का पद सबसे बड़ा पद है वह राज्य का प्रधानमंत्री है। प्लेटो का मानना है कि ''यदि प्रकृति में किसी चीज का आरम्भ शुभ हो और वह अपने स्वाभाविक उत्कर्ष की दिशा में सही ढंग से चले, तो इसका उसकी उचित परिणति पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। '14 प्लेटो की सीख है कि ''अगर व्यक्ति सचमुच शिक्षा तथा प्रखर प्रतिभा से सम्पन्न हो, तो वह समूचे प्राणिजगत् में सबसे अधिक दिव्य और सभ्य बन जाता है पर अगर उसका शिक्षण उचित रीति या उपयुक्त रीति से नहीं होता, तो वह धरती के सारे प्राणियों में सबसे अधिक दुर्धर्ष हो जाता है।''[15] राजस्थान की स्त्रियों के विकास के परिप्रेक्ष्य में भी कमोबेश यही रीति लागू होती है। परिवर्तन की अनेक धाराओं ने राजस्थान की स्त्रियों को शिक्षा सम्यक विकास के अनन्त आयामों से परिचित करवाया और उन्हें सम्पूर्ण विकास की दिशा में अग्रसर किया। शिक्षा के अभाव के कारण ही महिलाओं की स्थिति दयनीय रही है और शिक्षा के सकारात्मक प्रयासों का प्रभाव ही महिला सशक्तीकरण को और अधिक दृढता भी प्रदान करता है। तद्नुसार राजस्थान में महिलाओं की स्थिति में असाधारण परिवर्तन दृष्टिगत होते रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. अरोड़ा, डॉ. शशि, राजस्थान में नारी की स्थिति, तरूण प्रकाशन, बीकानेर 1981, पृ. 1
2. व्यास, गोपालवल्लभ, मेवाड़ का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, राजस्थानी ग्रन्थाकार, जोधपुर, 2006, पृ. 172
3. देपाल, शशि, राजस्थान का बदलता सामाजिक स्वरूप,, राजस्थानी ग्रन्थाकार, जोधपुर, 2011, पृ. 235-36
4. सप्रु, आर.के., वीमेन एण्ड डेवलपमेंट, आशिश पब्लिशिंग हॉउस, 1989, पृ. 116-118
5. शर्मा, प्रज्ञा, भारतीय समाज में नारी, भारतीय समाज में नारी, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2001, पृ. 6। 9
6. गोस्वामी, भालचन्द्र, स्वतंत्र भारत के 50 वर्ष 'प्रखर', पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1998, पृ. 201
7. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 2014, पृ. 520
8. मोहम्मद, ईद, राजस्थान का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2009, पृ. 87
9. अरविन्द आर. गेसू और शर्मा, संजय, शिक्षा सामाजिक गतिशीलता एवं दलित अन्तर्सम्बंध की पडताल, परिप्रेक्ष्य, न्यूपा, नई दिल्ली, वर्ष 15 अंक 1 अप्रैल 2008, पृ. 18
10. व्होरा आशारानी, नारी शोषण, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, नई दिल्ली, 1996, पृ. 19
11. यादव संतोष, 19वीं व 20वीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति, प्रिन्टवेल पब्लिशर्स, जयपुर, 1987, पृ. 100-101
12. प्रतियोगिता दर्पण, मई 2001/1908
13. राज, भन्ती, सोशियल पॉलिसी एण्ड डेवलपमेंट इन राजस्थान, हिमान्शु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 1996, पृ. 74
14. शर्मा, प्रज्ञा, महिला विकास और सशक्तीकरण, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2001, पृ. 152
14. वार्कर, अर्नेस्ट (अनुवादक गुप्त,विश्वप्रकाश), यूनानी राजनीति-सिद्धान्त, अनुवाद निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1967, पृ. 567
15. गुप्ता, विश्वप्रकाश तथा गुप्ता, मोहिनी, आजादी के पचास साल, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1997, पृ. 25

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 90-93

आज का समय और गाँधीवादी कविता

डॉ. विजय कुमार प्रधान
सह आचार्य, हिंदी विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, टोंक (राजस्थान)

शोध सारांश

आधुनिक संसार में जहाँ ईर्ष्या, द्वेष व घृणा मानवीय मूल्यों में परिवर्तित हो चुके हैं, वहां मनुष्य के जीवन का लक्ष्य केवल धन उपार्जन और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही रह गयी है। ऐसे में अहिंसात्मक विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका है, जो न केवल मनुष्य को दिशा दे पाने में समर्थ हैं वल्कि आतंरिक प्रवृत्तियों को भी बदलने में सक्षम हैं। आधुनिक काल में महात्मा गाँधी ही अहिंसा के पर्याय हैं। भारतीय इतिहास में गाँधी की तरह महात्मा बुद्ध के अतिरिक्त ऐसा शक्तिशाली लोक नायक नहीं हुआ,जिन्होंने अहिंसात्मक विचारों के द्वारा मानवीय हृदय को परिवर्तित करने का प्रयास किया है। सम्पूर्ण भारतीय जनमानस को आंदोलित और प्रभावित करने का कार्य महात्मा गाँधी ने किया है।

संकेताक्षर : *सत्य, अहिंसा, मानवतावाद, हिंदी कवि, वैश्वीकरण*

जब वर्तमान शून्य होता है उस समय अतीत से ही हमें प्रेरणा लेने की आवश्यकता होती है। गाँधीजी की रोशनी हमें सर्वदा तमाम अन्धकारों से उजाले की ओर ले आती है। जो गाँधीजी के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित नहीं हैं वे आसानी से भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास में उनके अतुलनीय योगदान को नकार कर सतही तौर पर 'मजबूरी का नाम गाँधीजी' कह सकते हैं, परन्तु जिनको भारतीय स्वतंत्रता इतिहास की थोड़ी भी जानकारी है और वर्तमान में जिन्हें मानवीय मूल्यों पर विश्वास है उनके लिए 'मजबूती का नाम गाँधीजी' है। विश्व के समक्ष जितनी भी चुनौतियाँ हैं उनका सामना करने के लिये गाँधी-मार्ग को ही चुनना होगा। नेल्सन मंडेला ने गाँधीजी के मानवता के लिए उनके योगदान को स्वीकारते हुए कहा था कि गाँधी दर्शन 21वीं सदी में मानवता को राह दिखाने वाली चाबी होगा। यह आज सौ प्रतिशत सच साबित हो रहा है। वैश्विक स्तर पर हमारे समक्ष आज विकट चुनौतियाँ हैं जो गाँधीजी के समय भी थीं,परन्तु उन्होंने सभी समस्याओं पर विचार कर सहजतापूर्वक समाधान दिया है। स्वार्थी एवं मोहग्रस्त होकर हम उस रास्ते से भटक गए हैं, उन समाधानों को पुन: आज के समय में परख कर व्यावहारिक बनाने की दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है।

भारत के समक्ष कुछ चुनौतियाँ हैं, कुछ प्रश्न हैं, संशय है--जो भारत के विकास में अवरोधक तो हैं ही साथ में मानवता के लिए भी घातक हैं। भौतिकता प्रधान जीवन शैली में भौतिक विकास को ही अधिक महत्व दिया जा रहा है आत्मिक विकास की और किसी की चिंता नहीं है। विकास की अंधी दौड़ में विकास वस्तुगत हो रहा है, मनुष्यगत नहीं। इसके परिणामस्वरूप ही आज गोरक्षा, साम्प्रदायिकता, धर्म परिवर्तन, किसान आत्महत्या,दलित समस्या, आतंकवाद,पर्यावरण, मानवीय मूल्यों का ह्रास आदि कई समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। उनके समय में भी समस्याएँ थीं परन्तु उन्होंने इससे बाहर निकलने के लिए मार्ग खोजा था परन्तु हम उस मार्ग को भुलाकर अंधी विकास के दौड़ में उन समस्याओं को विकराल ही बनाया है। जब कभी संसार में किसी ने अमानवीयता के विरुद्ध लम्बी लडाई लड़ी है तो गाँधी-मार्ग पर ही चल कर सफलता पाई है, चाहे वह मार्टिन लूथर हों या नेल्सन मंडेला हों। हमें भी उनके बताये रास्ते पर चल कर ही लडाई लड़नी है। आज वक्त की जरुरत है गाँधीजी, हमें चलना तो उसी मार्ग पर परन्तु यह देखना शेष है कि कबतक हमलोगों में जागृति आती है। आज जब हम समाज को देखते हैं तो ये दोनों ही बातें हमारे सामने हो रही हैं और यही साम्प्रदायिक दंगे के कारण बनते हैं। इसी

लेख में आगे गाँधीजी ने सांप्रदायिक लडाई के लिए राजनेताओं को ही जिम्मेदार माना है। उनका यह मानना है कि नेता न लड़ना चाहे तो आम जनता लडाई नहीं करना चाहती। रामधारी सिंह दिनकर ने आधुनिक जीवन में गान्धीजी की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए लिखा है-''जिस गांधी ने भारतवर्ष को स्वराज्य दिलाया था, उस गांधी को तो इस देश ने राष्ट्रपिता बनाकर रख लिया, किन्तु जो गाँधी उससे बड़ा गांधी था, उसे हमने निर्वासित कर दिया, क्योंकि उसे घर में बनाये रखने पर हम झूठ नहीं बोल सकेंगे, जरूरतें नहीं बढ़ा सकेंगे और सरहद पर ललकारने वाले शत्रुओं को देख कर हम अहिंसा की दुहाई नहीं दे सकेंगे। गांधी ने कहा था, सत्य के बिना अहिंसा चल नहीं सकती। हमने सत्य को तो छोड़ दिया, मगर अपनी कमजोरी छिपाने को अहिंसा की चादर और भी गाढ़ी बुनकर ओढ़ ली। जो गाँधी हमारी जरूरतों का गाँधी था, उसे हमने नहीं छोड़ा है, मगर जो गाँधी मानवता का गाँधी था, उसे हमने अपने घर से निकाल दिया है। मगर गांधी को जिन्दा रखने की कोशिश अगर कहीं है, तो वह साहित्य में ही है। साहित्य में भी कितने लोग हैं जो गांधी को जिन्दा रखना चाहते हैं?''[1] यह प्रश्न केवल साहित्य में ही क्यों जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह प्रश्न है कि गांधीजी को कितने लोगों ने गम्भीरता से पढ़ा है या पढना चाहते हैं, उनके बारे में जानना चाहते हैं। सोशल मीडिया के दौर में फेक न्यूज़ ही जब साधारण ज्ञान एवं सत्य का परिमापक होने लगा है तब सत्य को संघर्ष ही करना पड़ता है। अहिंसा दम तोड़ती हुई प्रतीत होती है क्योंकि किसी भी देश के चित्रों को दिखाकर सांप्रदायिक दंगा भड़काया जा रहा है तब व्यक्ति सत्य से कोसों दूर रहकर किसी एक गुट में जाकर शामिल हो जाता है। ऐसे में साहित्य के माध्यम से गांधीजी के विचारों को अवगत कर अहिंसा, मानवता आदि की भावना को पुनर्स्थापित करना साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों एवं हमारा उत्तरदायित्व है।

प्राचीन काल से ही हमारे देश में विभिन्न धर्म एवं उनके साहित्य ने अहिंसात्मक मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। यह केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व में समस्त प्रधान धर्मों के वाङ्मय में अहिंसा का महत्व है। अहिंसा परमो धर्म: कह कर इसे धर्म के रूप में मान्यता दी गयी है। अहिंसा की महत्ता को वेद, उपनिषद्, दर्शन शास्त्र,पुराण एवं समस्त साहित्य स्वीकार करते हैं। बौद्ध एवं जैन धर्म में भी अहिंसा के प्रति निष्ठा व्यक्त की गयी है। प्राचीन भारतीय साहित्य में मानवीय एकता का भाव सर्वत्र है। ''गाँधी का प्रभाव हिंदी-साहित्य पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष, दोनों रीतियों से पड़ा प्रत्यक्ष प्रभाव के माध्यम थे : (क) व्यक्तित्व और व्यक्तिगत उपलब्धियों, (ख) नैतिक आदर्श, (ग) सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत एवं कार्यक्रम अप्रत्यक्ष प्रभाव का संधान दो प्रकार से किया जा सकता है (1) जीवन और साहित्य के मूल्यों की नवीन व्याख्या के रूप में, (2) जीवन और साहित्य में लक्षित क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में।''[2]

संत साहित्य से लेकर समकालीन साहित्य तक कविताओं का मूल स्वर समाज में मानवतावादी विचारधारा का विकास करना रहा है। आधुनिक काल में गांधीजी ने व्याप्त जातिभेद, सम्प्रदाय भेद आदि को दूर कर समता, समानता व मानवता की प्रतिष्ठा की। आज के समय में गांधीजी अधिक प्रासंगिक हो गए हैं क्योंकि आज धर्म का राजनीतिकरण हो गया है एवं वोट बैंक का हथियार बन गया है। अचानक हिन्दू-मुस्लिम अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ एवं दूसरे को निकृष्ट प्रमाणित करने के लिए उन्माद फैलाने में लगे हुए हैं, ऐसे में गांधीजी का मानवतावाद अँधेरे से निकाल कर हमें उजाले की ओर ले जाता है। गांधीजी का संघर्ष मानवता के लिए था। समाज के सभी वर्गों के अन्दर आत्मविश्वास जगाने का कार्य उन्होंने किया। आज धर्म के नाम पर हत्या और घृणा फैलाई जा रही है। मानवता गौण होती जा रही है। आधुनिक संसार में जहाँ ईर्ष्या, द्वेष व घृणा मानवीय मूल्यों में परिवर्तित हो चुके हैं, वहां मनुष्य के जीवन का लक्ष्य केवल धन उपार्जन और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही रह गयी है। ऐसे में अहिंसात्मक विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका है, जो न केवल मनुष्य को दिशा दे पाने में समर्थ हैं बल्कि आतंरिक प्रवृत्तियों को भी बदलने में सक्षम हैं। आधुनिक काल में महात्मा गाँधी ही अहिंसा के पर्याय हैं। भारतीय इतिहास में गाँधी की तरह महात्मा बुद्ध के अतिरिक्त ऐसा शक्तिशाली लोक नायक नहीं हुआ, जिन्होंने अहिंसात्मक विचारों के द्वारा मानवीय हृदय को परिवर्तित करने का प्रयास किया है। सम्पूर्ण भारतीय जनमानस को आंदोलित और प्रभावित करने का कार्य महात्मा गाँधी ने किया है।

गाँधीजी अहिंसा के पुजारी थे, अत: गोरक्षा के लिए किसी इंसान के साथ हिंसा कर हम उनके विचारों का अपमान ही करते हैं। भारतीय इतिहास का उदहारण देते हुए गाँधीजी ने अहिंसा के महत्व को समझाया है। उन्होंने गोवध को रोकने के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनों को नसीहत दी है। समाज में गाय के नाम पर जो विद्वेष फैलाया जा रहा है उसका विरोध करते हुए लिखा है -''हिन्दू और मुसलमान मुँह से तो कहते हैं कि धर्म में जबरदस्ती को कोई स्थान नहीं है। लेकिन यदि हिन्दू गाय को बचाने के लिए मुसलमान की हत्या करें, तो यह जबरदस्ती के सिवा और क्या है ? यह तो मुसलमान को बलात हिन्दू बनाने जैसी ही बात है। और इसी तरह मुसलमान जोर-जबरदस्ती से हिन्दुओं को मस्जिदों के सामने

बाजा बजाने से रोकने की कोशिश करते हैं, तो यह भी जबरदस्ती के सिवा और क्या है?''[3]

महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि उनके द्वारा प्रचारित सत्य और अहिंसा ने भारतीय जनमानस में गहरी छाप छोड़ी। इसके प्रभाव में आकर हिंदी कवियों ने सत्य और अहिंसा को काव्य-विषय के रूप में चुनाव किया तथा जनमानस के आतंरिक प्रवृतियों को प्रभावित किया है। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पन्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी और भवानीप्रसाद मिश्र जैसे कवियों ने गाँधी के विचारों एवं कर्मों से प्रभावित होकर काव्य-सृजन किया है। कविता वह माध्यम है, जिसके द्वारा मनुष्य की चित्तवृतियों को प्रभावित किया जा सकता है। स्वत्रंतता आन्दोलन के समय गाँधीवादी कविताओं ने जनमानस की चेतना को जागृत करने का कार्य किया है। गांधीजी के व्यक्तित्व और उनकी विचारधारा का प्रभाव हिंदी साहित्य में सन 1919 से लेकर आजतक विद्यमान है। आज के उपभोक्तावादी जटिल जीवन में भी मानव-कल्याण के लिए मानवीय प्रेम और अहिंसा ही एकमात्र उपाय है। हिंसा पर सदैव अहिंसा की विजय का विचार गाँधीवादी कवियों ने प्रतिपादित किया है। इसीलिए गाँधीवादी कविताओं को पुन: वर्तमान के सन्दर्भ में देखने की आवश्यकता है। गांधीजी अपने समय के अग्रदूत थे। कोई उन्हें मसीहा कहता है तो कोई उन्हें देवता परन्तु हिंदी रचनाकारों के लिए मानवता के अग्रदूत हैं। सियारामशरण गुप्त को गाँधी युग का प्रतिनिधि कवि माना जाता है। गाँधी अध्ययन, जय गाँधी और सेवाग्राम काव्य-संग्रह के रचयिता सोहनलाल द्विवेदी ने भी गांधी को मानवता का पुजारी माना है। ''धर्माडंबर के खँडहर पर/कर पद-प्रहार, कर धराध्वस्त/मानवता का पावन मंदिर/निर्माण कर रहे सृजनव्यस्त!''[4] सत्याग्रह, खादी और स्वराज्य तथा समकालीन घटनाओं के सन्दर्भ में कविताओं की रचना हुई है। डॉ.नगेन्द्र के अनुसार-''भारतीय आदर्शवाद की दृष्टि जिसका कि प्रतीक सम्प्रति गांधीवाद है---तीन पक्ष हैं। एक सौन्दर्यमय अनुभूत्यात्मक पक्ष, दूसरा राष्ट्रीय- सांस्कृतिक पक्ष, और तीसरा दार्शनिक-नैतिक पक्ष। पहले की अभिव्यक्ति छायावाद में हुई है, और दूसरे की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं में। तीसरे की अभिव्यक्ति अपेक्षया विरल है। वह हिंदी के केवल एक ही प्रमुख कवि सियाराम शरण गुप्त में मिलती है।''[5] सियाराम शरण गुप्त प्रतिबद्ध गाँधीवादी कवि हैं। उनकी काव्य चेतना का मूल स्वर सत्य एवं अहिंसा है। उन्होंने जीवन की सामान्य घटनाओं से चिरन्तन सत्य की खोज की है। उनके द्वारा रचित 'बापू' में महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा आदि सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। उनके अनुसार जीवन में घृणा और पाशविकता को दूर केवल स्नेह से ही किया जा सकता है। अहिंसा के गीत गाने वाले गांधी की वाणी में नारायण के रूप को देखते हैं- ''धन्य वह कालतीर्थ कालातीत, बोला जहाँ नारायण नर में,/सत्यमेव जयते अहिंसा गीत, गूंजा है जहाँ शुद्ध स्वर में।''[6]

सुमित्रानंदन पन्त के लिए गांधीजी मनुष्यत्व के अग्रदूत हैं-''आज के जड़वाद से अभिभूत जगत में गांधीजी का आविर्भाव अपना विशेष अर्थ रखता है। आज के बहिर्भ्रांत, वस्तु स्थितियों के अधीन मनुष्य को अंतर्मुखी जीवन का महत्व सिखलाकर उसे आत्मस्थित, अंत:स्थित करने के लिए गांधीजी मनुष्यत्व के एक अग्रदूत से आये थे।''[7] आज के सन्दर्भों में भी अगर देखा जाये तो यह कहा जा सकता है कि अति-भौतिकतावादी युग में जब मानवीय मूल्य समाप्त हो गए हों तो आत्ममन्थन, आत्मविश्लेषण एवं आत्मसमीक्षा के लिए गांधीजी के विचारों से ही हम प्रेरणा लेने की जरूरत है। जीवन के अन्दर स्वार्थ को विशेष महत्व न दे कर हमें मानवीय मूल्यों की दृष्टि से सम्पूर्ण समाज को देखने की आवश्यकता है। गांधीजी के आगमन के साथ ही सत्य और अहिंसा के मूल स्वर से सम्पूर्ण मानवता को नव संस्कृति का सन्देश दिया है परन्तु हम कितना निर्माण कर पाए यह एक ज्वलंत प्रश्न हमारे सामने है।

वैश्वीकरण के इस दौर में जब वैश्विक अर्थव्यवस्था सभी देशों को प्रभावित कर रही है और सभी एक व्यापारिक हितों के कारण जुड़े हैं या फिर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रक्तपात कर युद्ध कर रहे हैं वैसे में गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी की धरती समग्र विश्व को मानवतावाद का सन्देश देती है। गांधीजी ने अपने यंग इंडिया के लेखों और विचारों में सर्वदा विश्व शांति का सन्देश दिया है। उनका ऐसा मानना था कि युद्धोन्माद के उपरांत विश्व-शांति की तरफ ही सबको लौटना होगा। रामधारी सिंह दिनकर ने इन्ही विचारों से प्रभावित होकर युद्ध की समस्या को लेकर 'कुरुक्षेत्र' काव्य की रचना की है। इसमें दोनों प्रमुख पात्र भीष्म एवं युधिष्ठिर दोनों ही अहिंसा के समर्थक हैं. इसी मानवतावाद का सन्देश सुमित्रानंदन पन्त ने 'लोकायतन' महाकाव्य में बापू को श्रद्धांजलि देते हुए लिखा है - ''बापू मृत ! अमर रहें वह, नैतिक जग के उन्नायक,/सित, रक्त-रहित, आध्यात्मिक/जीवन रण के अधिनायक!/बन सके अहिंसा भू पर/ध्रुव विश्व शान्ति परिचायक,/जग में नव मानवता के/युग आत्मा बनें विधायक !''[8] कवि गांधीजी को आधुनिक युग में मानवता का प्रतीक मानते हैं। इनके अलावा भगवतीचरण वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, नरेंद्र शर्मा आदि कवियों ने अहिंसा का समर्थन करते हुए कविताओं की रचना की है।

आधुनिक नारी एवं दलित विमर्श की कवितायें भी गांधीजी के मानवतावादी विचारों के समर्थक हैं।

आधुनिक समाज में जहाँ ईर्ष्या, द्वेष, घृणा अमानवीय जीवन में समाहित हो चुके हों, वहां मनुष्य के जीवन का प्रयोजन केवल धन उपार्जन और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति रह गयी है, ऐसे में गांधीजी की मानवतावाद की अवधारणा को व्यावहारिक रूप से देखना आवश्यक हो जाता है। इसलिए हमें 15 अगस्त, 26 जनवरी, 2 अक्टूबर का गाँधी, 30 जनवरी का गांधी, राजघाट की गाँधी, साबरमती का गांधी, वोट मांगने की गांधी, नोट पर छपे गांधी से आगे बढ़ना होगा। हिंदी कविता में अभिव्यक्त साहित्यकारों के गांधी-मार्ग पर चलकर ही हम भारत के लिए देखे गए उनके सपनों को पूरा करना होगा। कवि बाबा नागार्जुन के शब्दों में करोड़ों भारतीय जनता को संकल्प लेना होगा कि - ''यह शान्ति और समता की तेरी दीपशिखा/बुझने न पाएगी छन भर भी/परिणत होगी आलोकस्तम्भ में कल-परसों/मैदानों के कांटे चुन-चुन/पथ के रोड़ों को हटा-हटा/तेरे उन अगणित स्वप्नों को/हम रूप देंगे/हम कोटि-कोटि/तेरी औरस संतान, पिता!''[9]

सन्दर्भ सूची

1. दिनकर, रामधारी सिंह, हिंदी साहित्य पर गांधीजी का प्रभाव, दिनकर राचनावली -6, लोक भारत प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 173
2. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य पर गाँधी का प्रभाव, डॉ. नगेंद्र ग्रंथावली, खण्ड -7, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1997, पृ. 325
3. यंग इण्डिया, 24-12-31
4. द्विवेदी, सोहनलाल द्विवेदी, युगावतार गाँधी, भवानीप्रसाद मिश्र का 'गांधी पंचशती', सरला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1969, पृ. 273
5. नगेन्द्र, आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1966, पृ. 45
6. गुप्त, सियाराम शरण, बापू, साहित्य-सदन, चिरगांव, झांसी, पृ. 20
7. पन्त, सुमित्रानंदन, पन्त ग्रंथावली भाग-6, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 533
8. पन्त, सुमित्रानंदन, लोकायतन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1964, पृ. 143
9. नागार्जुन, तर्पण, नागार्जुन रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 93

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 94-97

सामाजिक मीडिया : नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन

जय प्रकाश सिंह

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राजस्थान)

डॉ. विष्णु कुमार

शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राजस्थान)

शोध सारांश

पिछले कुछ वर्षों में विज्ञान के विकास से सूचना प्रसारण के क्षेत्र में जो क्रांति आयी है उससे भारतीय परिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शैक्षिक क्षेत्रों में सोशल मीड़िया ने काफी दुष्प्रभावित किया है। समाज के सभी वर्ग (अभिभावक वर्ग, शिक्षक वर्ग, नेता वर्ग, अधिकारी वर्ग) चिन्तित हैं कि भारत में सोशल मीड़िया के क्षेत्र में फेसबुक, व्हाट्सऐप, ट्विटर, यू-ट्यूब एवं गूगल प्रमुख रूप से प्रभावित कर रहे हैं। इसके माध्यम से रहन-सहन, भाषा, विचार, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य भी प्रभावित हो रहे हैं। आज किशोरावस्था एवं युवावर्ग के लोग इस तरह आदी हो गये हैं कि इसके बिना एक दिन नहीं रह सकते। या यूं कहूं तो इसके बिना शायद जीवन की कल्पना करना नहीं चाहते, अत: ''अति सर्वत्र वर्जयते'' कहावत ठीक ही बैठती है। आज इसी विषय पर मेरी कोशिश रहेगी कि समाज के बुद्धिजीवी वर्ग, शिक्षा वर्ग एवं अभिभावक वर्ग को इस ज्वलन्त समस्या सामाजिक मीडिया द्वारा प्रभावित होने वाले क्षेत्र, सामाजिक मीडिया द्वारा नैतिक मूल्यों पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के उपाय पर प्रकाश डाल सकूं ताकि आगे इस पर शोध एवं सम्वर्धन कर उज्वल भविष्य की ओर ले जाया जा सके।

संकेताक्षर : *सोशल मीडिया, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य, अवमूल्यन, भूमिका*

आज किशोरों एवं युवाओं में सोशल मीडिया के आकर्षण, चकाचौंध के कारण समाज का प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित हुआ है। कहते हैं कि हर सिक्के के दो पहलू होते हैं- अच्छा और बुरा। इसका प्रभाव भी सामने आया है। एक तरफ अच्छाई के रूप में देखें तो कम समय में अधिक लोगों से सम्पर्क, पूरी दुनिया एक समाज का हो जाना, अभिव्यक्ति की आजादी, कम खर्च में प्रचार-प्रसार, प्रियजनों से सीधा सम्पर्क, मनोरंजन, ज्ञान का नया भण्डार, पैसे कमाने का जरिया आदि-आदि के रूप में। वहीं इसके अनेक दोष भी सामने दिख रहे हैं। आज इसी विषय पर मेरी कोशिश रहेगी कि समाज के बुद्धिजीवी वर्ग, शिक्षा वर्ग एवं अभिभावक वर्ग को इस ज्वलन्त समस्या पर प्रकाश डाल सकूं ताकि आगे इस पर शोध एवं सम्वर्धन कर उज्वल भविष्य की ओर ले जाया जा सके। पिछले कुछ वर्षों में विज्ञान के विकास से सूचना प्रसारण के क्षेत्र में जो क्रांति आयी है उससे भारतीय परिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शैक्षिक क्षेत्रों में सोशल मीडिया ने काफी दुष्प्रभावित किया है। समाज के सभी वर्ग (अभिभावक वर्ग, शिक्षक वर्ग, नेता वर्ग, अधिकारी वर्ग) चिन्तित हैं कि भारत में सोशल मीडिया के क्षेत्र में फेसबुक, व्हाट्सऐप, ट्विटर, यू-ट्यूब एवं गूगल प्रमुख रूप से प्रभावित कर रहे हैं। इसके माध्यम से रहन-सहन, भाषा, विचार, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य भी प्रभावित हो रहे हैं। आज किशोरावस्था एवं युवावर्ग के लोग इस तरह आदी हो गये हैं कि इसके बिना एक दिन नहीं रह सकते। या यूं कहूं तो इसके बिना शायद जीवन की कल्पना करना नहीं चाहते, किन्तु ''अति सर्वत्र वर्जयते'' कहावत ठीक ही बैठती है। उदाहरण स्वरूप चाय में अधिक मीठा डालने से चाय का स्वाद, चाय कम शरबत हो जाता है। ठीक उसी प्रकार संचार व्यवस्था के विकास से इन सोशल मीडिया के अत्यधिक तेजी एवं अंधाधुंध उपयोग से बुरा प्रभाव पड़ा है।

सामाजिक मीडिया द्वारा प्रभावित होने वाले क्षेत्र

परिवारिक क्षेत्र

आज परिवार के सभी सदस्य इस तकनीकी युग में काफी व्यस्त रहते हैं। जिससे अब वे पारिवारिक सदस्यों के बीच जो भावात्मक एवं संवेगात्मक रूप से जुड़ने का समय नहीं मिलता है। अब तो

तकनीकी संचार का इतना उपयोग हो रहा है कि एक घर में रह रहे बच्चे और माता-पिता भी अपने बच्चे से व्हाट्सऐप द्वारा मैसेज भेजकर बातें करते हैं। परिवार के सदस्य यदि एक साथ मिल भी जाते हैं तो आपस में कोई दूसरी चीजें शेयर तो कर लेते हैं पर अपना मोबाइल एक-दूसरे सदस्यों से शेयर नहीं करना चाहते। क्या कभी आपने सोचा है ऐसा क्यों? इससे अकेलापन, अन्तर्मुखी एवं स्वार्थी प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगती है जबकि तीन दशक पहले यदि मोहल्ले में किसी एक व्यक्ति के पास फोन होता था तो भी मोहल्ले के सभी व्यक्तियों का संदेश उस व्यक्ति द्वारा सम्बन्धित व्यक्ति को प्राप्त हो जाता था। अर्थात् मोहल्ले के सभी सदस्य आपस में भावात्मक एवं संवेगात्मक रूप से जुड़ जाते थे और आपसी समरसता का विकास होता था। आज परिवार में सदस्यों के बीच आपसी समरसता उत्पन्न नहीं हो रही है। इससे बच्चों के प्रति सुरक्षात्मक भाव एवं नैतिक अवमूल्यन से अभिभावक परेशान हैं।

भाषा विज्ञान के क्षेत्र

आज सोशल मीडिया के व्हाट्सऐप के मैसेज को ही देख लीजिए। इसके सैंकड़ों उदाहरण आपके सामने हैं। जैसे-हिन्दी में नमस्ते की जगह हाथ जोड़े चित्र लगा देते हैं। प्लीज की जगह Plz लिख देते हैं, All is well लिखना हो तो A is और घंटी का चित्र, अंग्रेजी में You are welcome की जगह U R घंटी का चित्र Kom लगा देते हैं। इसका अन्य दुष्प्रभाव यह हो रहा है कि किशोर एवं युवाओं में भाषा शैली, पत्र-लेखन कला, अपनी बात भावों को रचनात्मक रूप से प्रस्तुत करने कला बिल्कुल विलुप्त होने की दिशा में जा रही है। हिन्दी की वर्तनी हो या अंग्रेजी का वाक्य दोनों ही दुष्प्रभावित हुए हैं। क्या कभी आपने सोचा है कि यह कौन-सी भाषा है? यह एक नई भाषा एवं संस्कृति को जन्म दिया है जिसमें कोड़ शब्द + संकेत या तस्वीर लगाकर अपनी बात को मैसेज में भेजते हैं जो कि आने वाली पीढ़ी के लिए घातक सिद्ध होगी। किशोर में न पूर्णत: हिन्दी और न ही पूर्णत: अंग्रेजी भाषा पर अधिकार हो पायेगा, साथ ही साथ कभी-कभी इस भाषा द्वारा अर्थ का अनर्थ भी सामने देखने को मिलता है। जिससे आपसी मन-मुटाव, रंजिश, चरित्रहीनता तक की बात हो जाती है।

सामाजिक क्षेत्र

कुछ किशोर या युवाओं द्वारा अपने मोहल्ले में किसी पड़ोसी से जिससे थोड़ी भी रंजिश, तनाव या झगड़ा होने पर उसकी बुराई के लिए सोशल मीडिया पर उसकी फोटो डालकर कुछ अपशब्द लिखकर मैसेज भेज देते हैं। कभी-कभी फोटोशॉप के माध्यम से उसके फोटो के साथ अश्लील फोटो जोड़कर प्रस्तुत कर देते हैं जो एक सोशल क्राइम है। इससे समाज में न सिर्फ उसके बल्कि पूरे मोहल्ले, समाज एवं देश के लिए शर्मसार हो जाता है। उस व्यक्ति या युवती इस आधुनिकता के प्रतीक नवीनतम आविष्कार क्रान्ति सोशल मीडिया के दुरूपयोग के शिकार हो जाते हैं इस तरह के फेसबुक पर अधिकांशत: फोटो देखकर एक-दूसरे को दोस्त बनाते हैं। इससे कुछ लोग आपस में एक-दूसरे को पसन्द करने लगते हैं। ये धीरे-धीरे इन्टरनेट चैटिंग के द्वारा प्रेम प्रसंग का रूप ले लेता है। जब कभी विपरीत लिंग, महिला पुरुष का आमना-सामना होता है तो पैर तले जमीन निकल जाती है। वास्तविक रूप और फेसबुक पर की फोटो से काफी अन्तर होता है। उसके सपने टूट जाते हैं। एक-दूसरे को अपशब्द, गाली-गलौज यहां तक हिंसात्मक व्यवहार का भी प्रदर्शन हो जाता है।

राजनीतिक क्षेत्र

आधुनिक समय में राजनीतिक क्षेत्र में दुष्प्रभाव काफी अधिक है। आजकल देश के सभी राजनेता लोगों को ही देख लीजिए, चाहे कोई 'सत्ता पक्ष' हो या 'विपक्ष' के नेता किसी प्रकरण में एक राजनीतिक विचारधारा पर किसी नेता के द्वारा किसी कार्य का समर्थन करते हुए ट्वीटर पर कोई मैसेज ट्विट कर देते हैं तो बस क्या है। आगे समर्थकों और विरोधियों के कार्यक्षेत्र अब कुरूक्षेत्र की रणभूमि की तरह ट्वीटर पर संदेशों का तांता लग जाता है इसमें जो भाषा का प्रयोग अभद्रता, लांछन, तीखा प्रहार होता है। यहाँ तक कि आजतक इसके माध्यम से किसी भी व्यक्ति को टारगेट किया जा सकता है।

धार्मिक क्षेत्र

धार्मिक क्षेत्र में और भी बुरा हाल है। आप किसी भी धर्म के आराध्य देवी-देवता की फोटो लगाकर उनके अच्छे विचारों की दो-तीन पंक्तियां लिखकर उसे लाइक कर सोशल मीडिया के किसी भी प्लेटफार्म पर (फेसबुक, व्हाट्सऐप, यू-ट्यूब, ट्वीटर) डाल देते हैं साथ में आप ये लिखना न भूलें कि आपकी हर ईच्छा पूरी होगी यदि आप इसे 11 या 21 लोगों को मैसेज भेज देंगे। आधुनिकता के इस युग में जहां बुद्धिजीवी लोग अमेरिका, जापान, चीन आदि विकसित देशों में '7 जी' नेटवर्क लांच हो रहा हैं वहां भारत में किशोर एवं युवाओं द्वारा 4 जी नेटवर्क में केवल मैसेज डालकर अपनी गरीबी, भुखमरी एवं भ्रष्टाचार दूर करने के लिए मैसेज-मैसेज खेल रहे हैं। क्या कभी आपने सोचा है? यह कैसी विडम्बना है जो भारत में फलफूल रही है। टी.वी. पर धार्मिक गुरु को देख लेवें, किसी व्यक्ति की समस्या का निदान वे समोसे या रसगुल्ला खिलाकर दे रहे हैं आदि। इतना ही नहीं एक धर्म के

धर्मगुरुओं द्वारा दूसरे धर्म के प्रति हीन भावना व्यक्त किये जाने से अन्य धर्म के लोग ठेस पहुंचते ही एक-दूसरे के प्रति हीनता, द्वन्द्व, द्वेष, कभी-कभी तो दंगे का रूप भी ले लेते हैं।

मनोवैज्ञानिक क्षेत्र

वर्तमान में किशोर एवं युवाओं सोशल मीडिया से इतने जुड़े हैं कि अब इनको नशा या लत के रूप ले लिया है। इसमें अपना घंटों समय व्यतीत करने लगे हैं जिसके कारण अपने परिवार के सदस्यों के साथ जितना समय दिया जाना चाहिए या यूं कहें कि ध्यान देना चाहिए नहीं दे पाते हैं। इससे संवेगात्मक, सामाजिक, भावात्मक रूप से आपसी जुड़ाव या लगाव दिनों-दिन कम होते जा रहा है। इस प्रकार जहां मनोवैज्ञानिक रूप से आपसी प्रेम, भाई-चारा, सहिष्णुता बढ़ने की बजाय नैतिक मूल्यों में गिरावट दिखाई दे रही है।

शारीरिक विकास क्षेत्र

वर्तमान समय में देखने में आ रहा है कि किशोर एवं युवाओं में 'आउटडोर एक्टिविटी' बन्द सी होती दिखायी दे रही है। एक ही जगह पर बैठे, लेटकर एवं कुछ जंक फूड खाते रहने से उनमें तरह-तरह की बीमारियां उत्पन्न हो रही हैं। जैसे-मोटापा, उच्च रक्तचाप आदि। इससे व्यक्ति के शारीरिक विकास एवं व्यवहार में परिवर्तन दिखता है। उनमें चिड़चिड़ापन, आक्रोश, धैर्य की कमी आदि। इस तरह के नैतिक मूल्यों का ह्रास होते हुए दिख रहा है।

शिक्षा क्षेत्र

जो किशोर एवं युवा शिक्षा क्षेत्र के इस सोशल मीडिया से जुड़े हैं वे सभी किसी विषयवस्तु शीर्षक पर नवीनतम ज्ञान समय से पूर्व प्राप्त कर लेते हैं। यहां तक कि उन्हें जो उनकी उम्र के पड़ाव पर नहीं जानना था वह भी जान लेते हैं। अर्थात् समय से पूर्व ही सबकुछ जान लेते हैं इससे वे अपनी कक्षा में शिक्षक द्वारा पाठ्यक्रम की पढ़ाई में उदासीन होते हैं क्योंकि वे पहले से ही वे बातें जान चुके होते हैं। कक्षा में बातचीत करना, अनुशासनहीनता, गंदी हरकतों का व्यवहार करना प्राय: देखने में आता है। ये आज शिक्षक के सामने चुनौती के रूप में हो रही है। कभी-कभी तो छात्र कक्षा में पीछे मोबाइल लेकर सोशल मीडिया से जुड़े रहते हैं। शिक्षक द्वारा पूछे जाने पर वे झूठ बोल देते हैं कि आपका व्याख्यान रिकॉर्ड कर रहा हूं। इस तरह के नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है।

खेलकूद का क्षेत्र

आजकल विशेष रूप से किशोरावस्था के छात्र ऐसे सोशल मीडिया पर वीडियो गेम उपलब्ध है जिनके प्रयोग से वे आत्महत्या की घातक घटना तक पहुंच रहे हैं। युवाओं में विभिन्न तरह के खेलों (क्रिकेट, फुटबाल, हॉकी आदि) में भी सट्टेबाजी, जुआ आदि अनैतिकता की प्रवृत्ति को बढ़ावा देखने में आ रहा है।

कार्यक्षेत्र

कार्यक्षेत्र में सोशल मीडिया का उपयोग वर्तमान में कार्यरत व्यक्तियों द्वारा अधिकांशत: किया जा रहा है जिससे उनकी कार्यक्षमता में विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। कार्यक्षमता का भरपूर उपयोग नहीं हो पा रहा है जिससे उत्पादकता एवं गुणवत्ता में ह्रास पाया जा रहा है। जैसे- परीक्षा भवन में शिक्षक वर्ग द्वारा मोबाइल पर सोशल मीडिया से जुड़े रहना, संसद सत्र में नेताओं द्वारा अपने मोबाइल पर अनैतिक वीडियो को देखा जाना आदि।

उपरोक्त विवेचनाओं से स्पष्ट है कि सोशल मीडिया से आज काफी हद तक नैतिक मूल्यों के हनन को बढ़ावा मिल रहा है।

सामाजिक मीडिया द्वारा नैतिक मूल्यों पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के उपाय

दुनिया के बुद्धिजीवी लोग ऐसे तरीके ढूंढने की कोशिश में हैं जो आधुनिकता को खारिज नहीं करते मगर उनकी समस्याओं को दूर करने का प्रयास जरूर करते हैं। किसी भी समाज के राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास के लिए शिक्षा एक आधारभूत एवं सबल साधन है जिसके माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान एवं अनुभव को रूपान्तरित किया जाता है। भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जी का कहना ठीक ही था कि ''शिक्षा का उद्देश्य चरित्र और मानव मूल्यों का विकास करना, तकनीकी के द्वारा सीखने की सामर्थ्य बढ़ाना और बच्चों में भविष्य का सामना करने का आत्मविश्वास का निर्माण करना है। '' शिक्षा के क्षेत्र में सबसे दिलचस्प प्रयोग तकनीकी साधनों के विकास एवं उसके उपयोग से पैदा होने वाली समस्याओं की रही है। शिक्षाविदों के मुताबिक रचनात्मक सवाल यह हमेशा से बनी रही है कि ऐसी पाठ्यचर्चा और कक्षाएं कैसी रची जाएं जो बच्चों को काल्पनिक दुनिया एवं प्रतिस्पर्धा मशीन की बजाय परस्पर सहयोग के माध्यम से आगे बढ़ने को प्रोत्साहित करे।

1. घर का पारिवारिक माहौल- कहते हैं कि प्रथम पाठशाला तो बच्चे का घर होता है और प्रथम शिक्षिका माँ। बच्चों में इसी माहौल से सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों की नींव पड़ती है। बच्चे अपने बड़ों के आचरण से ही सीखते हैं। इसलिए जरूरी है कि परिवार के अन्य बड़े सदस्य सोशल मीडिया की लत से दूर रहें।

2. अभिभावक- अभिभावक अपनी अनमोल सम्पत्ति संतान से ज्यादा भौतिक सम्पत्ति का ध्यान रखते हैं। वे जरूरत की चीजों की उपलब्धता कराकर, स्कूल भेजकर अपना कर्त्तव्य पूरा समझते हैं जो ठीक नहीं है। अभिभावक को चाहिए कि बच्चों के लिए समय निकाले, उसकी क्षमता, रुचि, अभिरुचि की पहचान करें, अभिभावक को सबसे ज्यादा जागरूक बनाया जाना चाहिए ताकि वे समझ पायें कि अपने बच्चों के लिए क्या सही है और क्या गलत है? किशोर बच्चों में मल्टीमीडिया फोन से दूर रखें इससे तार्किक सोच एवं परिश्रम की क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

3. शिक्षा- शिक्षा के माध्यम से यह समझाया जाये कि आपके लिए मल्टीमीडिया फोन है न कि आप इसके लिए। स्कूल एवं महाविद्यालयों में इससे सम्बन्धित नियम, लाभ-हानि एवं इसके अच्छे उपयोग कैसे हो सके, पाठ्यक्रम में एक पाठ के रूप में जरूर दिये जायें, ताकि बच्चे जागरूक हो सकें। अभिभावकों के लिए अनौपचारिक शिक्षा के रूप में विभिन्न स्थानों पर नाटक, नुक्कड़, डाक्यूमेन्ट्री फिल्म दिखाकर जागरूक किया जा सकता है। शिक्षा द्वारा सभी वर्ग के लोगों में इसके प्रति उचित उपयोग की बौद्धिक योग्यता को बढ़ावा दिया जा सकेगा।

4. राजनीतिक इच्छाशक्ति- ज्यादातर उपभोक्ता दस से बाईस वर्ष के लोग होते हैं। इन नये वोटरों को राजनीतिज्ञ लोग नाराज नहीं करना चाहते। सभी दलों के नेताओं को वोट की राजनीति से ऊपर उठकर कड़े नियमों के निर्माण एवं क्रियान्वयन पर सहमत होकर एक पॉलिसी बनानी होगी। मीडिया स्वतंत्र रहे पर मीडिया में राजनीति का हस्तक्षेप होना हमेशा बुरा नहीं होता है। उन मीडिया को जो भ्रष्टाचार, सम्प्रदाय एवं केवल सत्ता पक्ष के हित में लगे हों, पहचान कर लज्जित किया जाना चाहिए। राजनीतिक चेतना जितनी अधिक होगी और उसका विस्तार जितना अधिक होगा, लोकतंत्र और समाज दोनों के लिए हितकारी होगा।

5. सरकारी प्रावधान- सरकार की तरफ से सोशल मीडिया के कड़े प्रावधानों को प्रशासनिक रूप से पूर्णत: लागू किया जाना चाहिए। उन कानूनी प्रावधानों को जनता के बीच जागरूकता फैलायी जानी चाहिए। यह एक नीति बनाकर 'औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा' के तहत पूरे देश में लागू किया जाना चाहिए। सभी तरह के उपभोक्ताओं की उम्र को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम बनाकर 'प्री-प्राइमरी से हायर एजुकेशन' तक और प्रौढ़ शिक्षा से सर्व शिक्षा अभियान तक में प्रावधान किया जाना चाहिए।

6. अन्य प्रावधान- फर्जी आई.डी. के विरूद्ध कार्यवाही, इसकी पहचान कर कड़ी सजा एवं कानूनी प्रावधान किये जायें। भविष्य में ऐसा न हो इसके लिए कोई पहचान पत्र जैसे आधार कार्ड से जोड़ा जाय।

सोशल मीडिया पर वायरल हो रहे अनैतिक एवं असामाजिक सूचनाओं की जांच एवं स्वायत्त संस्था द्वारा की जानी चाहिए। उसे फैलाये जाने वाले लोगों पर कड़ी सजा का प्रावधान हो।

समाचार पत्रों, टी.वी. एवं अन्य सूचना संचार द्वारा 'वायरल सच एवं झूठ' का खुलासा दिया जाना चाहिए जिससे जनता में इसके प्रति सही-गलत की समझ आ सके।

सोशल क्राइम उवं साइबर जैसे सामाजिक मीडिया के लिए नई समस्या बनकर आ रही है इसको ध्यान में रखते हुए विशेष कार्यक्रम निर्माण किये जायें जिसमें केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार दोनों ही सहयोगी बनें। कुछ साइटों को प्रतिबंधित किया जाये जिसके द्वारा आतंकवाद, भ्रष्टाचार, अनैतिकता एवं आत्महत्या (वीडियो गेम) जैसी प्रवृत्ति को बढ़ावा मिले।

अंत में सारांश के रूप में यह कहना चाहता हूं कि आधुनिकता के लाभों को संभाले बिना उसको पूरा का पूरा खारिज कर देना स्वयं को पुन: अंधकार युग में ढकेल देने का कृत्य होगा। संभवत: यह बेहतर होगा कि बहुत सारे संवैधानिक सुधार एवं आधुनिक युग पर केन्द्रित किये जायें, इसके लिए हमें ऐसी शिक्षा व्यवस्था की रचना करनी होगी जो हमारी मानवीयता को बढ़ावा दे या ऐसी शिक्षा व्यवस्था जिसमें व्यक्तियों के मध्य आपसी समरसता को बढ़ावा दे सकें। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि तकनीकी विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास मूल्यपरक रूप से संतुलन बना रहे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, आशा, बच्चे हमारे आचरण से सीखते हैं उपदेश से नहीं, वैचारिकी, नवम्बर-दिसम्बर 2015, भाग-31, अंक-6, आईएसएसएन नं. 0975-6531, पृ. 73-74
2. रूहेला, एस.पी., विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2, पृ. 592
3. सहाय, मनोरंजन, भारतीय पारिवारिक सामाजिक-सांस्कृतिक क्षय का कारण सोशल मीडिया, वैचारिकी, सितम्बर-अक्टूबर 2017, भाग-33, अंक-5, आईएसएसएन नं. 0975-6531, पृ. 75-78
4. शर्मा, सुरेश एवं शर्मा, उषा, लोकतंत्र में मूल्य एवं शांति शिक्षा, सिग्निफायर ऑर चेन्ज (बदलाव का संकेत), साहित्य संस्कृति और शोध की पत्रिका, अंक-3, जून-दिसम्बर, 2016, विशेषांक : लोकतंत्र में मूल्य, शांति और शिक्षा, पृ. 161-164

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 98-101

उत्तर आधुनिकतावादी कहानी का वैचारिक स्वरूप

सीमा सैनी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

उत्तर आधुनिकता ने साहित्य, सामाजिक सैद्धांतिकी तथा राजनीति के क्षेत्र में अपना प्रभाव डाला है। आज वैश्वीकरण के युग में पूरा विश्व सिमट कर गांव बन गया है। टी.वी. चैनलों और विज्ञापन के प्रभाव से एक नई संस्कृति का जन्म हो चुका है। उत्तर आधुनिकता ने जो मूल्य दिये हैं। वे पश्चिम की अतिविकसित औद्योगिकी की निर्णायक भूमिका रही है। उत्तर आधुनिकतावाद वैश्विक संस्कृति के बहुलवादी चरित्र पर बड़ा बल देता है और उसकी स्वायतत्ता की रक्षा का संकल्प दोहराता है। उत्तर आधुनिकता को लेकर विविध परिभाषाओं में बाँधने का प्रयास किया गया है, किंतु इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता, क्योंकि आधुनिक विचारधाराओं की भांति उत्तर आधुनिकता ने कोई निश्चित अवधारणा की घोषणा नहीं की, बल्कि वह तो विचारधाराओं के अंत की घोषणा करती है। उत्तर आधुनिकतावाद भारतीय संस्कृति व स्थानीय विचारों को अप्रस्तुति योग्य समझकर चली है, जो कि इस परिवर्तित समय में आत्मा से रहित वस्तुओं को प्रस्तुत कर रही है। वहीं दूसरी ओर इसे प्रचलित करने में मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वृहद पूँजीवाद ने वस्तुत: एक नये बाजार व संस्कृति को जन्म दिया है। व्यावसायिक प्रतिस्पर्द्धाओं एवं विज्ञापनों एजेंसियों ने जिस उपभोक्तावाद को जन्म दिया, उसकी कल्पना वर्तमान में ही की जा सकती थी। कम्प्यूटर-संस्कृति ने व्यक्ति और समाज की प्राथमिकताओं को बदल डाला। उसने मानवीय संभावनाओं और संवेदनाओं और साहित्यविहीन ऐसे यंत्र मानव रोबोट की रचना की, जिसने प्रबोधन काल के मानववाद की पूरी संकल्पना को ही धो डाला। उत्तर आधुनिकता इन सभी परिवर्तनों को दर्शाता है। उसके दार्शनिक अभिप्रायों की झलक उसकी सैद्धांतिकी में देखी जा सकती है।

संकेताक्षर : *उत्तर आधुनिकतावाद, सामाजिक सैद्धान्तिकी, कम्प्यूटर संस्कृति*

उत्तर आधुनिक कला अपने आप में विचारात्मक है। इसे मासकल्चर कहा जा सकता है। इसका स्वभाव प्रतिनिधित्व मूलक है। इसलिये यह विचारधारात्मक है। इसका विचारधारात्मक कार्य जो निर्माण को तय करने में सहायता प्रदान करता है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श आदि विकेन्द्रित यथार्थों का प्रतिनिधित्व उत्तर आधुनिकता करती है, परन्तु प्रतिनिधित्व से तात्पर्य तत्व के अर्थ के निर्माण को निश्चित करने के हथियार से है न कि स्वयं द्वारा स्वीकृति और किसी 'सत्ता' को वैधता प्रदान करने वाले तत्व में। सही अर्थों में वर्चस्वशाली संस्कृति के नीचे दबे कुचले गये हाशिये को तलाश नहीं उत्तर आधुनिकता है। उत्तर आधुनिकता नये-नये प्रश्नों को जन्म देती है, जिससे विमर्श जन्म लेते हैं। जिनके आगे बने बनाये उत्तर नज़र नहीं आते। उन्हें स्वविवेक से तलाशना पड़ता है। जहाँ एक ओर उत्तर आधुनिकता सभी विषयों के प्रति संदेहपूर्ण दृष्टि रखती है, वहीं उत्तर आधुनिकता के हिसाब से कोई भी सिद्धांत, अनुभव, परम् सत्य ऐसा कुछ भी मान्य है। दूसरी ओर आधुनिकता ने मनुष्य को केन्द्र में रखा और व्यक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ समझा। इसी आधार को लेकर यूरोप में मानवतावाद का उदय हुआ, जिसे तार्किक माना गया। वहीं उत्तर आधुनिकता इस सिद्धांत के विपरीत सोचती है, इसका मानना है कि प्राकृतिक व्यवस्था नाम की कोई वस्तु नहीं होती, क्योंकि आधुनिकता के लिये जो नया था, वहीं उत्तर आधुनिकता के लिये पुराना हो चुका है। इससे स्पष्ट होता है कि उत्तर आधुनिकता पूर्व से चली आ रही प्रणालियों व बुद्धिवाद के विरूद्ध सीधी-सीधी चिंतन प्रक्रिया है, इसने आधुनिक चिंतन, मनन को अत्यधिक प्रभावित किया है।

उत्तर आधुनिकता ने आते ही सबसे पहले मृत्यु की घोषणा कर डाली। इसने सर्वप्रथम ईश्वर की मृत्यु की घोषणा की। जहाँ पर

ईश्वर को सृष्टि का जनक माना गया है। उसे ही उत्तर आधुनिकता ने नकार दिया, क्योंकि यह अपने नियमों के अनुसार साहित्य की रचना करती है। उत्तर आधुनिकता दोहरे अस्त्र के रूप में कार्य करती है। यह एक ऐसी जकड़बंदी है, जो कड़ी न होकर अन्दर-बाहर, आगे-पीछे से भी उत्तर आधुनिकता द्वारा तोड़ी जा सकती है। देखा जाये तो किसी भी साहित्य इतिहास की पुनर्रचना एक प्रकार से पेरौड़ी ही होती है। इसलिये अधिकांश साहित्य पेरौड़ी ही होता है, जो किसी चैन की भांति नहीं होता, इसे कहीं से भी तोड़ा जा सकता है और कहीं से भी जोड़ कर स्थिर भी किया जा सकता है। 'इको के अनुसार - दरअसल व्यंग्य ही वह स्थिति है, जिसमें आज हम उन बातों, विमर्शों की अपेक्षा नहीं कर सकते हैं, जो पहले हुए हैं, उन्हें संदर्भ बनाने की मजबूरी को व्यंग्य का जरिया ही कहा जा सकता है। 'पूर्व कथित' को फिर से विचारणीय बनाया जाना चाहिये। यह व्यंग्यात्मक ढंग से ही हो सकता है। यह अतीत राग नहीं है।[1]

संशयवाद या निषेधवाद उत्तर आधुनिकता का मुख्य तत्व है। उत्तर आधुनिकता का कोई मूल्य नहीं, आदर्श नहीं और न ही कोई सत्य है, जिसके आधार पर जीवन की समस्याओं को सुलझाया जा सकें। वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व अविश्वास में जी रहा है। पिछले दशक में यह स्पष्ट हो गया था कि उत्तर आधुनिक समाज महत्वाकांक्षी हुआ है। सब कुछ परिवर्तित-सा हो रहा है। इसी दौर के चर्चित कहानीकार उदय प्रकाश की कुछ कहानियाँ 'तिरिछ', 'राम संजीवन की प्रेम कथा', 'पाल गोमरा का स्कूटर', 'वारेन हेस्टिंग्स का सांड' 'और अंत में प्रार्थना', 'मोहनदास', 'पीली छतरी वाली लड़की', 'उत्तर आधुनिक धारा की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है।

उत्तर आधुनिकतावाद ने जिस प्रकार से हिन्दी साहित्य को यूरोप में केन्द्रित किया, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य की कोई एक स्थानीय सैद्धांतिकी भी हो सकती है। साम्राज्य के 300 साल में उत्तराधुनिक विकेन्द्रीकरण ने पहली बार मत स्पष्ट किया कि एकमात्र सैद्धांतिकी असभ्य है। उत्तर आधुनिक सिद्धांत का यह मानना है कि जिस तरह से पर्यावरण के लिये एक जैसे रहन-सहन खतरनाक है, ठीक उसी प्रकार से एकमात्र सैद्धांतिकी ज्ञान के लिये।

उत्तर आधुनिकता अतीत को परिष्कृत कर वर्तमान से टकराती है। यह अतीत के पीछे भागने की अपेक्षा उसके बारे में दोबारा सोचने की प्रेरणा देती है। अतीत व वर्तमान दोनों एक-दूसरे को परस्पर रखते है, यहीं व्यंग्यात्मकता है। आज हम वैज्ञानिक युग में जी रहे है। यज्ञ की वेदी पर बैठकर भगवान को पुकारने वाले बेवकूफ नहीं रह गये, बल्कि 'ग्लोबल मैन' बनने के प्रति दृढ़ संकल्प हो रहे है। उस 'आध्यामिकता की परतंत्रता से मुक्त होकर हम उत्तर आधुनिकता की वैचारिकता (विशेषताओं) को समझने में लगे हुये है।

उत्तर आधुनिकता युग में जहाँ त्याग का स्थान वैमनस्यता, विद्वेष स्वार्थपरक राजनीति ने लिया है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक विकास व गतिशीलता के नाम पर खण्डित होती सामाजिक संस्थाएँ है। टूटते विवाह छिन्न-भिन्न होते परिवार जिनका स्थान वर्तमान में लिव इन रिलेशन, होम्यो-सैक्सुएलिटी समलैंगिकता ने ले लिया है, जिनको हाल ही में कानूनी मान्यता दे दी गई है, जो समाज को एक अलग ही दिशा की ओर ले जा रही है। हर तरफ भूख ही भूख है। शारीरिक पिपासा को शांत करने के लिये उन्हीं बच्चों की हत्या की जा रही है, यह भी उत्तर आधुनिकता का ही परिणाम है कि भारत में भी कोख (सेरोगेट मदर) का सौदा किया जा रहा है। आज नारी अस्मिता देह धर्म को प्रगतिपथ मान आगे बढ़ रही है। (राजनीति में मधुमिता, शशि वर्मा) रियलिटी शॉ के नाम पर खुले आम नग्नता परोसी जा रही है। (बिग बॉस-4, बीना मलिक, डोली बिन्द्रा) के द्वारा किये कृत्य विवाह संस्था का परिहास (सारा-अली का विवाह बिग बॉस-4[2]) कानून व समाज को धता बताता 'राखी का इंसाफ'[3], यही है उत्तर आधुनिक तत्कालीन अति भौतिकतावादी दु:संस्कृति।

उत्तर आधुनिकता की वैचारिकता जिन मूल तत्वों पर आधारित है, उनमें से प्रथम है - बहुलतावाद- एक समाज- व्यवस्था अथवा दर्शन के भीतर भिन्न-भिन्न लोगों, मतों सिद्धांतों की अनेकता में एकता अर्थात् विविधता की मौजूदगी ही बहुलतावाद है। वहीं पर बहुलतावाद इस भिन्नता को अच्छा मानता है। उत्तर आधुनिकता की मत है कि किसी समाज-व्यवस्था, विभिन्न मतों-सिद्धांतों द्वारा समाज को एक साथ संगठित बनाये रखने के लिये बहुलतावाद है। भारतीय समाज हमेशा से ही बहुलतावाद का समर्थक रहा है। हमारा बहुदेववाद एक व्यापक खुलापन लिये है, उसमें एक एकेश्वरवादी कट्टरतावाद कभी नहीं रही। शैवों-शाक्तों-वैष्णवों-बौद्धों-जैनों की विचारधाराएँ अक्सर ही साथ-साथ टकराकर प्रवाहित होती रही है। यह प्रवाह मानव की उन्मुक्ता को बढ़ावा दे रहा है।

बहुलतावाद इसी अर्थ में बहुसंस्कृतिवाद का पर्याय है, अनेक देशी-विदेशी जातियाँ यहाँ आकर बसी और एकसूत्र में बँधती रही। जैसे तरह-तरह के विविध रंगों का अपना सौंदर्य होता है - वैसा ही विविधता भरा सौन्दर्य भारतीय संस्कृति का है, जिसमें सभी लोगों, सभी जातियों, धर्मों, विचाराधाराओं का आदर है और यह सत्य हमारा काव्य ध्वनित करता है।[4] वर्तमान राजनीति ने लोकतंत्र की बहुलतावाद प्रणाली पर सवालियाँ निशान खड़े कर दिये है। सब और लोकतंत्र की विनाश लीला है। सत्ता ने सदैव ही राजनीति के

पीछे साहित्य के जनतंत्र का शिकार किया है। भद्र-वर्ग के थोड़े से लोग लोक-कला, लोक-साहित्य और लोक-संस्कृति की रक्षा से दूर है। यह भद्र वर्ग लोक-संस्कृति से कभी-कभार झूठी चिंता दिखाता है, पर अपनाता नहीं। उदाहरणस्वरूप काशीनाथ सिंह की कहानी माननीय होम मिनिस्टर के नाम से इस प्रकार की व्यवस्था का चित्रण देखा जा सकता है। इस कहानी में एक मिनिस्टर के चमचे की हरकतों का चित्रण किया गया है, जो कास्तकारों, लेखपालों, कानूनगो और मिनिस्टर के बीच दलाली करता है। कहानी में व्यवस्था में फैले भ्रष्टाचार का भी चित्रण किया गया है। यहीं इस समय का सच है। [5] इसलिये विचार का एक जरूरी मुद्दा है - बहुलतावाद। आज साहित्य और राजनीति दोनों में लोकतंत्र का आधार बहुलतावाद नहीं है, जबकि होना चाहिये। घायल बहुलतावाद ने अराजकतावाद की राह पकड़ ली है, जिसका रास्ता है, 'जातियों-प्रदेशों की तानाशाही। [6]यह एक चिंता का विषय है।

स्वायतत्ता भी उत्तर आधुनिकता में वैचारिकता का विशेष मुद्दा रहा है। यह विषय अस्थिता, स्वत्व और पहचान जैसी समस्याओं को पैदा करता है। वे समाज का या फिर वे जातियाँ जिनके हित आपस में टकराते हैं, वे यह मानने को तैयार है कि ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसमें सभी के एकमत है। यह विचारधारा व्यक्ति संस्कारों की परतों से फूटती है। 'स्वायतत्ता' की विचारधारा में प्रतीक मिथक तो होते ही हैं - प्रतीक स्वयं विचार से उपजता है। स्वयं बहुलतावाद ने 'विचाराधारा' का विरोध किया है, पर उसमें एक विचारधारा है - राजनीति है, छल प्रपंच है। इसलिये बहुलतावादियों की आलोचना को 'स्वायत्त' कैसे माना जा सकता है। न 'पाठ' स्वायत्ता है न पाठक। 'नई समीक्षा' शुद्ध आलोचना का ढोल पीटती रही, पर उसमें भी अमेरिकी शीत-युद्ध की विचारधारा से कौन इनकार कर सकता है। [7]हिन्दी कहानी में उत्तर आधुनिकता के उक्त तत्व द्रष्टव्य है।

उत्तर आधुनिकता किसी भी केन्द्रवाद को नहीं मानती। समाज के ऐसे समूह या वे जातियाँ जो वर्तमान में भी हाशिये पर हैं वो ही उत्तर आधुनिकता में वैचारिकता का विषय बन गये हैं। वे दलित और दलित समुदाय उत्तर आधुनिक चिंतन में महत्वपूर्ण हो गये हैं। दलित-जनता अपने प्रभुत्व के लिये संघर्ष कर रही है। इस संघर्ष का परिणाम यह हुआ है कि पुराने एकीकृत केन्द्र चरमरा कर टूट रहे हैं और नये-नये समीकरण अस्तित्व में आ रहे हैं। यह सच है कि ये समीकरण निरन्तर बदल रहे है। इस बदलाव के पीछे अम्बेड़करवादियों की राजनीति है। नई विचारधारा का नया पौधा उपभोक्ता के झाड़-झंखाड में संघर्ष कर रहा है, किंतु संस्कृतिवाद और संस्कृति दोनों ही बाजार में क्रय-विक्रय की वस्तु बन गये है।[8]

काशीनाथ सिंह की 'वे तीन घर' दलित विमर्श की कहानी है, जिसका सार यह है कि दलित वर्ग का सदस्य पढ़-लिखकर अफसर या नेता बनते ही अपने वर्ग से नाता तोड़ लेता है, वहीं दिवांकर की कहानी 'नया घर चढ़े' में हरिजन समाज में उभरती नई चेतना का चित्रण किया गया है। इसमें यह भी दिखा गया है कि पढ़े-लिखे और आरक्षण की सहायता से सरकारी नौकरी से आ जाने वाले दलित अपने समाज से ही अलगाव का अनुभव करने लगते है और एक विशेष सभ्य वर्ग में आने की मानसिकता से भर जाते है। इस विमर्श में सच्चाई होते हुये भी एक अभिजात पूर्वग्रह तो है ही। '[9]

उत्तर आधुनिकता ने विकेन्द्रीयता के प्रश्न को स्थानीयता से मिला दिया है। तभी उत्तर आधुनिकता स्थानीयता पर जोर दे रहा है। यह एक ऐसा विषय है कि जो अपनी अपनी मूल जड़ की ओर लौटकर परिस्थिति को समझने पर जोर दे रहा है। देखा जाये तो बिहार व मध्यप्रदेश में रहने वाली जनजातियों की प्रताड़ना की और हमारा ध्यान स्थानीयता के कारण ही रह गया है। विभिन्नता भी विकेन्द्रीयता से जुड़ा हुआ उत्तर आधुनिकता का एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। ये दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे है, अर्थात् विकेन्द्रीयता व स्थानीयता दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुये है। उत्तर आधुनिकता ने इस बात को बार-बार अपने ढंग से रेखांकित किया है कि समाज का एक समूह दूसरे समूहों से अपनी मूल सांस्कृतिक-सामाजिक, राजनीतिक संरचनाओं के कारण भिन्नता रखता है, यह भिन्नता उसकी पूरी जीवन प्रक्रिया की गति को निर्धारित करती है। साहित्य में इस 'भिन्नता' के कारणों पर विचार किया जाना चाहिये, ताकि हम समाज यथार्थ से परिचित हो सकें।[10]

उत्तर आधुनिकता की भाषा दोहरी व अनेक अर्थों की व्याख्या करने वाली है, दलित विमर्श व स्त्री विमर्श में दोहरापन देखने को मिलता है, क्योंकि यह पुरूषवादी विमर्श से अलग व्याख्या करता है। इसी को उत्तर आधुनिकता की बहुवाचकता, बहुवचनता कहा जाता है। देखा जाये तो बिना उत्तर आधुनिकता के जगह बने ये विमर्श व दलित विमर्श संभव हुये है।

वर्तमान में यह मानकर संतुष्टि नहीं कर सकते है कि फिल्म, फैशन, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, कला, साहित्य, संवेदना, यौन-चिंतन व सभ्यता आदि को लेकर जो परिवर्तन हुआ है, वह स्थायी है। यह बहुत जटिल विवादित और बहुत दूर तक फैली मनुष्य की मनोदशा है, क्योंकि इसमें इतिहास की विचारधारा का अंत हो चुका है। उत्तर आधुनिकता का सत्य इस अंतवाद में तलाश किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. पचौरी, सुधीश, उत्तर आधुनिकता विमर्श, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृ. 109
2. कलर चैनल, रियलिटी शॉ, बिग-बॉस सीजन-4 (समय- रात 09.00 बजे, 2010-11)
3. एन.डी.टी.वी. इमैजिन, रियलिटी शॉ, (समय- रात 11.00 बजे दूरदर्शन पर)
4. पालीवाल, कृष्णदत्त, उत्तर आधुनिकता की ओर, आर्य प्रकाशन मण्डल, IX/221, सरस्वती भण्डार, गाँधी नगर, नई दिल्ली-110031,प्रथम संस्करण, 2005, पृ. 25
5. गोपालराय, हिन्दी कहानी का इतिहास-3 (1976-2000), राजकमल प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 137
6. पालीवाल, कृष्णदत्त, उत्तर आधुनिकता की ओर, आर्य प्रकाशन मण्डल, IX/221, सरस्वती भण्डार, गाँधी नगर, नई दिल्ली-110031, प्रथम संस्करण, 2005, पृ. 25
7. पालीवाल, कृष्णदत्त, उपर्युक्त, पृ. 26
8. पालीवाल, कृष्णदत्त, उपर्युक्त, पृ. 26
9. गोपालराय, हिन्दी कहानी का इतिहास-3 (1976-2000), राजकमल प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 137
10. पालीवाल, कृष्णदत्त, उत्तर आधुनिकता की ओर, आर्य प्रकाशन मण्डल, IX/221, सरस्वती भण्डार, गाँधी नगर, नई दिल्ली-110031, प्रथम संस्करण, 2005, पृ. 28

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 102-106

भारतीय राजव्यवस्था में संसदीय समितियों की प्रासंगिकता : एक विश्लेषण

डॉ. प्रेम सिंह
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

शोध सारांश

विश्व की समस्त राज व्यवस्थाओं में कम समय में निष्पक्षतापूर्वक अधिकतम कार्य करने की एक बहुत बड़ी समस्या है। इसके लिए भारत सहित अन्य संसदीय व्यवस्थाओं में समिति व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जो समयानुकूल संसद की निष्पक्षता से मदद कर सकती है। भारत सहित विश्व की अन्य संसदों के समक्ष कार्य विविधता एवं समयाभाव है। तथा संसद हर समय कार्य रूप में भी नहीं होती है। तथा समितियों के द्वारा संसद के प्रत्येक सदस्य को व्यवस्थापन में हिस्सा लेने का अवसर भी प्राप्त हो जाता है। समितियाँ समय-समय पर निजी स्वार्थ व दलगत राजनीति से ऊपर उठकर अल्प समय व मित्तव्ययता पूर्वक उचित एवं ठोस निर्णय करती हैं। जिन्हें समय-समय पर लागू भी किया जाता है। इसलिए समितियों को मिनी (लघु) संसद के नाम से जाना जाता है। यह सतत् रूप से कार्य करती रहती है। तथा संसद एवं राज व्यवस्था के लिए बहुत ही लाभदायक होती है।

संकेताक्षर : *व्यवस्थापिका, संसद, समिति, तदर्थ प्रयोजन, सशक्तीकरण, परामर्शदात्री*

विश्व की समस्त व्यवस्थापिकाओं के समक्ष एक यक्ष प्रश्न है कि कम से कम समय में अच्छे से अच्छा व्यवस्थापन किस प्रकार हो सकता है। वर्तमान में भारत सहित सभी संसदें व्यवस्थापन कार्य के भार से दबी हुई हैं। वे बदले हुए व्यवस्थापन कार्य को निपटा नहीं पाती है और यदि संसद व्यवस्थापन कार्य में शीघ्रता बरतें तो कार्य का स्तर स्वाभाविक रूप से निम्न कोटि का होगा। तथा भारत सहित अधिकांश देशों की संसदों के पास कार्य में विविधता तथा सदस्यों की राजनीतिक विवशता एवं समयाभाव है। संसद की इस प्रकार की कठिनाइयों के निराकरण के लिए इंग्लैण्ड में समिति प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिक विधान तंत्रों में बहुत से विद्यायी एवं गंभीर प्रकृति के कार्यों को कुशलता पूर्वक निष्पादित करने के लिए अनेक प्रकार की समितियाँ गठित की जाती है। संसद के दोनों सदनों की समितियों की संरचना कुछ अपवादों को छोड़कर एक जैसी है। इन समितियों की नियुक्ति, कार्य एवं कार्य संचालन की प्रक्रिया भी लगभग समान है जो संविधान के अनुच्छेद 118(1) के अन्तर्गत दोनों सदनों द्वारा निर्मित नियमों की धाराओं के अनुसार अधिनियमित होती है। एक संसदीय समिति का अर्थ वह समिति है जिसकी नियुक्ति या चुनाव सदन द्वारा किया गया हो अथवा अध्यक्ष या सभापति द्वारा इसको नाम निर्दिष्ट किया गया है। अध्यक्ष या सभापति के निर्देशानुसार कार्य करती है अपना प्रतिवेदन सदन को अथवा अध्यक्ष अथवा सभापति को सौंपे और जिसे लोक सभा अथवा राज्य सभा सचिवालय द्वारा सचिवालय की सुवधिा प्रदान की गयी है।

हरमन फाइनर के अनुसार ''हाल में जो समितियों का प्रादुर्भाव हुआ है उसका कारण उन्नीसवी तथा बीसवीं शताब्दी में व्यवस्थापन कार्य की वृद्धि है। आधुनिक सरकार के कर्तव्यों की व्यापकता के कारण समितियों में होने वाली कार्यवाही को सदन में किये जाने में उससे अधिक समय लगेगा। कौल तथा शकधर के अनुसार '' संसद अपना बहुत सा कार्य समितियों के माध्यम से करती है। इन समितियों को कार्य की कुछ ऐसी विशेष मदों को निपटाने के लिए नियुक्त किया जाता है जिसके लिए विशेषज्ञों द्वारा या ब्यौरेवार विचार कराने की आवश्यकता है। ''समिति प्रणाली का मुख्य उद्देश्य अन्य संस्थाओं व अन्य समयो के लिए कार्य हटाकर लोक सदन के कार्यभार की अधिकता को कम करना है। '' संक्षेप में कह सकते हैं कि समिति व्यवस्था द्वारा सदन का समय बच जाता है और उसको विशेषज्ञों का परामर्श भी प्राप्त हो जाता है।

भारत में समिति व्यवस्था माण्टेस्क्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के परिणाम स्वरूप शुरू हुई थी, लेकिन उन दिनों की समितियाँ सरकार के

निर्णय तथा उसके हस्तक्षेप से स्वतंत्र नहीं थी। उन्हें कोई शक्तियाँ या विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। नये संविधान के लागू होने के बाद केन्द्रीय विधान मण्डल की स्थिति बिल्कुल बदल गयी और समिति व्यवस्था में भी बहुत परिवर्तन आया। वस्तत: अब तो संसदीय समितियाँ संसद का लघु रूप बन गई हैं। सामान्य : संसदीय समितियाँ दो प्रकार की होती है :-स्थायी समितियाँ और अस्थायी या तदर्थ समितियाँ। स्थायी समितियों का गठन प्रति वर्ष या समयानुसार किया जाता है और निरन्तरता के आधार पर कार्य करती रहती है। अस्थायी या तदर्थ समितियों को प्रदत्त कार्यों के पूरा होने के उपरान्त समाप्त किया जा सकता है। अस्थायी समितियों को पुन: दो हिस्सों में बांटा जा सकता है:-

(i) जाँच समितियाँ :- जाँच समितियों का गठन समय-समय पर विशेष मुद्दों, जैसे - स्टॉक मार्केट, घोटाला, बोफोर्स मामलों पर संयुक्त समिति आदि के लिए किया जाता है।

(ii) सलाहकार समितियाँ - सलाहकार समितियों में किसी विधेयक पर प्रवर या संयुक्त समिति आदि शामिल होती है। जिसका गठन किसी विधेयक विशेष पर विचार कर उसके बारे में उचित अनुशंसाएँ करना होता है।

प्रमुख स्थायी और संयुक्त समितियाँ

लोक लेखा समिति

लोक लेखा समिति की स्थापना 1921 में भारत सरकार अधिनियम 1919 के तहत की और यह अभी भी विद्यमान है वर्तमान में इसमें 22 सदस्य (15 लोक सभा से एवं 7 राज्य सभा से) होते है। संसद प्रत्येक वर्ष अपने सदस्यों के बीच से एकल संक्रमणीय सिद्धान्त के आधार पर हस्तांतरणीय मत के माध्यम से इनका चयन करती है। इस तरह इसमें सभी दलों का प्रतिनिधित्व होता है सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है किसी मंत्री को इसका सदस्य नहीं चुना जा सकता। समिति के अध्यक्ष का चुनाव इसके सदस्यों के बीच से लोक सभा अध्यक्ष करता है। 1966-67 तक अध्यक्ष, सत्ता रूढ दल से होता था वर्तमान में 1967 से यह परम्परा प्रारम्भ हो गयी कि लोक लेखा समिति का अध्यक्ष विपक्षी दल से चुना जाये।

समिति का कार्य नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) की वार्षिक रिपोर्ट की जाँच करना है जिसे राष्ट्रपति संसद के समक्ष रखता है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक तीन जाँच रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपता है।

(i) विनियोग लेखाओं संबंधी लेखा परीक्षा रिपोर्ट।

(ii) वित्त लेखाओं संबंधी लेखा परीक्षा रिपोर्ट।

(iii) सरकारी उपक्रमों संबंधी लेखा परीक्षा रिपोर्ट। समिति न केवल विधि दृष्टि से सार्वजनिक व्यय की जाँच करती है अपितु वह इस संबंध में तकनीकी खामियों का भी आकलन करती है। इसके अलावा उसके समक्ष लाये गये या किसी ऐसे विषय की विस्तृत जाँच भी करती है जिसमें आर्थिक घोटाले, अनियमितता, भ्रष्टाचार, अपव्यय, अकुशलता एवं अनावश्यक व्यय आदि की शिकायतें होती है।

प्रमुख कार्य

1. केन्द्र सरकार के विनियोग खाते एवं वित्त खातों की जाँच और संसद के समक्ष रखे गये अन्य खातों की जाँच।
2. विनियोग खातों और उस पर सी.ए.जी. की रिपोर्ट की जाँच में समिति को स्वयं को इस बात की पुष्टि करना होता है कि :-
   (क) संवितरित की गई राशि विधिक रूप से उसी अनुप्रयुक्त सेवा या प्रयोजन के लिए प्रयोग की गयी है।
   (ख) व्यय प्राधिकार के अनुसार किया गया है।
   (ग) प्रत्येक पुन: विनियोजन संबंधित नियमों के तहत किया गया है।
3. राज्य नियमों, व्यापार, उद्यमों और विनिर्माण परियोजनाओं के लेखाओं और इन पर सी ए जी की रिपोर्ट की जाँच करना।
4. स्वायत्त और अर्द्ध स्वायत्त निकायों के लेखाओं की जाँच करना जिनकी लेखा परीक्षा सी ए जी द्वारा की जाती है।
5. किसी प्राप्तियों के संबंध में सीएजी की लेखा परीक्षा रिपोर्ट पर विचार करना।
6. उक्त कार्यों की पूर्ति हेतु समिति को नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा सहायता की जाती है।

प्राक्कलन समिति

प्राक्कलन समिति का उद्भव 1921 के स्थायी वित्तीय समिति के गठन से देखा जा सकता है। तत्कालीन वित्त मंत्री की सिफारिश पर 1950 में ऐसी पहली समिति का गठन किया गया। इसमें मूलत: 25 सदस्य थे लेकिन 1956 में इसके सदस्यों की संख्या 30 कर दी गयी। इसके सभी 30 सदस्य लोक सभा से होते हैं। समिति के सदस्य प्रत्येक वर्ष लोकसभा के सदस्यों में से चुने जाते है। एकल संक्रमणीय सिद्धान्त के आधार पर हस्तातरणीय मत का प्रयोग किया जाता है इसमें सभी राजनीतिक दलों को प्रतिनिधित्व मिलता है। सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है। कोई भी मंत्री

समिति का सदस्य नहीं चुना जा सकता है। समिति के अध्यक्ष का चुनाव इसके सदस्यों के बीच से लोक सभा का अध्यक्ष करता है तथा सभापति सत्तारूढ़ दल का होता है। समिति को सतत् आर्थिक समिति भी कहा जाता है इसके कार्य इस प्रकार है:-

1. अनुमानों संबंधी नीति के अनुरूप संगठन में मित्तव्ययता और प्रशासनिक सुधार के संबंध में रिपोर्ट देना।
2. यह जाँच करना कि नीति अनुमानों के अनुसार धन अपनी सीमाओं में ही खर्च हो।
3. संसद में पेश किये जाने वाले अनुमानो का प्रारूप सुझाना।

सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति

सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति कृष्ण मेनन सुझाव पर 1964 में बनाई गयी। 1974 में इनकी संख्या 22 (15 लोक सभा से और 7 राज्य सभा से) कर दी गयी। इसके लिए भी एकल संक्रमणीय मत सिद्धान्त के आधार पर हस्तातरणीय मत का प्रयोग किया जाता है। इसमें सभी दलों का प्रतिनिधित्व होता है कोई भी मंत्री समिति का सदस्य नहीं होता है। समिति का सभापति लोक सभा के सदस्यों में से चुना जाता है। समिति के सभापति का चुनाव लोकसभा अध्यक्ष द्वारा किया जाता है समिति के कार्य इस प्रकार है:

1. सरकारी उपक्रमों के लेखा एवं रिपोर्ट का परीक्षण और कैग की रिपोर्ट का परीक्षण
2. सरकारी उपक्रमों का व्यवसाय का सिद्धातों एवं वाणिज्य प्रयोग के तहत काम का परीक्षण।
3. सरकारी लेखा समिति और प्राक्कलन समिति से संबंधित अन्य कार्य जिसे लोकसभा अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर उन्हें सौपा जाता है।

कार्य मंत्रणा समिति

यह सरकार के कार्यक्रम एवं समय को नियंत्रित करती है। यह सरकार द्वारा सदन के समक्ष लाये गये विधायी एवं अन्य कार्यों के लिए समय निर्धारित करती है। लोकसभा समिति के अध्यक्ष सहित 15 सदस्य होते हैं। राज्य सभा में पदेन सभापित सहित 11 सदस्य होते हैं।

गैर सरकारी सदस्यों के विधेयक एवं संकल्पों संबंधी समिति

यह गैर सरकारी सदस्यों द्वारा लाये गये विधयकों एवं संकल्पो के लिए चर्चा का समय निर्धारित करती है। यह लोकसभा की विशेष समिति है, जो 15 सदस्यों से मिलकर बनी होती है। लोक सभा उपाध्यक्ष इस समिति का सभापति होता है। राज्य सभा में इस प्रकार की समिति नहीं होती तथा इसका कार्य राज्य सभा की कार्य मंत्रणा समिति करती है।

सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति

यह आश्वसनों, वायदों और मंत्रियों द्वारा सभा पटल पर समय समय पर किये गये वादों की जाँच करती है और रिपोर्ट प्रस्तुत करती है कि इनका कार्यान्वियन किस स्तर तक किया गया है लोक सभा में इसके 15 सदस्य एवं राज्य सभा में 10 सदस्य होते है। इसका गठन 1953 में हुआ था।

अधीनस्थ विधानों संबंधी समिति

यह जाँच करती है और सभा को रिपोर्ट देती है किस संसद या संविधान द्वारा कार्यपालिका को विनियम, नियम, उपनियम का उपविधियों को निर्मित करने के लिए प्रत्यायोजित शक्तियों का प्रयोग ठीक ढंग से हो रहा है। दोनों सदनों में समिति के 15 सदस्य होते है इसका गठन 1953 में हुआ।

नियम समिति

यह सभा के प्रक्रिया एवं संचालन नियमों पर विचार करती है और जरूरी संशोधन एवं सिफारिशों को सदन के नियम के लिए प्रस्तुत करती है। लोकसभा समिति में अध्यक्ष सहित 15 सदस्य होते हैं। लोक सभा अध्यक्ष दूसरे पदेन सभापति होते हैं। राज्य सभा में सभापति सहित 16 सदस्य होते हैं। राज्य सभा के सभापति इसके पदेन सभापति होते है।

विशेषाधिकार समिति

लोक सभा समिति में 15 सदस्य होते हैं जबकि राज्य सभा समिति में 10 सदस्य होते हैं। इसकी कार्य प्रकृति अल्प-न्यायिक की तरह होती है यह सदन एवं इसके सदस्यों के विशेषाधिकार हनन का परीक्षण करती है एवं उचित कार्यवाही की सिफारिश करती है।

लाभ के पद संबंधी संयुक्त समिति

इसमें 15 संसद सदस्य शामिल होते हैं। (10 लोक सभा से तथा 5 राज्य सभा से) यह समितियों की रचना एवं उसके ढंग तथा केन्द्र, राज्य एवं संघ शासित सरकारों द्वारा नामित इकाइयों का परीक्षण करती है तथा सिफारिश करती है कि कोई व्यक्ति जो इस पद पर है संसद एवं सदस्य के योग्य है या नही।

अन्य समितियां

अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण समिति, सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति, आवास समिति, सदस्यों के वेतन एवं भत्तो संबंधी समिति, पुस्तकालय समिति, आचरण समिति, महिला सशक्तीकरण संबंधी समिति, सभापटल पर रखे गये पत्रो संबंधी

समिति, सामान्य प्रयोजन समिति, याचिका समिति

परामर्शदात्री समितियाँ

किसी मंत्रालय की परामर्शदात्री समिति का अध्यक्ष उस मंत्रालय का मंत्री या राज्य मंत्री होता है ये समितियाँ केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों विभागों से संबंधित होती इनमे संसद के दोनों सदनों के सदस्य होते है। ये समितियाँ सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों तथा उनके क्रियान्वयन के संबंध में संसद को मंत्रालयो एवं सदस्यों के मध्य वार्तालाप हेतु एक फोरम उपलब्ध कराती है। सामान्यता ये समितियाँ नये आम चुनावो के बाद नयी लोक सभा के गठन के उपरान्त गठित की जाती है। इनकी कुल संख्या 32 है। विभिन्न मंत्रालयों एवं विभाग से संबंधित परामर्शदात्री समितियों के विपरीत, पृथक औपचारिक परामर्शदात्री समितियों की बैठक केवल संसद के सत्र के दौरान नहीं आयोजित की जा सकती है।

विभागीय स्थायी समितियाँ

लोकसभा नियमावली समिति की सिफारिश पर 24 स्थायी समितियाँ अपने कार्यक्षेत्र में आने वाले केन्द्र सरकार के सभी मंत्रालयों एवं विभागों का दायित्व संभालती है। प्रत्येक स्थायी समिति में 31 सदस्य (21 लोकसभा से 10 राज्य सभा से) होते हैं। लोकसभा के सदस्यों को अध्यक्ष एवं राज्य सभा के सदस्यों को सभापति अपने सदस्यों के बीच से मनोनीत करते है। 24 समितियों में से 8 राज्य सभा तथा 16 लोकसभा के अन्तर्गत कार्य करती है। इनका कार्यकाल एक वर्ष होता है। स्थायी समिति के कार्य इस प्रकार है :-

1. संबंधित मंत्रालयों/विभाग द्वारा अनुदान माँगों को लोकसभा में पेश करने से पूर्व उन पर चर्चा करना।
2. संबंधित मंत्रालयों/विभागों से संबंधित विभागों की जॉच करना।
3. मंत्रालयों/विभागों की वार्षिक रिपोर्ट की जॉच।
4. सदन में प्रस्तुत राष्ट्रीय मूल दीर्घ कालिक नीति लेखों की जाँच।

भारतीय संसद से समितियों की प्रासंगिकता

वर्तमान में जब विश्व की समस्त संसदीय व्यवस्थाओं के साथ भारतीय संसदीय व्यवस्था भी काम के बोझ से दबी हुई है। ऐसे समय में संसदीय समितियों की कार्य की भूमिका की प्रासंगिकता एवं औचित्यपूर्णता परिलक्षित होती है। भारतीय संसद में समितियों की प्रासगिकता निम्नलिखित रूप में है:-

1. समितियाँ सदन की पिछली बैंचो पर बैठने वाले सदस्यों को भी व्यवस्थापन कार्य में भाग लेने के समुचित एवं पर्याप्त अवसर उपलब्ध करवा रही है।
2. समितियाँ विधेयकों पर निष्पक्षता के साथ सूक्ष्मता से विचार करती है ऐसी सूक्ष्मता एवं निष्पक्षता के साथ विचार करना संसद में कदापि संभव नहीं है।
3. समितियों द्वारा सदन का पर्याप्त समय बच जाता है, समितियाँ एक प्रकार से सदन की आँख, कान, हाथ और मस्तिष्क है।
4. समितियों के सदस्य अपने दलगत स्वार्थ व आस्था के आधार पर न तो कार्य करते है और न ही मतदान करते हैं।
5. समितियों के सदस्यगण निर्बाध रूप से और अपनी अन्तरात्मा के अनुसार समस्या के मूल्यांकन के आधार पर और दलगत निर्देश की चिंता किये बिना मतदान करते हैं।
6. समितियाँ कार्य पालिका के विद्यायी कार्यों पर नियंत्रण रखती है। तथा कार्यपालिका समय-समय पर जो निर्णय लेती है। कानून लागू करती है, उनका परीक्षण कर नियंत्रण रखती है।
7. समिति व्यवस्था के कारण सदन का समय बच जाता है और विषय विशेषज्ञों का परामर्श भी प्राप्त हो जाता है।
8. समितियाँ सामान्यता सामंजस्य पूर्व ढंग से कार्य करती है और उनका उद्देश्य समान होता है।
9. समितियों की रिपोर्टो में महत्वपूर्ण प्रमाणित जानकारी होने की वजह से जन साधारण विद्धतजन दोनों के लिए रिपोर्ट बहुत शैक्षणिक महत्व की होती है।
10. समिति के सुझावों और सिफारिशों को प्रबन्ध वर्ग ने बहुत हद तक स्वीकार ही नहीं कर लिया है अपितु संसद और इसके जरिये जनता के प्रति इन उपक्रमों के उच्च पदाधिकारियों के बीच दायित्व की भावना भी जागृत हुई है।

वर्तमान में भारत में संसदीय समितियों ने सफलता पूर्वक कार्य करके ससंदीय कार्य को सरल, दक्ष तथा सुगम बनाया है ये समितियाँ संसद के विवेचन के दक्षता तथा विशेष अनुभवों का समावेश करने में भी कामयाब हो रही हैं। संसदीय समितियों द्वारा की जाने वाली जाँच और आलोचना के भय से अधिकारी अनुचित निर्णय लेने से घबराते हैं। लोक लेखा और ''प्राक्कलन'' समिति ने अनेक ठोस कार्य किये हैं। सरकार समितियों के प्रतिवेदन को समुचित आदर प्रदान करती है और उनके द्वारा दिये गये सुझावो

के क्रियान्वयन हेतु लगातार कार्य करती है। अत: उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय संसदीय व्यवस्था में समितियों की प्रासंगिता आज भी लगातार बनी हुई है।

निष्कर्ष

अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि विश्व की समस्त व्यवस्थापिकाओं सहित भारतीय राजव्यवस्था में व्यवस्थपिकाओं के सुचारू संचालन हेतु समितियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। समितियाँ संविधान के अनुच्छेद 118(1) के अन्तर्गत दोनों सदनों में संचालित होती है। समितियों के माध्यम से व्यवस्थापन में प्रत्येक संसद सदस्य की भागीदारी सुनिश्चित हो जाती है तथा विधेयकों पर निष्पक्षता एवं सूक्ष्मता से विचार हो जाता है। किसी भी सदस्य से निजी एवं दलगत स्वार्स्थ से उपर उठकर कार्य करने की सतत अपेक्षा की जाती है। समितियाँ एक ऐसा माध्यम भी है जो व्यवस्थापिका को नियंत्रित करने का अवसर मिलता है। सदन का किसी विषय की निष्पक्षता से विचार करने के लिए समितियों के माध्यम से समय की बचत हो जाती है। सदन में समितियाँ सामन्जस्य पूर्ण एवं समान उद्देश्य से कार्य करती है। समितियाँ बहुत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सुझाव भी समय-समय पर देती है तथा इनके सुझावों और सिफारिशों को उच्च प्रबन्ध वर्ग से स्वीकार भी किया है तथा इनके सुझावो को समय-समय पर लागू भी किया है। अत: भारतीय संसदीय व्यवस्था में समितियों की भूमिका व प्रासंगिकता के साथ महत्वपूर्ण योगदान भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चंद्रा, अशोक, इण्डियन एड्मिनेस्ट्रेशन, जार्ज ऐलन एण्ड अनविन लिमिटेड, लंदन, 1967, पृ. 180
2. माल्या, एन.एन., इण्डियन पॉर्लियामेण्ट, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, 1970, पृ. 103
3. कश्यप, सुभाष सी., अवर पार्लियामेण्ट नेशनल बुक ट्रस्ट, 1999, पृ. 68
4. जेना बी.बी., पार्लियामेन्ट्री कमेटीज इन इण्डिया, 1966 साइन्टीफिक बुक ऐजेन्सी, नई दिल्ली, पृ. 199
5. सिंघवी, एल.एम., पार्लियामेण्ट्री कमेटीज इन इण्डिया. इन्सटीटयूट, ऑफ कंस्टीटयूशनल एण्ड पार्लियामेन्ट्री स्टडीज, नई दिल्ली, 1973, पृ. 18
6. मेहता, वी.जी., रोल ऑफ एस्टीमेट कमीटीज क्लेरडेन प्रेस ऑक्सफोर्ड बट्टन अन्डर ऐज यू.के., 1955, पृ. 85
7. व्हीयर, के.सी., गवर्नमेण्ट बाई कमिटीज, क्लेटडेन प्रेस ऑक्सफोर्ड बट्टन अन्डर ऐज, यू.के., 1955, पृ. 126
8. लक्ष्मीकान्त, एम., भारत की राज्य व्यवस्था, मैग्रोहिल एजूकेशन प्रा.लि., 2014, पृ. 23.1
9. अग्रवाल, आर.एस., फाइनेंसियल कमीटीज ऑफ द इण्डियन पॉलियामेण्ट, एस.चांद एण्ड कं., नई दिल्ली, पृ. 76
10. त्रिपाठी, एम., कमीटी सिस्टम इन इण्डियन पार्लियामेण्ट, जरनल ऑफ कंस्टीटयूशनल एण्ड पार्लियामेण्ट्री स्टडीज, नई दिल्ली, वोल्यूम-14, अक्टूबर. दिसम्बर, 1980, पृ. 443

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 107-110

वर्तमान भारत-चीन सम्बन्ध (डोकलाम के परिप्रेक्ष्य में)

ISSN 2348-3857

ताहिर अहमद
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

एशियाई महाद्वीप के पूर्व में स्थित चीन विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से एक है जो लगभग छठी शताब्दी से भी अधिक पुरानी है। जनसंख्या के हिसाब से यह सर्वाधिक आबादी वाला देश है जिनमें से 91 प्रतिशत आबादी बौद्ध अनुयायी है। चीन का उल्लेख महाभारत, मनुस्मृति आदि ग्रंथों में भी मिलता है। यह भारत के पड़ोसी देशों में से एक है। 1950 में भारत ने चीन के साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किये थे और इस प्रकार वह चीन लोक गणराज्य को मान्यता देने वाला गैर समाजवादी देश बना था। तब से लेकर अब तक इन 68 वर्षों में भारत व चीन के मध्य सम्बन्ध कई तरह के रहे। चीन के साथ भारत का सीमा विवाद लम्बे समय से चला आ रहा है। विगत दो दशकों से कई दौर की वार्ताओं के पश्चात् भी सीमा विवाद को समाप्त करने में कोई सार्थक परिणाम सामने नहीं आये हैं। चर्चित डोकलाम एक पठार है जो चीन के अधिकार क्षेत्र में है। यह पठार भूटान के हा घाटी, भारत के सिक्किम जिले के पूर्व और चीन की यदोंग काउंटी के मध्य में स्थित है। सामायिक दृष्टिकोण से यह क्षेत्र तीनों देशों के लिए महत्वपूर्ण है। 100 वर्ग किमी में फैला यह क्षेत्र भारत, भूटान व चीन के बीच एक त्रिकोणीय संरचना है जो तिब्बत की चुम्बी घाटी, भूटान की हा घाटी व भारत के सिक्किम के मध्य में स्थित है। डोकलाम विवाद इस क्षेत्र के आधिपत्य को लेकर किया जा रहा है। इस विवाद की शुरूआत वर्तमान में 18 जून 2017 को हुई थी जिसमें कहा गया था कि चीन इस क्षेत्र में सड़क का निर्माण कर रहा है। भारत को चिन्ता है कि युद्ध होने की स्थिति में डोकलाम में कब्जा होने का लाभ चीन को मिलेगा जिससे उसकी जद में भारत का चिकन नेक वाला इलाका आ जायेगा जिससे भारत के पूर्वोत्तर हिस्से का भारत से कटने का डर है।

संकेताक्षर : *भारत, चीन, डोकलाम, सिक्यांग, पंचशील, यदोंग काउंटी, चुम्बी घाटी, सिल्क रोड, ट्राई जंक्शन एवं सिलिगुडी*

भारत व चीन विश्व के दो बडे विकासशील देश है जिन्होंने विश्व शांति के हर प्रयास में सहयोग किया है। दोनों देशों के मध्य एक लम्बी सीमा रेखा है। पूर्वी क्षेत्र में 1100 किलोमीटर लम्बी सीमा है जिसे मैकमोहन रेखा कहा गया है। यह रेखा अरूणाचल प्रदेश को तिब्बत से अलग करती है। पश्चिम में 1600 किलोमीटर लम्बी सीमा रेखा जम्मू-कश्मीर व चीन को सिक्यांग तथा तिब्बत से अलग करती है।

1949 में चीन की स्थापना के बाद 1950 में भारत ने चीन के साथ राजनयिक सम्बन्ध स्थापित किये थें और इस प्रकार वह चीन लोक गणराज्य को मान्यता देने वाला गैर समाजवादी देश बना था। तब से लेकर अब तक इन 68 वर्षों में भारत व चीन के मध्य सम्बन्ध कई तरह के सोपानों से गुजरा। 1954 में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू तथा उनके समकक्ष चीनी प्रधानमंत्री श्री चाउ एन लाई ने पंचशील के सिद्धान्तों को अपनाते हुए दोनों देशों के मध्य सहयोग व समन्वय स्थापित किया जिसमें एक-दूसरे की अखण्डता व सम्प्रभुता का सम्मान, अनाक्रमण, समानता, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व तथा एक-दूसरे मामलों में हस्तक्षेप न करना शामिल था। दोनों देशों के मध्य आर्थिक सहयोग के लिए, व्यापार करने के लिए नाथूला दर्रा को खोलने के साथ साथ सिक्किम के छांगू में चीन का व्यापार केन्द्र तथा तिब्बत के रेनिगगौंग में भारतीय व्यापार चौकी स्थापित करने के लिए दोनों देशों में सहमति हो गई थी। व्यापारिक वीजा की अवधि में भी विस्तार किया गया था हालांकि व्यापारिक सम्बन्धों को लेकर आपसी मतभेद भी रहे हैं। दुनिया की लगभग आधी आबादी वाले दोनों देशों के मध्य बाजार व व्यापार की इतनी विपुल

ISSN 2348-3857

सम्भावनाएँ हैं कि साझा बाजार को स्थापित किया जा सकता है। चीन के साथ भारत का सीमा विवाद लम्बे समय से चला आ रहा है। विगत दो दशकों से कई दौर की वार्ताओं के पश्चात् भी सीमा विवाद को समाप्त करने में कोई सार्थक परिणाम सामने नहीं आये हैं। हालांकि चीन ने अन्य पड़ोसी देशों जैसे पाकिस्तान, नेपाल, भूटान व म्यांमार से अपने सीमा विवाद समाप्त कर दिये हैं तथा रूस, कजाकिस्तान व वियतनाम से भी विवादों को विराम दे दिया है।

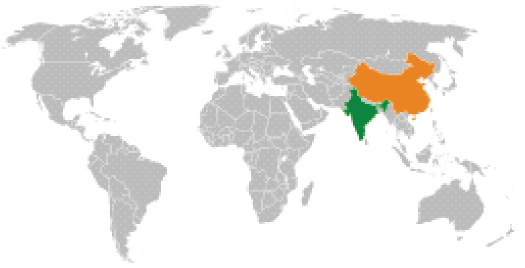

चित्र - 1: विश्व में भारत एवं चीन की अवस्थिति

जहां तक सिक्किम का सम्बन्ध है चीन ने इसे भारत का अंग मानने की मान्यता परोक्ष रूप से नहीं दी है साथ ही पाकिस्तान के साथ चीन का सामरिक लगाव भी भारत -चीन के मध्य अविश्वास के भाव को और बढ़ा रहा है। चीन द्वारा पाकिस्तान को दिये जा रहे आधुनिक हथियारों के कारण उपजी चिन्ता इस अविश्वास की मुख्य वजह है। पाकिस्तान में चीन न सिर्फ कारकोरम दर्रे में राजमार्ग का निर्माण कर अपनी सेना के लिए अरब सागर तक मार्ग बना चुका है अपितु नेपाल सीमा को भी राजमार्ग से जोड़ने का प्रयास कर रहा है। वर्तमान में चीन भारत से वार्ता के लिए आतुर हो रहा है। उसका यह झुकाव अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में आये बदलाव, भारत की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हो रही सुदृढ़ स्थिति व उससे उत्पन्न आवश्यकताओं के कारण हुआ है। चीन व भारत के मध्य प्रत्येक वर्ष वार्ताओं का दौर चलता रहता है किन्तु किसी भी विवाद पर अभी भी पूर्णरूप से सहमति नहीं बन पाई है।

डोकलाम

चर्चित डोकलाम एक पठार है जो चीन के अधिकार क्षेत्र में है उस पर भूटान अपना अधिकार मानता है। यह पठार भूटान के हा घाटी, भारत के सिक्किम जिले के पूर्व और चीन की यदोंग काउंटी के मध्य में स्थित है। सामायिक दृष्टिकोण से यह क्षेत्र तीनों देशों के लिए महत्वपूर्ण है। 100 वर्ग किमी में फैला यह क्षेत्र भारत, भूटान व चीन के बीच एक त्रिकोणीय संरचना है जो तिब्बत की चुम्बी घाटी, भूटान की हा घाटी व भारत के सिक्किम के मध्य में स्थित है।

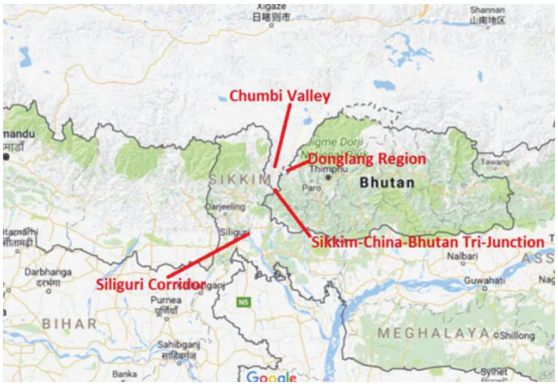

चित्र 2 : डोकलाम पठार की स्थिति

डोकलाम विवाद

डोकलाम विवाद इस क्षेत्र के अधिपत्य को लेकर किया जा रहा है। इस विवाद की शुरूआत वर्तमान में 18 जून 2017 को हुई थी जिसमें कहा गया था कि चीन इस क्षेत्र में सड़क का निर्माण कर रहा है। डोकलाम विवाद का मुख्य कारण उसकी अवस्थिति है। जो कि एक ट्राई जंक्शन है। वैसे तो भारत का इस क्षेत्र से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है किन्तु भारत व भूटान के मध्य 1949 से चली आ रही दोस्ती के लिए के साथ-साथ सैन्य सहयोग का करार किया हुआ है। 2007 में भारत व भूटान के मध्य हुई मैत्री संधि के अनुच्छेद 2 में स्पष्ट किया गया है कि भारत व भूटान के बीच के सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए दोनों देशों की सरकार निकट सहयोग करेगी एवं राष्ट्रीय हितों के मुद्दों पर एक साथ है।

भौगोलिक रूप से डोकलाम भारत के नाथुला पास से मात्र 15 किमी की दूरी पर स्थित है चुंबी घाटी में स्थित यह स्थान सामरिक दृष्टि से भारत व चीन दोनों के लिए काफी महत्वपूर्ण है। वर्ष 1988 और 1998 में चीन व भूटान के मध्य समझौता हुआ था कि दोनों देश डोकलाम क्षेत्र में शान्ति बनाए रखेगे किन्तु चीन अपना वादा तोड़ता नजर आ रहा है। क्षेत्र में हो रहे निर्माण कार्यों के लिए भूटान ने आपत्ति तो दर्ज कराई है किन्तु वे निर्माण कार्यों का विरोध करने में सक्षम नहीं है। हालांकि यह दोनों देशों के मध्य किये गये समझौतों का उल्लंघन है। भारत इस मुद्दे पर इसलिए चिन्तित है क्योंकि एक तरफ तो भूटान से दोस्ती वहीं दूसरी ओर सुरक्षा से सम्बन्धित मुद्दा भी है। भारत का मानना है कि चीन एक तरफा ट्राई जंक्शन बदल रहा है जो भारत के साथ 2012 में किये गये समझौते का उल्लंघन है साथ ही चीन के सड़क बनाने

से इलाके की स्थिति में बदलाव आयेगा जिसका उपयोग करने पर पूर्वोत्तर राज्यों को जोड़ने वाला कॉरिडोर चीन की सेना की जद में आ जायेगा। वहीं चीन का कहना है कि यह प्रस्तावित सड़क उसके तिब्बत सिल्क रोड़ का एक हिस्सा है।

वर्तमान स्थिति

यह माना जा रहा है कि युद्ध होने की स्थिति में डोकलाम में कब्जा होने का लाभ चीन को सबसे ज्यादा मिलेगा जिससे उसकी जद में सिलिगुडी से लेकर आसपास का क्षेत्र आ जायेगा यदि चीन इस क्षेत्र में अपनी सैन्य उपकरणों की तैनाती कर देता है तो भारत का चिकन नेक वाला इलाका आ जायेगा जिससे भारत के पूर्वोत्तर हिस्से का भारत से कटने का डर है। भारत चीन की इस मंशा से अनजान नहीं है किन्तु वे उसे किसी भी प्रकार की बढ़त देने के मूड में नहीं है। हालांकि चीन ने तिब्बत के दूरस्थ पहाड़ी इलाकों में हाइवे का निर्माण कर लिया है ताकि युद्ध की स्थिति में सैन्य सामान कुछ ही समय में भारतीय सीमा तक पहुंचा सकते है। अगस्त 2018 में चीन के बुहान में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और शी जिनपिंग के मध्य अनौपचारिक शिखर वार्ता हुई जिसमें भारत चीन के रिश्तों को और व्यापक एवं मजबूत करने पर चर्चा की गई। दूसरी ओर अमेरिका ने भी कहा है कि डोकलाम में सैन्य गतिरोध पर तनाव कम करने के लिए किसी भी प्रकार के बल प्रयोग के बजाय दोनों देशों को सीधी वार्ता करनी चाहिए। डोकलाम को लेकर परेशानी खड़ी करने वाले चीन ने फिर से अपने नापाक इरादे जाहिर कर दिये हैं जिससे उसकी कथनी और करनी में साफ अन्तर दिखाई दे रहा है। प्राप्त सूचना के आधार पर चीन ने विवादित स्थल पर एक बार फिर से 1500-2000 सैनिकों को भेज कर साथ ही सड़क निर्माण का कार्य भी आरम्भ कर दिया है। हालांकि अगस्त 17 में चीन ने गतिरोध समाप्त करते हुए ऐसा दोबारा करने से मना किया था। इस गतिरोध की शुरूआत 18 जून 2017 को उस समय हुई लगभग 300 भारतीय सैनिकों ने भारत चीन सीमा पार कर पी.एल.ए. को डोकलाम में सड़क बनाने से रोक दिया था।

उरी में हुए आतंकवादी हमले के बाद भारत की और से यह संकेत दिया गया कि वह पाकिस्तान के साथ किये गये सिंधु जल समझौते को रद्द करने पर गंभीरता से विचार कर रहा है। ऐसा संकेत मिलते ही चीन ने सिंधु जल समझौते को रद्द किये जाने की सूरत में पाकिस्तान का साथ देने का ऐलान किया। इसी प्रकार चीन ने तिब्बत में लाल्हो हाइड्रो पॉवर प्रोजेक्ट के लिए ब्रह्मपुत्र नदी की सहायक नदी जियाबुकु पर पनबिजली के लिए बांध बनाकर अपने इरादे स्पष्ट कर दिये हैं। इससे इस आशंका को बल मिला कि ब्रह्मपुत्र नदी में पानी की मात्रा कम हो जायेगी जिसका भारत पर प्रभाव पडेग़ा परन्तु ऐसा नहीं है। हालांकि इसका असर तिब्बत पर जरूर पड़ेगा। इस बांध के बनने का सबसे बडा दुष्प्रभाव ब्रह्मपुत्र नदी की सहायक नदी जियाबुकु पर ही पड़ेगा जो वर्तमान में सूखने के कगार पर है। इसका दूसरा दुष्प्रभाव दक्षिण एशियाई मैदानों की मिट्टियों की उपजाऊ क्षमता पर भी पड़ेगा क्योंकि नदी का बहाव उस ओर कम हो जायेगा। इसके पीछे चीन की सरकार का तर्क है कि तिब्बत में हो रही बिजली की कमी को देखते हुए ऐसा किया जा रहा है साथ ही कोयले पर निर्भरता को कम किया जा सके। इसके अतिरिक्त चीन सरकार का सोचना है कि बचने वाली अतिरिक्त बिजली को भारत को बेचा जा सकता है। ऐसा सोचते हुए ही चीन ने भारत के साथ अक्टूबर 2013 में ब्रह्मपुत्र को लेकर एक समझौता किया था किन्तु डोकलाम विवाद के चलते ऐसा नहीं हो पाया।

भारत के अन्य पड़ोसी देश नेपाल ने अभी तक चुप्पी साध रखी थी किन्तु अब उसने स्पष्ट किया है कि अपनी विदेश नीति के कारण डोकलाम मामले में अपने किसी भी पड़ोसी का साथ नहीं देगा। इससे नेपाल यह दर्शाना चाहता है कि वह अपने पड़ोसी देशों के साथ तटस्थ और समान दूरी रखने की नीति का पालन करता है। वर्तमान में दोनों देश डोकलाम मामले में नेपाल का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश कर रहे है जहां एक ओर चीनी मिशन के उप-प्रमुख काठमांडू में अपने देश की ओर से रूख स्पष्ट कर चुके हैं, वही भारत की ओर से इस मामले में अपना रूख स्पष्ट किया जाना बाकी है।

यह तय है कि डोकलाम क्षेत्र में यह गतिरोध जितने समय तक जारी रहेगा उतना ही जटिल होता चला जायेगा क्योंकि दोनों ही देश नियन्त्रण रेखा से पीछे हटने के लिए तैयार नहीं है। ऐसे में दोनों देशों को इसका कूटनीतिक तरीके से समाधान निकालना चाहिए। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चीन द्वारा यह प्रसारित किया जा रहा है कि भारत को 1962 की भारत चीन की लडाई को ध्यान में रखना चाहिए और उसे अपनी क्षमता का आकलन करना चाहिए जिसके प्रत्युत्तर में श्री अरूण जेटली ने कहा है कि भारत 1962 वाला कमजोर देश नहीं है और उसकी क्षमता को कम आंकना चीन की भंयकर भूल होगी।

समाधान के लिए उपाय

उपरोक्त समस्या के समाधान के लिए दोनों देश लम्बे समय से प्रयासरत हैं किन्तु कथनी व करनी में अन्तर के कारण समय समय पर समस्याएं उत्पन्न होती रहती है। पूर्व में ही दोनों देशों के मध्य

यह तय किया जा चुका है कि केवल कूटनीतिक माध्यम से ही इस समस्या का समाधान किया जायेगा। वर्ष 2005 में चीनी नायक वेन जियाबाओं के भारत आगमन पर एक ऐतिहासिक संधि पर हस्ताक्षर किये गये जिसके अनुसार दोनों देश दशकों पुराने सीमा विवाद के निपटान में सेना का प्रयोग नहीं करेगा। साथ ही वर्ष 2013 में जब भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह चीन गये थे तो दोनों देशों के बॉर्डर डिफेन्स कॉपरेशन ऐग्रीमेन्ट पर हस्ताक्षर किये गये थे जिसमें निहित था कि पेट्रोलिंग करते हुए दोनों देशों के सैनिक आपस में टकरा जाते हैं या कोई भी सैनिक एक दूसरे की परिधि में चला जाता है या घुसपैठ करता है तो दोनों देशों के सैनिक एक दूसरे पर गोली नहीं चलायेंगे बल्कि उचित तरीके से इस समस्या का समाधान करेगें। आज भी दोनों देश इसका पालन करते आ रहे है।

इसी क्रम में 2018 में भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने चीन के वुहान में अपने समकक्ष श्री जिनपिंग से वार्ता कर कई समस्याओं के समाधान हेतु संधियों पर हस्ताक्षर किये गये। वुहान में वार्ता आयोजित किये जाने का तात्पर्य यह था कि वुहान यंगते नदी के किनारे स्थित है जिसे वहां की गंगा नदी माना जाता है जो एशिया की सबसे बड़ी नदी है। इस मिटिंग में सबसे मुख्य मुद्दा जो तय किया वो ट्रेड बेलेंस से सम्बन्धित था। इन सब बातों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों देश डोकलाम विवाद को सुलझाने के लिए प्रयासरत है लेकिन भारत को विश्वास न करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ करते रहना है।

निष्कर्ष

यह सर्वविदित है कि भारत व चीन दोनों देशों को संयम से काम लेना चाहिए क्योंकि चीन के उत्पादों के लिए भारत एक बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र है यदि दोनों देशों के मध्य युद्ध हो जाये तो चीन को एक बहुत बडे. व्यापारिक केन्द्र से हाथ धोना पड़ेगा साथ ही पाकिस्तान के सहयोग से आतंकवाद को और अधिक बढ़ावा मिल जायेगा जिसका नुकसान भारत के साथ-साथ अन्य देशों को भी उठाना पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में अन्य देश भारत का सहयोग करने के लिए तत्पर रहेंगे और धीरे धीरे दो देशों का यह युद्ध विश्व युद्ध की शक्ल ले लेगा। अत: दोनों देशों के लिए यह उचित होगा कि वे वार्ताओं के माध्यम से अपने पक्ष को रखकर उसका उचित निपटान करने की कोशिश करे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रिचर्ड, रोसक्रेन, रिजनलिस्म एण्ड द पोस्ट कोल्ड वार इरा, इन्टरनेशनल जर्नल, 1991, पृ. 46
2. यीमीन, जनरल, हिस्टोरिकल आस्पेक्ट ऑफ पंचशील, इन चायना एण्ड पंचशील, संचार पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996, पृ. 225
3. कुमार, सतीश, इण्डो चायना रिलेशन्स् एण्ड तिब्बत, ए रीथिकिंग, तिब्बतन् पार्लियामेन्ट्री एण्ड पॉलिसी रिसर्च सेन्टर, नई दिल्ली, 1998
4. मेहता, जगत एस, इण्डियन एण्ड चायनीज़ फॉरिगन पॉलिसीज़ इन कम्परेटिव पर्सपेक्टिव, नई दिल्ली, 1998, पृ. 485
5. रंगराजन, सी.वी. एण्ड खन्ना, सी., इण्डिया चायना रिलेशन्स्, चेन्जिंग कॉन्टेक्टस्, वोल्यूम 21 नम्बर 23,4, न्यूज़फ्राम नॉन अलाईड वर्ल्ड, अप्रेल 2000, नई दिल्ली
6. सिन्हा डॉ. परमा, एनालाईसिंग चायनाज् सोफ्ट पॉवर स्ट्रेटजीज एण्ड कम्परेटिव इण्यिन इनिश्येटिव, वोल्यूम 34 नम्बर 6, इंस्टीट्यूट ऑफ डिफेन्स स्टेडिज़ एण्ड ऐनालिसिस, नई दिल्ली
7. ए जर्नल ऑफ इण्टरनेशनल अफेयर्स, वोल्यूम एलएक्सआई नम्बर 3, इण्डियन काउसिंल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स, इंडिया क्वार्टली, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 111-114

मानवाधिकार एवं स्त्री विमर्श

डॉ. हरिचरण मीना

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग

शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह, राजकीय महाविद्यालय, सवाई माधोपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

वर्तमान समाज में मानवाधिकार एवं स्त्री विमर्श महत्वपूर्ण विषय हैं। समाज में आधी आबादी महिलाओं की हैं। एक तरफ महिलाओं को देवी का दर्जा दिया गया है तो दूसरी तरफ कन्या भ्रूण की घटनाएँ भी घटित हो रही हैं। सभी युगों एवं देशों में महिलाओं की स्थिति भिन्न भिन्न रही हैं। पश्चिमी दृष्टिकोण में महिलाओं ने पुरूषों के बराबर के मानवाधिकार की मांग की है तो भारत में देवी तुल्य मानने के बाद भी मानवाधिकार के लिए संघर्षरत हैं। जहाँ पश्चिमी देशों में महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष की शुरूआत महिलाओं ने की है वही भारत में महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष की शुरूआत पुरूषों द्वारा की गई है तथा इसमें महिलाओं ने भी बढ चढ कर हिस्सा लिया। वर्तमान में महिलाएँ सरकारी नौकरी में आने लगी है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है लेकिन अभी भी परिवार में पुरूषों का वर्चस्व बरकरार है अत: आवश्यकता यह है कि महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक इत्यादि सभी अधिकार दिये जायें।

संकेताक्षर : *वैश्वीकरण-भूमण्डलीकरण, बाजारवाद-व्यापारवाद, महिला मानवाधिकार, पितृसतात्मक समाज*

वर्तमान में स्त्री की सामाजिक स्थिति एवं उनके मानव अधिकारों का हनन महत्वपूर्ण विषय है। उसके बिना ना सृष्टि बनती है ना समाज, ना घर, ना परिवार। विश्व की लगभग आधी आबादी स्त्रियों की है। वैश्वीकरण एवं बाजारवाद के चलते सामाजिक जीवन एवं परिस्थितियां बदल रही है लेकिन सवाल यह है कि स्त्री की दुनिया कितनी बदली है। बदली भी है या नहीं। क्या बदलाव केवल दिखावा है या वास्तविकता। एक तरफ महिला को देवी के रुप में मंदिरों में पत्थरों से तराश कर बिठाया गया है तो दूसरी तरफ महिला को डायन बताकर मार दिया जाता है। एक तरफ महिलाएँ देश के सर्वोच्च पदों पर पहुँच रही है तो दूसरी तरफ कन्या भ्रूण हत्या की जा रही है। इसलिए महिलाओं के लिए मानवाधिकार आज भी अमृत से समान ही है। दरअसल हमारे समाज में पारम्परिक तौर पर रचनात्मक कार्यक्षेत्र या पारिवारिक सत्ता श्रृंखला में पुरुष के बराबर का दर्जा महिला को कभी भी नहीं दिया गया। चाहे परशुराम द्वारा पिता के इशारे पर निरपराध माता के वध का प्रसंग हो, या गौत्तम का इन्द्र द्वारा छली गई अपनी पत्नी को शिला बना देने का, शकुन्तला का निर्वासन हो या सीता का परित्याग, गांधारी का अभिशप्त अंधा वैवाहिक जीवन हो या कुंती का उतना ही अभिशप्त मातृत्व। द्रोपदी का चीरहरण हो चाहे दिल्ली की निर्भया का गैंग रेप व मौत। बसमतिया हो, भंवरीबाई हो, फूलनदेवी हो या नैना साहनी, जैसिका लाल हो, राजस्थान की नर्स भंवरी देवी इन सब का सफर यह सिद्ध करता है कि हर परिदृश्य की सबसे कमजोर और दबी हुई इकाई स्त्री ही रही है। यहाँ तक कि पुरुषों के अपराधों की सजा भी हमेशा स्त्री को ही दी जाती है। पुरुषों द्वारा दी जाने वाली गालियां भी स्त्रियों को ही अपमानित करती है। इन सब बातों से स्पष्ट है कि महिलाओं को उनके मानवाधिकार नहीं मिले हैं। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, अत्याचार, शोषण, मातृत्व की समस्या आज भी ज्यों की त्यों है।

महिला उत्पीड़न के मूल में निरक्षरता, रुढिवाद, और अन्ध विश्वास जैसे का तैसा है। वैश्वीकरण के कारण जो संचार क्रांति आई है उसने कम से कम हमारी आंखें तो खोल कर रख दी है। अमर्त्य सेन की एक रिपोर्ट में बताया गया हैं कि भारत में 3 करोड़ सात लाख लडकियां मिसिंग है। यहाँ मिसिंग से अभिप्राय पुत्र की चाह में मारी गई लड़कियों की संख्या से है। नवरात्रि के पर्व पर कन्या पूजन करने वाले देश में पडौसी की कन्या को बुलाकर भोजन करवाकर देवी की पूजा करने वाले अपनी कोख में बेटी आने पर कन्या भ्रूण

हत्या कर देते हैं। यूनिसेफ की ''राष्ट्रों की प्रगति '' नामक रिपोर्ट में उल्लेख है कि अतीत में सात करोड़ भ्रूण सिर्फ इसलिए मार दिए गये क्योंकि वे कन्या के रुप में जन्म लेने वाले थे।

यूनीसेफ में 1995 की भारतीय राज्यों की प्रगति रिपोर्ट में अलर्ट करते हुए कहा था कि 4.5 करोड़ स्त्री आबादी विलुप्त होती जा रही है। पर हम अलर्ट नहीं हुए जिनके परिणाम हमारे सामने है कि 2011 की जनगणना में भारत में लिंग अनुपात अब तक के सबसे नीचे के स्तर पर पहुंच कर 914 हो गया है। 27 राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में शिशु लिंग अनुपात में लगातार गिरावट देखी गई। अत: हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश, सब बेटी बचाओं में लगे है। पर बेटियां बचेंगी तब जब उन्हें उनके मूल अधिकार दिये जायेगें। कब तक उसे समानता, आत्म सम्मान, पिता की सम्पति में हिस्सा और न्याय से वंचित रखा जायेगा। हमारी परम्पराओं ने स्त्री का ऐसा समाजीकरण किया है कि अधीनता, परतंत्रता को वह खुद गहरे तक आत्मसात कर बैठी है। स्वास्थ्य, शिक्षा, राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता यहाँ तक की व्यक्ति बोध जैसे मौलिक अधिकारों से भी वह वंचित है।

स्त्री इस समय संक्रमण काल से गुजर रही हैं। इस समय वह वस्तु से मनुष्य बनने की प्रकिया से गुजर रही हैं। वह पढ लिख रही है कारखानों, दफ्तरों में काम कर रही हैं, वह चूड़ी-कंगन वाले हाथों से कम्प्यूटर चला रही हैं। वह डॉक्टर, इंजीनियर, लेखक, प्रोफेसर, वैज्ञानिक तक बन रही है। वह मानवीय गरिमा की खोज में जुटी हुई हैं,पुरुष से प्रेम करती है पर अपनी बौद्धिकता को सिद्ध करने में लगी हैं। महिलाओं पर भूमण्डलीकरण के प्रभाव का विश्लेषण करे तो एक स्त्री पर विशेष दबाव देखा जा सकता है। खासकर भारत जैसे विकासशील देशों में स्त्रियों को न केवल पितृ सत्तात्मक सामाजिक अवरोधों का सामना करना पड़ रहा है बल्कि पश्चिम के प्रौद्योगिकीय वर्चस्व का दबाव भी झेल रही हैं।

भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति अंतर्विरोधों से भरी हुई हैं। परम्परा से नारी को शक्ति का रूप माना गया हैं, पर आम बोलचाल में उसे अबला कहा जाता हैं। भारतीय समाज में स्त्री की इस विरोधाभासपूर्ण स्थिति की अनुगूंज ऋग्वेद की ऋचाओं से ही प्रारम्भ हो जाती है जिसमें कहीं तो अत्यंत श्रेष्ठ मानते हुए पूज्य बनाया गया हैं, तो कहीं कामवासना का मूर्त रूप मानते हुए मुक्ति मार्ग में बाधक, त्याज्य और मूर्ख। मध्यकालीन भक्त कवियों कबीर, दादू, तुलसी, जायसी और सूर आदि के यहां भी स्त्री को लेकर अंतर्विरोधी उक्तियां विद्यमान हैं। आज भी हमारे समाज और साहित्य में कमोबेश स्त्री के प्रति यही अंतर्विरोधी रवैया मौजूद हैं। एक तरफ उसे देवी का स्थान दिया जाता हैं या यह कहा जाता है कि ऐसा स्थान हमारे धर्मग्रंथों ने उसे दिया है, और दूसरी तरफ उसे पुरूष के पथभ्रष्ट का कारण भी माना जाता है।

गौरतलब है कि स्त्रियों के प्रति पुरूषों के इसी रवैये के कारण भारत में स्त्री-विमर्श की पश्चिम से अलग सैद्धांतिकी की जरूरत है। पश्चिम के धार्मिक कहे जाने वाले आदि ग्रंथों में स्त्रियों की वैसी विरोधाभासपूर्ण स्थिति नहीं रही है जैसी भारत में। उनमें स्त्रियों की स्थिति स्पष्ट हैं-पुरूषों से कमतर,दोयम। उनमें स्त्री को कहीं भी देवों के समकक्ष देवी का दर्जा नहीं दिया गया। बल्कि चर्च से जुड़ी महिलाओं में ग्यारहवीं शताब्दी की हिल्डेगार्ड और पंद्रहवी शताब्दी की जुलियन ने ईश्वर को मां के रूप में प्रस्तुत कर स्त्री के गुणों के प्रति लोगों में सम्मान जगाने का प्रयास किया। मार्ग्रे केम्पे ने अपनी आत्मकथा में ईश्वर को प्रेमी अथवा अत्यंत प्रिय मित्र के रूप में चित्रित किया। एमिलिया लन्यर ने 1611 ई. में अपने पाठकों को बताया कि क्राइस्ट का जन्म स्त्री से हुआ, उनका पालन पोषण भी स्त्री ने किया। उन्होंने न केवल स्त्री की आज्ञा का पालन किया बल्कि स्त्रियों के दुख दर्द को बांटा। इस प्रकार क्राइस्ट को मां, पति तथा हमदर्द के रूप में प्रस्तुत कर स्त्रियों ने समाज में अपने लिए एक सम्मानजनक स्थान की मांग की। एक ऐसा सम्मानजनक स्थान जो भारतीय स्त्रियों को पहले से ही प्राप्त था।

अतीत में ही नही, आधुनिक युग में भी पश्चिम में स्त्री अधिकारों की सारी लड़ाइयां स्त्रियों द्वारा खुद लड़ी गई। उनका प्रतिपक्ष स्पष्ट था-पुरूष वर्ग,जो स्त्री-सरोकारों की लडाई में सबसे बड़ा बाधक था। पश्चिम में स्त्री शिक्षा के लिए महिलाओं ने जो मुहिम चलाई उसमें बॉथ्सुआ माकिन, मार्ग्रेट कैवेंडिश, मेरी ऑस्टेल, कैथरीन मैकाले और मेरी वॉलस्टोनक्राफ्ट का नाम प्रमुख हैं। 'सबके लिए शिक्षा'-पश्चिमी स्त्रियों की इस मुहिम में वहां के पुरुष समुदाय में से कोई भी सामने नहीं आया। बाद में चल कर पश्चिम में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्शो में दो पुरुष सामने आए-विलियम थॉमस और जॉन स्टुअर्ट मिल-जिन्होंने स्त्री अधिकारों की लडाई में न केवल साथ दिया बल्कि बढ-चढ कर हिस्सा लिया। विलियम थॉमस ने 'अपील ऑफ वन हाफ ऑफ द ह्यूमन रेस'(1825) में विवाहित स्त्रियों की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला। जॉन स्टुअर्ट मिल 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमन'(1869) में बताया कि स्त्रियों की अधीनता न केवल गलत हैं बल्कि सम्पूर्ण मानव समुदाय की उन्नति में बाधक हैं। इन दो नामों के अलावा पश्चिमी समाज में स्त्री सरोकारों की लडाई में उस समय और कोई नाम शायद नहीं मिलता हैं।

दूसरी ओर भारत में आधुनिक युग में स्त्री सरोकारों की सारी लड़ाइयां एक मुहिम के रूप में नवजागरण काल के पुरूष समाज सुधारकों द्वारा शुरू की गई। राजा राममोहन राय, मृत्युंजय विद्यालंकार, ज्योतिबा फूले, ईश्वरचंद विद्यासागर, बेहराम मलबारी, महादेव रानाडे आदि ने स्त्रियों जुड़े लगभग हर मुद्दे को उठाया और स्त्रियों को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाने का प्रयास किया। ऐसा नहीं है कि स्त्री-अधिकारों के लिए तत्कालीन लडाई में स्त्रियां मूकदर्शक बन कर खड़ी थीं और उनकी सारी लड़ाइयां पुरूष ही लड़ रहे थे। हमारे पास नवजागरणकालीन ऐसी स्त्री नामों की लंबी सूची है जो उस समय की तमाम सीमाओं के बावजूद पुरूष वर्चस्ववादी व्यवस्था के व्यूह को तोड़ कर न केवल अपनी लडाई लड़ती हैं बल्कि पूरी स्त्री जाति के लिए संघर्ष करती हैं। इन नामों में रमाबाई रानाडे, पंडिता रमाबाई सरस्वती, नवाब फेजुनेसा चौधरानी, सावित्री फुले, रूक्या, सरोजनी नायडू, ज्योतिर्मयी देवी, अबला घोष आदि का नाम प्रमुख हैं।

निश्चय ही भारतीय और पश्चिमी समाजों में स्त्री सरोकारों के सम्बंध में पुरूषों की भूमिका भिन्न हैं। पश्चिम में यह मुहिम स्त्रियों द्वारा शुरू की गई जिसको बहुत बाद में दो पुरूषों का साथ मिला, जबकि भारत में स्त्री सरोकारों की सैद्धान्तिक और व्यवहारिक लडाई पुरूषों द्वारा शुरू की गई जिसमें स्त्रियों ने बढ-चढ कर हिस्सा लिया। ऐसे में स्त्री विमर्श के पश्चिमी मॉडल से भारतीय स्त्री विमर्श को कैसे समझा जा सकता हैं ?

स्त्री-विमर्श की पश्चिमी सैद्धान्तिकी से उधार लेकर भारत में स्त्रियों की स्थिति और स्त्री-पुरूष संबंधों की जटिलता को उजागर करनें की कोशिश में ही भारतीय स्त्रियों की और उनके साथ पुरूषों की भी ऐसी तस्वीर सामने आती हैं जो पूर्णतया सही प्रतीत नहीं होती। हर देश में स्त्री संघर्ष का अपना इतिहास है जो अपने लिए एक अलग सैद्धांतिकी की मांग करता है। इसके आधार पर ही वहां के स्त्री-विमर्श को समझा जा सकता है और इस बात को स्त्री-विमर्श के अनेक पैरोकारों ने बहुत पहले ही महसूस किया था।

यहां जिक्र करना जरूरी हैं कि 1960-70 के दशक में पश्चिम के नारीवादियों का नारा था 'सिस्टरहुड इज पावरफुल'। निश्चय ही इस नारे ने एक स्त्री को दूसरी स्त्री से जोड़ा। इसने वर्ग, नस्ल, भाषा और देश की सीमाओं से अलग हर स्त्री को स्त्रीत्व की नियति से जोड़ कर देखा। महिलाओं का सारा ध्यान लिंग-भेद के अंतर पर केंद्रित होता है, जबकि नस्ल और वर्ग भी महिलाओं की स्थिति को बहुत प्रभावित करते हैं। ब्राजील की महिलाओं ने इन आंदोलनों को यूरोप-केंद्रित बताते हुए कहा कि इनका औरतों की स्थानीय समस्याओं, नस्ली हिंसा तथा स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से कुछ लेना-देना नहीं हैं। अश्वेत महिलाओं से काम के दौरान जो भेदभाव बरता जाता है, नारीवादियों का उससे कोई लेना-देना नहीं हैं।

यह महसूस किया जाने लगा था कि पश्चिमी नारीवादियों के संघर्ष और अन्य स्थलों के नारीवादियों के संघर्ष में मूलभूत अंतर हैं। इतना ही नहीं, 1998 में नताशा वाल्टर ने अपनी किताब 'द न्यू फेमिनिज्म' में पश्चिमी नारीवादी आंदोलनों की सीमाओं को रेखांकित करते हुए इस बात पर बल दिया कि सभी स्त्रियों को साथ लेकर चलना हमारा लक्ष्य नहीं होना चाहिए बल्कि सभी पुरूषों को साथ लेकर चलना चाहिए तभी स्त्री-पुरूष में सामाजिक समानता स्थापित हो पाएगी। नताशा वाल्टर की किताब के प्रत्युत्तर में जरमेन ग्रीयर की 'द होल वुमन' (1999) आई। इसमें जरमेन ग्रीयर ने दिखाया कि किस प्रकार पहले के नारीवादियों के प्रयास से महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त हुए अत: उन नारीवादियों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

लब्बोलुआब यह कि किसी भी नस्ल, जाति, संस्कृति और स्त्री-संघर्ष में वहां के पुरूषों की भूमिका के आधार पर ही देश-विदेश के स्त्री-विमर्श की सैद्धांतिकी बनती है जो जाहिर तौर पर कुछ मामलों में अलग होती है, होगी और इसके झरोखे से ही वहां के स्त्री-विमर्श की सूक्ष्मताओं को समझा जा सकता है। मसलन, पश्चिमी स्त्री-विमर्श में वहां का पुरूष कठघरे में खड़ा हैं लेकिन भारतीय संदर्भ में हम पुरूषों को वैसे कठघरे में नहीं रख सकते।

भूमण्डलीकरण के कारण महिलाओं के नौकरी के अवसर तो बढे है लेकिन वेतन नहीं बढे। पगार के रूप में कुछ धन हाथ में तो आया पर उस पगार पर भी उतना अधिकार नहीं हैं। स्त्री के बाहरी कार्यक्षेत्र में सस्ते श्रम से राष्ट्रीय अर्थतंत्र एवं पारिवारिक अर्थव्यवस्था का स्तर तो सुधरा पर उसे अपने ही वेतन से पैसा जेब खर्च की तरह मिला। नौकरी के साथ-साथ घर का सारा कामकाज भी महिला को की करना पड़ रहा है। भूमण्डलीकरण के विस्तार ने निश्चय ही दुनिया को सब की मुठठी में किया है। एक जबरदस्त संचार क्रांति ला दी है। विस्तार और विकास के दरवाजे खोल दिये हैं बावजूद इसके इस भूमण्डलीकरण ने स्त्री के लिए खुले आकाश से ज्यादा एक बड़े बाजार का ही विस्तार किया है। उसे व्यक्ति स्वतंत्रता एवं अधिकार के नाम पर विज्ञापनों से लेकर दुकानों तक वस्तु के रूप में ही इस्तेमाल किया है। उसे सुपर मॉडल से लेकर बार बाला तक, विश्वसुन्दरी से लेकर ब्रह्माण्ड सुन्दरी बनाकर चकाचौंध की दुनिया के शो-केस में गुड़िया बना रखा है। यह सब उसकी देह के इर्द-गिर्द रचा गया मायाजाल है। जहाँ उसकी योग्यता उसकी बौद्धिकता नहीं है उसकी दैहिक सुंदरता है।

भूमण्डलीकरण के इस प्रतियोगी युग में वह मानव बनने कि प्रकिया से फिर एक बार एक वस्तु में बदल दी जाती है। चमक दमक बिना इस ग्लेमरस औरत की इस दुनिया के साथ मजदूरी करती, खेतों में खपती, बोझा ढोती स्त्रियों का कोई मेल नही। दाल-रोटी,तन ढकने के वस्त्र के लिए बेहाल स्त्रियों की दुनिया भूमण्डलीकरण से प्रभावित नहीं हैं। उसे ना भूमण्डलीकरण पता है ना मानव अधिकार और एक तीसरी दुनिया उन औरतों की भी है जो धार्मिक रुढियों,अंधविश्वासों, रीति रिवाजों,परम्पराओं,घर परिवार रिश्ते-नाते,शर्म हया और पर्दाप्रथा जैसी हजारों बेडियों से आज भी जकड़ी हुई है। सबसे बड़ी समस्या इसी मध्यमवर्गीय समाज की महिलाओं की है जो अपने हक अधिकारों को लेना तो दूर उनके बारे में सोच भी नहीं पाती क्योंकि वह औरत महिमामंडित छवि में ढाल दी गई हैं उसे वही करना होता है जो उससे अपेक्षित है। उसका अपनी देह पर अधिकार नहीं है। उसका अपने गर्भ में पल रही संतान पर अधिकार नहीं है। उसे अपनी पसंद का साथी चुनने का अधिकार नहीं है। साथ ही उसे पसंद का कार्यक्षेत्र चुनने का अधिकार भी नहीं हैं।

इस स्त्री को अभी भी स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, आर्थिक स्वतंत्रता,राजनैतिक स्वतंत्रता, दैहिक मानसिक स्वतंत्रता, व्यक्तिबोध जैसे मूलाधिकारों के लिए लडना है। उसे थोपी हुई परम्पराओं को ध्वस्त करना है। उसे अपनी रचनाधर्मिता, रचनात्मकता और रचना प्रकिया तय करनी है। स्वयं को व्यक्ति के रुप में स्थापित करते हुए एक स्पेस चाहिए जो उसे उसके मानवाधिकार दे सकें। वही मानव अधिकार जो एक व्यक्ति की राष्ट्रीयता उसके निवास,लिंग, जातीय मूल, रंग, धर्म या अन्य स्थिति पर ध्यान दिये बिना सभी मनुष्यों के लिए निहित अधिकार है।

भारत में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए संसद और कार्यपालिका को देश में कानून का निर्माण और कार्यान्वयन सौंपा गया है जबकि न्यायपालिका इसके निष्पादन को सुरक्षित करती है। स्त्री और पुरुष को समाजरूपी गाड़ी के दो पहियों के समान माना जाता है। अत: समाज के विकास एवं निर्माण के लिए स्त्री पुरुष की सहभागिता अनिवार्य है। विकास के साथ-साथ नैसर्गिक सिद्धान्त का पालन एवं पर्यावरण संतुलन के लिए नितांत आवश्यक है। जिसके लिए लैंगिक समानता के साथ-साथ महिलाओं की जनसंख्या को पुरुषों के समान बनाये रखनें के लिए महिलायें के अस्तित्व से जुड़े अधिकारों को प्रोत्साहन और संरक्षण अवश्य देना होगा।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि महिलाओं की स्थिति सभी युगों एवं देशों में चिंताजनक रही हैं। यद्यपि मानवाधिकार पुरुष, महिला दोनों वर्गों की दृष्टि से एक ही है, किन्तु महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार का प्रश्न इसलिए अधिक विचारणीय हो जाता है कि पुरुष सत्तात्मक विश्व मे लिंग भेद की परम्परा सदियो से चली आ रही हैं। वस्तुत:मानव जगत में यदि कोई सबसे प्राचीन असमानता अथवा विभाजक रेखा है तो लिंग भेद ही है। जाति, धर्म,सम्प्रदाय,रंग,आदि सभी विभाजक तथा भेद भावनात्मक प्रक्रियाओं का जन्म इसके बाद की हुआ है। लिंग भेद की अवधारणा ने मानव जीनव को दो ध्रुवों में बांटकर स्त्री व पुरुष को परस्पर पूरक होने का अवसर न देकर स्त्री को पुरुष का अनुयायी घोषित किया है जो कि समानता के अधिकार का उल्लंघन हैं।

मानव समाज में सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने लिए महिलाएँ को वे सभी अधिकार दिये जाने की आवश्यकता है जिनकी वह हकदार है तथा मानवीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए उसे दिये जाने चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राय, अरुणा, भारतीय का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, गठन कार्य और भावी परिदृश्य राधा पब्लिकेशन्स, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 2005, पृ. 21-25
2. लॉवसन, एडवर्ड, मानव अधिकार का विश्वकोष, यू.के.टेलर तथा फांसिस लिमिटेड, लंदन, 1991, पृ. 55-59
3. चतुर्वेदी, बदरीनाथ, धर्म तथा जैनवाद, मानवाधिवार का वैश्विक, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, तिथि 25 सितम्बर 1995, पृ. 18-20
4. जोहरी, जे.सी., ह्यूमन राइटस एण्ड न्यू वर्ल्ड आर्डर: टुवार्डस परफेक्शन ऑफ दि डेमोक्रेटिव वे ऑफ लाइफ, अनमोल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996 पृ. 12-15
5. नाटाणी, प्रकाश नारायण, भारत में सामाजिक समस्याएं, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000, पृ. 78-81
6. कुमार, विपिन, वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तीकरण, रीगल पब्लिकेशन्स, 2009, पृ. 16-18
7. कौशिक, आशा, महिला सशक्तीकरण : विमर्श एवं यथार्थ, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2011, पृ. 29-32
8. मिश्रा, सुजाता, वूमन हैल्थ एण्ड सोशल इश्यू' राइज पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ. 12-14

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 115-119

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के चिन्तन में सामाजिक न्याय की अवधारणा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

शिप्रा सिंह
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक (राजस्थान)

शोध सारांश
न्याय के अर्थ को दो रूपों में परिभाषित किया जा सकता है - व्यापक और संकीर्ण। संकीर्ण अर्थ में न्याय को कानून के साथ जोड़कर देखा जाता है, जबकि व्यापक अर्थ में मानव तथा समाज के समस्त आचरणों के सन्दर्भ में। इस रूप में न्याय को सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित माना जाता है। सामाजिक न्याय, न्याय सम्बन्धी अवधारणा का एक आयाम है जिसका अभिप्राय यह है कि - नागरिक-नागरिक के बीच सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, तथा सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए किये गये संघर्ष के इतिहास में डॉ. अम्बेड़कर का योगदान उल्लेखनीय है। प्रस्तावित शोधपत्र में डॉ. अम्बेडकर की सामाजिक न्याय अवधारणा का सैद्धान्तिक व विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन में मुख्यत: सामाजिक न्याय की स्थापना व उसके क्रियान्वयन के समक्ष आने वाली चुनौतियों तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अम्बेडकर के सामाजिक न्याय अवधारणा की प्रासंगिकता का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। इस मूल्यपरक अध्ययन हेतु द्वितीयक स्रोतों के रूप में विषय से सम्बन्धित पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं तथा इण्टरनेट पर प्रकाशित होने वाले लेखों एवं जर्नल आदि का प्रयोग किया गया है।

संकेताक्षर : *न्याय, सामाजिक न्याय, वंचित वर्ग*

न्याय मानव समाज की उन्नति की आधारशिला है, इसके अभाव में एक सुखी, शान्त और विकसित समाज की कल्पना करना अत्यन्त कठिन है। तथापि यह निश्चित करना कि मानव-जाति के लिए न्याय का उपयुक्त आशय क्या है, सदैव से एक जटिल विषय रहा है। न्याय के अर्थ के संदर्भ विभिन्न परिस्थितियों में भिन्नता आ जाती है जिससे विद्वान इसकी परिभाषा करते समय व्यक्तिपरक दृष्टिकोण रखने लगते हैं। वस्तुत: न्याय के अर्थ को दो रूपों में परिभाषित किया जा सकता है व्यापक और संकीर्ण। संकीर्ण अर्थ में न्याय को कानून के साथ जोड़कर देखा जाता है, जबकि व्यापक अर्थ में न्याय को मानव तथा समाज के समस्त आचरणों के सन्दर्भ में देखा जाता है इस रूप में न्याय को सामाजिक व्यवस्था से संबंधित माना जाता है। इस दृष्टि से न्याय सम्पूर्ण समाज एवं इसके समस्त भागों से सम्बन्धित अवधारणा है, जिसके विभिन्न आयाम हैं। सामाजिक न्याय, इस अवधारणा का एक महत्वपूर्ण आयाम है, जिसका अभिप्राय यह है कि नागरिक-नागरिक के बीच सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। हर किसी के पास इतने न्यूनतम संसाधन होने चाहिए कि वह अपने उत्तम जीवन की संकल्पना को साकार कर सके। दूसरे शब्दों में जब कोई समाज अपने सभी वर्गों उपवर्गों के साथ सही व पक्षपात रहित बर्ताव करता है तो इस स्थिति को सामाजिक न्याय कहते हैं। तात्पर्य यह है कि यदि किसी समाज के नियम व कानून सत्य, यथार्थपरक एवं निष्पक्ष हो अर्थात् वे अपने सभी वर्गों, उपवर्गों व समूहों के हितों की समान रूप से रक्षा करते हों तथा उसमें कानून व विधान के आधार पर निर्णय देने वाली व निर्णयों को अमल में लाने वाली मशीनरियाँ वर्गीय स्वार्थों से परे निष्पक्ष रूप से अपना दायित्व निभाती हो तो कहा जा सकता है कि उस समाज में सामाजिक न्याय विद्यमान है।

पश्चिमी और पूर्वी, दोनों ही राजनीतिक दर्शनों में सामाजिक न्याय की धारणा को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, यह न केवल राजनीतिक वरन् नैतिक चिन्तन का भी एक अनिवार्य अंग और प्रमुख आधार है। पाश्चात्य चिन्तन में सामाजिक न्याय की प्रथम झलक प्लेटो के चिन्तन में दृष्टिगत होती है। तत्पश्चात् यह अवधारणा अनेक विचारकों के चिन्तन का मूल आधार रही। भारतीय दृष्टि से यह अवधारणा अपेक्षाकृत आधुनिक है क्योंकि

प्राचीन समय में निर्धारित न्याय व्यवस्था सामाजिक न्याय के विपरीत सामाजिक शोषण एवं असमानता की स्थिति पर आधारित थी। यहाँ ऊँच-नीच को न केवल शास्त्र-सम्मत ठहराया गया वरन् उसे धार्मिक मान्यता एवं संरक्षण भी मिला। भारत में विद्यमान जातीय असमानता एवं शोषण की इस व्यवस्था के विरूद्ध एवं इसको समाप्त करने हेतु कुछ जागरूक बुद्धिजीवियों एवं समाज सुधारकों द्वारा आंदोलन का सहारा लिया गया। इस व्यवस्था की समाप्ति एवं सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए ज्योतिराव फुले, सावित्री बाई फुले, ई.वी. रामास्वामी नायकर, राजा राममोहन राय, महात्मा गाँधी और डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। वस्तुत: सामाजिक न्याय के लिए चलने वाले इन संघर्षों के कारण इन समाजों में बुनियादी बदलाव हुए हैं कुल मिलाकर समय के साथ सामाजिक न्याय के सैद्धान्तीकरण में कई नये आयाम जुडे हैं, और इस संकल्पना या नारे के रूप में इसने लम्बे समय तक नेपथ्य में रहने वाले समूहों को भी अपने लिए जाग्रत किया है। सामाजिक न्याय समाज में विभिन्न समूहों खासतौर पर वे जो पिछड़े व कमजोर है और जो इसके लिए स्वयं उत्तरदायी नहीं है के हितों पर विशेष ध्यान देता है। यह जहाँ सामाजिक नैतिकता व मानवीयता पर आधारित होता है, वहीं तर्क संगत, युक्तिसंगत तथा यथार्थवरक भी होता है।

सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए किये गये संघर्ष का इतिहास डॉ. भीमराव अम्बेडकर के योगदान का उल्लेख लिये बिना कभी पूरा नहीं हो सकता है। जिनका नाम सुनते ही हमारे मानस में संविधान निर्माता और दलित नेता के रूप में उनकी छवि उभर आती है, परन्तु इससे इतर यदि हम उनके सम्पूर्ण वाङ्मय का विस्तृत अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होता है कि भीमराव अम्बेडकर केवल दलित नेता एवं संविधान निर्माता ही नहीं थे बल्कि ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिसको उनकी लेखनी ने स्पर्श न किया हो। उनके सम्पूर्ण, पठन-पाठन तथा अनुचिन्तन का लक्ष्य एक ऐसा समाज निर्मित करना था, जिसमें सामाजिक अन्याय, जाति-पाँति, भेदभाव, छुआछूत तथा ऊँच-नीच के लिए कोई स्थान न हो। अम्बेडकर के विचार उनके समकालीन चिन्तकों से मेल नहीं खाते थे, उनकी दृष्टि में आजादी का अर्थ दूसरा था। एक प्रश्न सदैव उनके मनोमस्तिष्क को परेशान कर रहा था कि किसकी आजादी? जिस देश की 85 प्रतिशत जनता अभाव, अशिक्षा, भूख और स्वप्नहीनता की स्थिति में जीने के लिए अभिशिप्त हो, की स्थिति में सुधार के बिना मिली हुई आजादी सम्पूर्ण भारत को आजाद नहीं करा सकती। उनका मानना था कि सभी मनुष्य एक मिट्‌टी से बने हुए हैं और उन्हें भी अधिकार है कि वे अपने साथ अच्छे व्यवहार की मांग करें।[1] अम्बेडकर ने इन्हीं हजारों सालों से अन्धकारमय जीवन जीने के लिए अभिशिप्त करोड़ों शोषित-पीड़ित जनता के जीवन में रोशनी भरने तथा न्याय दिलाने के लिए सम्पूर्ण जीवन संघर्ष करते रहे।

14 अप्रैल 1891 को महू छावनी (मध्यप्रदेश) के एक दलित परिवार में जन्म लेने के कारण डॉ. अम्बेडकर को बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था तक हर तरह की प्रताड़ना और अपमान सहने के साथ ही शिक्षा प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों और समाज में व्याप्त अमानवीय अस्पृश्यता का कटु अनुभव करना पड़ा था। 'महार होने के कारण अध्यापकों और छात्रों के द्वारा अस्पृश्यता के व्यवहार ने अम्बेडकर के व्यक्तित्व को झकझोर कर रख दिया था।[2] विद्यालय और समाज में विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी डॉ. अम्बेडकर ने अपनी शिक्षा जारी रखते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त की। जनवरी 1913 में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। आगे की पढ़ाई के लिए गुरुवर कृष्णाजी कैल्युस्कर की सिफारिश पर महाराजा सयाजी राव गायकवाड़ के द्वारा उन्हें अमरीका में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्ति स्वीकार कर दी गई और अम्बेडकर ने 20 जुलाई 1913 को अमरीका के विश्व प्रसिद्ध कोलंबिया विश्वविद्यालय की राज्यशास्त्र शाखा में प्रवेश लिया। इन्होंने यहाँ से एम.ए. तथा पी.एच.डी. की डिग्रियाँ प्राप्त की। उनके शोध का विषय था - ''भारत का राष्ट्रीय लाभांश : एक ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन'। उसके पश्चात उन्होंने लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से डी.एस.सी. की डिग्री प्राप्त की। इसी के साथ अम्बेडकर ने इंग्लैण्ड से बैरिस्टर की डिग्री प्राप्त किया। अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् जब अम्बेडकर भारत आये तो इन्हें अनेक कठिनाइयों जैसे-भेदभाव, अस्पृश्यता आदि का सामना करना पड़ा जिसने इन्हें यह सोचने पर विवश किया कि समाज में व्याप्त अन्याय व भेदभाव का निवारण किये बिना एक सशक्त समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता है।

अम्बेडकर के चिन्तन में सामाजिक न्याय

हजारों सालों से अन्धकारमय जीवन को अभिशप्त लाखों-करोड़ों लोगों के जीवन को मार्गदर्शित करने वाले डॉ. अम्बेडकर के समस्त विचार दर्शन में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में सामाजिक न्याय की झलक सर्वत्र देखने को मिलती है। डॉ. अम्बेडकर ने अपना सम्पूर्ण जीवन सामाजिक न्याय की स्थापना में लगा दिया। उनके जीवन का यही लक्ष्य था कि समाज के सभी व्यक्ति सभी स्तर पर समान हो। इसलिए भारतीय समाज व्यवस्था जो कि अन्याय पर आधारित थी, में सुधार करना चाहते थे।[3] जिसकी झलक उनकी विभिन्न

रचनाओं विशेष रूप से 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' (1937), 'हू वर द शूद्राज' (1946), 'द अनटचेबल्स' (1948), 'कास्ट्स इन इंडिया' तथा 'द रिडल्स ऑफ हिन्दुइज्म' में देखी जा सकती है। इन पुस्तकों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि अम्बेडकर ने ऐतिहासिक तथ्यों के वैज्ञानिक विश्लेषण के माध्यम से परम्परागत समाज में अन्याय के विद्यमान स्वरूपों की परत-दर-परत खोलने की कोशिश की ताकि उसकी जड़ों में विद्यामान उचित कारणों को ढूंढकर उनका निदान प्रस्तुत किया जा सके।[4] अपने अध्ययन-अध्यापन चिन्तन-मनन तथा अनुभवों के आधार पर अम्बेडकर ने भारतीय सामाजिक संरचना को बहुत गहराई से देखा-समझा तथा उन्होंने सदियों से जाति, धर्म, नस्ल, वर्ग और लिंग के नाम पर दबाए-सताए गए वंचित तबके की मुक्ति और हर तरह के शोषण एवं उत्पीड़न को समाप्त करके एक समतामूलक समाज की स्थापना को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। 'महाड़ सत्याग्रह', 'मनुस्मृति दहन' और 'कालाराम मन्दिर' प्रवेश जैसे आन्दोलनों के माध्यम से उन्होंने दलितों के मन में हजारों साल से चली आ रही गुलामी से मुक्ति पाने का संकल्प पैदा किया। उन्होंने 31 जनवरी 1920 को पाक्षिक पत्रिका 'मूकनायक' का आरम्भ किया, जो देश की लाखों-करोड़ों दलितों व वंचितों की आवाज बनी। सन् 1924 में सामाजिक आन्दोलन हेतु 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' का गठन किया जिसके संघर्षों को लोगों तक पहुँचाने के लिए अप्रैल 1927 में 'बहिष्कृत भारत' नामक मराठी पाक्षिक का आरम्भ किया, इसके पश्चात् 'जनता' नामक पत्र निकाला जिसका नाम आगे चलकर 'प्रबुद्ध भारत' रखा गया। इन सभी प्रयासों में सामाजिक न्याय की समस्या डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन का प्रमुख विषय रही और इसके लिए उन्होंने आजीवन संघर्ष किया।

डॉ. अम्बेडकर की सामाजिक न्याय की धारणा लोगों में मात्र भौतिक लाभों का न्यायोचित वितरण ही नहीं है, अपितु वह मूलत: ऐसी जीवन पद्धति है जो पारस्परिक मान-सम्मान, मैत्रीभाव, समान नागरिक होने की उत्कण्ठा, राष्ट्रीय जीवन में सभी क्षेत्रों में न्यायोचित भागीदारी आदि पर आधारित हो तथा समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उचित स्थान मिले, लेकिन उनका मानना था कि इसका आधार जन्म पर आधारित सामाजिक प्रतिष्ठा न होकर,योग्यता व गुण से होना चाहिए।[5]

डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय की प्रक्रिया में वर्णाश्रम की भावना को सम्पूर्ण रूप से मिटाकर संवैधानिक शासन, कानून, धर्म और नैतिकता को सामाजिक न्याय का आधार स्वीकार किया।[6] सामाजिक न्याय को क्षमता एवं भ्रातृत्व के भाव से जोड़ा जो सभी राष्ट्र की सीमाओं को छूता हो और उसमें रहने वाले समस्त नागरिकों को बन्धुत्व में बांधने का प्रयास करता हो, चाहे वह अमीर हो या गरीब, सवर्ण हो या दलित, हिन्दू हो या मुस्लिम अथवा सिक्ख, ईसाई या बौद्ध। सामाजिक न्याय के लिए अम्बेडकर इतने दृढ़ संकल्प थे कि उसके लिए उन्होंने अल्पसंख्यकों के अधिकारों तथा राज्य के कर्त्तव्यों के विषय में एक 22 सूत्री स्मरण पत्र लिखा था। इसे ''मैग्नाकार्टा ऑफ द हैव नाट्स'' कहा जाता है। इस पत्र की प्रस्तावना में 'स्पष्ट लिखा था कि स्वतन्त्र भारत देशी रियासतों को साथ लेकर बने और उसका नाम 'यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ इण्डिया'' रखा जाये जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक विषमता को समाप्त किया जाए और सदियों से शोषित, उपेक्षित व उत्पीड़ित वर्ग अभाव और भय से मुक्ति पा सके। अम्बेडकर का सामाजिक न्याय' केवल दलित वर्गों के अनुसूचित जातियों और जनजातियों तक सीमित नहीं था, बल्कि उनकी दृष्टि में देश की सम्पूर्ण जनता जो जाति व्यवस्था के कारण सदियों से शिक्षा, सम्पत्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा में अधिकारों से वंचित थी, उन सभी को 'सामाजिक न्याय' का पूर्ण अधिकार है। अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय को आर्थिक और राजनीतिक न्याय से भी अधिक महत्व प्रदान किया और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के साथ-साथ अवसर व सामाजिक समता की वकालत की। जिसकी झलक भारतीय संविधान की प्रस्तावना में देखी जा सकती। अम्बेडकर द्वारा निर्मित संविधान के मूल तत्व क्षमता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व, न्याय, लौकिक-नैतिकता तथा देश की एकता और अखण्डता है जिन्हें हम सामाजिक न्याय के सिद्धान्त कह सकते हैं।[7] ये सभी बातें आदर्श समाज की स्थापना के लिए आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है जो देश की एकता व अखण्डता को बनाए रखेगी।

अम्बेडकर के प्रयासों से भारत में एक नयी संवैधानिक व्यवस्था का निर्माण हुआ और सदियों से जो वर्ग अन्याय से पीड़ित थे उन्हें वे समस्त अधिकार प्राप्त हुए जिनसे वे वंचित थे, इसके लिए संवैधानिक एवं वैधानिक स्तर पर सामाजिक न्याय की स्थापना को बल मिला। लेकिन इस व्यवस्था की वास्तविक स्थिति पर दृष्टिपात हमारे समक्ष एक भिन्न प्रकार का वातावरण प्रस्तुत करता है। वर्तमान में जब भारतीय समाज विकास की ऊँचाइयों को छूने का तैयार हो रहा है, शिक्षा को सर्वसुलभ कराने के लिए अनेक नीतियाँ व योजनाएँ बनायी जा रही है, सभी को समान स्थिति में लाने के लिए अनवरत प्रयास किये जा रहे हैं, फिर क्या कारण है? कि आज भी सदियों से दलित, पिछडे. वर्गों एवं महिलाओं को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का एक महत्वपूर्ण कार्य आज भी अधूरा है, जातिवाद समाप्त होने की बजाय बढ़ा है साथ ही राजनीति का भी जातीयकरण हो गया है। समाज में वर्ग संघर्ष के

साथ-साथ जातीय संघर्ष विकृत रूप धारण करने लगा है। ऐसी स्थिति में डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय से सम्बन्धित विचार और अधिक महत्व रखते हैं। वस्तुत: आज उनके सामाजिक न्याय सिद्धान्त का अध्ययन व चिन्तन-मनन करने की सर्वाधिक आवश्यकता है। डॉ. अम्बेडकर सामाजिक न्याय की स्थापना करने की अपेक्षा में यह दृष्टिकोण रखते थे कि कमजोर एवं पिछड़ा वर्ग अधिकारों की मांग करने वाले की बजाय अधिकारों को प्रदान करने वाला बने, अर्थात् नीति-निर्धारण एवं प्रशासन में निम्न वर्गों की पर्याप्त भागीदारी सुनिश्चित हो। इस सामाजिक न्याय के विचार की प्राप्ति में अम्बेडकर आरक्षण व्यवस्था को एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में देखते थे,[8] जिसे आज के समय में अम्बेडकर का पर्याय माना जाने लगा है। वास्तव में आरक्षण व्यवस्था का उद्‌देश्य वंचित वर्ग को उनकी तत्कालीन स्थिति से निकालकर समाज की मुख्यधारा में लाना था, यद्यपि इस व्यवस्था द्वारा सदियों से उत्पीड़ित वर्ग का आर्थिक पिछड़ापन दूर किया जाना भी एक आयाम था किन्तु इसका मुख्य लक्ष्य सामाजिक न्याय की प्राप्ति को संभव बनाना था। जिससे समाज में इस वर्ग की स्थिति को बेहतर किया जा सके और सामाजिक एवं राजनीतिक स्तर पर उनके प्रतिनिधित्व का स्तर उनकी जनसंख्या के अनुपात में प्राप्त किया जा सके। वस्तुत: वर्तमान समय में इस व्यवस्था पर कई प्रश्न चिन्ह लगाये जाने के प्रयास किये जा रहे हैं? कि क्या यह सामाजिक समानता स्थापित करने में सहायता कर रहा है, या सामाजिक असमानता व जातीय संघर्ष के बढ़ने का कारण बन रहा है? वस्तुत: यह स्थिति अम्बेडकर के विचार को सही रूप में क्रियान्वित न किये जाने के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न हुई है। इस स्थिति में अम्बेडकर के सामाजिक न्याय सिद्धान्त के आधार पर यह विकल्प निकाला जा सकता है कि अनुसूचित जाति या जनजाति के जो व्यक्ति आर्थिक समानता को प्राप्त कर चुके हैं उन्हें अपने वर्गों के पिछडे.हुए लोगों लिए विशेष प्रयास किये जाने की आवश्यकता है, वे स्वयं ही अपने आरक्षण को अपने भाइयों के हित में छोड़ दें और जिन्हें अभी तक आरक्षण का लाभ नहीं मिला है उन्हें इसे प्राप्त करने में सहायता करें ताकि सामाजिक व्यवस्था में उनका प्रतिनिधित्व दूसरे वर्गों के समान हो सके।

डॉ. अम्बेडकर शिक्षा की महत्ता से भली-भांति परिचित थे, उनका मत था कि शिक्षा ही लोगों के नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास में सहायक होगी।[9] इसलिए वे प्रारम्भिक शिक्षा को सर्व-सुलभ करने की वकालत करते थे। इस सन्दर्भ में वे अपने स्वयं के उदाहरण से प्रभावित थे। इसलिए वो नहीं चाहते थे कि जिस प्रकार उन्होंने शिक्षा की प्राप्ति के लिए संघर्ष किया, कोई भी कमजोर वर्ग करे। जिसके लिए हमारे संविधान में भी 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था का प्रावधान अनुच्छेद 21(क) के अन्तर्गत किया गया है तथा इसके लिए अनेक कार्यक्रम व योजनाएँ भी सरकार की तरफ से बनायी व चलायी जा रही है। जैसे-सर्व-शिक्षा अभियान, मिड-डे-मिल आदि जिससे शिक्षा की स्थिति में सुधार तो हुआ है लेकिन शिक्षा को जो स्तर प्राप्त होना चाहिए वह नहीं हो पाया है। इससे स्पष्ट है कि शिक्षा व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता है क्योंकि शिक्षा सामाजिक न्याय की स्थापना का एक महत्वपूर्ण माध्यम हो सकती है। प्राथमिक स्तर से ही विद्यालयों के पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को शामिल करना चाहिए जो विद्यार्थियों में सामाजिक समरसता, सद्‌भावना व बन्धुत्व को बढ़ाने तथा सामाजिक कुरीतियों जैसे- जाति-पाँति, छुआछूत, भेदभाव आदि से ऊपर उठकर सभी व्यक्तियों को मानव रूप में स्वीकार करने का कौशल विकसित हो।

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय सिद्धान्त में धर्म आधारित शोषण का विशिष्ट स्थान था, वे विभिन्न धर्मों के अध्ययन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि विभिन्न वर्गों की असमानता में धर्म का एक विशिष्ट योगदान रहा है, इसलिए अम्बेडकर धर्म को नीति-निर्माण से हमेशा अलग रखना चाहते थे। डॉ. अम्बेडकर के सम्पूर्ण जीवन दर्शन एवं विचारों पर दृष्टिपात करने पर भारतीय समाज के सन्दर्भ में एक विशिष्ट सामाजिक न्याय का आग्रह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक न्याय की अवधारणा अनेक सन्दर्भ में विशिष्ट थी। पाश्चात्य विचारकों की तुलना में डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय को स्थापित करने में भारतीय विभिन्नता, क्षेत्रीयता, विभिन्न धर्मों, भाषाओं, रीति-रिवाजों तथा संस्कृतियों आदि का पूर्ण ध्यान रखा। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय सन्दर्भ में सामाजिक न्याय की स्थापना के उपकरण के रूप में भारतीय संविधान में अपने न्याय के सिद्धान्तों का समावेश किया है। डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में सामाजिक न्याय का सीधा सम्बन्ध भारत की एकता व अखण्डता से है अर्थात् भारत की भूमि में निवास करने वाले सभी नागरिक भाई-भाई हैं चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान, सिक्ख हो या ईसाई, बौद्ध हो या जैन, यहूदी हो या फारसी अथवा सवर्ण हो या पिछड़े। सामाजिक न्याय का मानदण्ड मात्र भौतिक प्रगति नहीं है, मात्र शारीरिक भूख प्यास मिटाना या कुछ सुख-सुविधाएँ या सरकारी नौकरियाँ ही उपलब्ध कराना नहीं है अपितु इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि भारत के नागरिकों अथवा सभी वर्गों व धर्मों के लोगों के बीच उन मानव मूल्यों तथा आधारों की बहुलता हो जिनसे सामाजिक व्यवस्था

न्यायोचित बन सके और राष्ट्रीय जीवन क्षमता व समरसता की दिशा में अभिवृद्धि हो।

अत: सार रूप में कहा जा सकता है कि डॉ. अम्बेडकर का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष तथा सामाजिक न्याय की खोज की एक जीवन्त गाथा है। समसामयिक परिप्रेक्ष्य में जबकि अनेक घटनाएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। हर वर्ग अपने-आप को पिछड़ा साबित करने की जद्दोजहद में लगा हुआ है। ऐसे में सामाजिक न्याय की स्थापना का विकल्प खोजने तथा उस पर मनन करना अति आवश्यक है। जिसमें डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय सिद्धान्त सदैव मार्गदर्शन व पथ प्रदर्शन प्राप्त करने में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उन्होंने अपनी बुद्धि-क्षमता के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया था कि हर व्यक्ति जन्म से समान होता है। जाति या जन्म से कोई छोटा या बड़ा नहीं होता। जाति समाज की बनाई हुई एक कुत्सित व्यवस्था है। धर्म, जातिभेद, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, छुआछूत यह मानवी रचना के नहीं बल्कि मनुष्य के बनाए हुए बन्धन है। उनके सम्पूर्ण चिन्तन का सार तार्किक दृष्टि से भारतीय समाज में समानता, स्वतन्त्रता और भातृत्व-भावना का विकास करना, मानवमात्र की भलाई, उसकी सुख-शान्ति एवं समृद्धि ही है।

संदर्भ सूची

1. अम्बेडकर, बाबा साहब, 'संपूर्ण वांग्मय'; अछूत कौन और कैसे, डॉ अम्बेडकर प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1990, पृ. 148
2. धर्मकीर्ति, डॉ. अम्बेडकर द्वारा शिक्षा के प्रसार हेतु किये गये सतत् प्रयास, सामाजिक न्याय दर्शन, नई दिल्ली, दिसम्बर 2014, अंक 12, पृ. 7
3. सिंह, राम गोपाल, डॉ. अम्बेडकर : सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर एवं दिल्ली, 2014, पृ. 1-2
4. सिंह, राम गोपाल, उपर्युक्त, 2014, पृ. 77
5. मिश्रा, ओंकार नाथ एवं ममता मणि त्रिपाठी, सर्वजन के प्रेरणास्रोत डॉ. भीमराव अम्बेडकर, राधा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2011, पृ. 150-151
6. मिश्रा, ओंकार नाथ एवं त्रिपाठी, ममता मणि, उपर्युक्त, 2011
7. ताकसांडे, नीलिमा के., बाबासाहेब अम्बेडकर और सामाजिक न्याय, सामाजिक न्याय दर्शन, नई दिल्ली, अप्रैल 2014, अंक 04, पृ. 20-21
8. सिंह, राम गोपाल, उपर्युक्त, 2014, पृ. 82-85
9. अम्बेडकर, बी. आर., द अनटचेबल्स : हू आर दे एण्ड व्हाइ दे बीकम अनटचेबल्स?, अमृत बुक कंपनी, नई दिल्ली, 1990, पृ. 3

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 120-123

लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल का भारत के निर्माण में योगदान

डॉ. हनुमान प्रसाद मीना
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय, सवाईमाधोपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

सरदार पटेल का व्यक्तित्व क्रान्तिधर्मी, लौहपुरूष, बुद्धिकौशल, परमोच्चता, आध्यात्मिक शक्ति, अन्तर्द्वन्द्व, दूरदर्शितागुणों से युक्त था। स्वाधीनता के सभी आन्दोलनों में वे अग्रिम पंक्ति के सेनानी रहे। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात भी वे अपने उत्तम नेतृत्व, दृढ़ इच्छा शक्ति और विरल उत्साह से भारत के भाग्य निर्णायक बनें क्योंकि पटेल ने एक ऐसे काम का बीड़ा उठाया जो विश्व के कठिनतम कार्यों में से एक था। एक ऐसा देश जो कदम-कदम पर विभिन्न जाति, भाषा, वर्ग, परम्परा और धर्म में बंटा हुआ छोटी-छोटी रियासतों और जागीरों में विखण्डित था, को एक देश के रूप में अस्तित्व में लाना पटेल जैसे लौह पुरूष का ही कार्य हो सकता था। विश्व में सबसे बड़ी जनसंख्या के रूप में भारत का प्रभाव सरदार पटेल के योगदान के कारण है। सरदार पटेल ने राष्ट्रीय एकता का एक ऐसा रूप दिखाया था जिसके विषय में उस समय कोई सोच भी नहीं सकता था। उनके इन्हीं कार्यों के कारण उनके जन्म दिवस को राष्ट्रीय एकता दिवस के रूप में मनाया जाता है।

संकेताक्षर : *क्रान्तिधर्मी, लौहपुरूष, बुद्धिकौशल, परमोच्चता, आध्यात्मिक शक्ति, अन्तर्द्वन्द्व, दूरदर्शिता*

सरदार वल्लभभाई पटेल वास्तव में एक लौह पुरुष एवं भारत को एकता के सूत्र में बांधने वाले महान देशभक्त एवं क्रान्तिधर्मी थे। सरदार पटेल स्पष्टवादी, संयमी, वीर, दृढ़निश्चयी एवं व्यावहारिक सोच रखने वाले व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व की इन्हीं विशेषताओं के कारण वे देश को संगठित करने में सफल सिद्ध हुए। सरदार में बिस्मार्क जैसी संगठन शक्ति एवं चाणक्य जैसी राजनीतिक पटुता थी। भारत के इस महान राजनीतिज्ञ का जीवन एक महान संगठनकर्ता, प्रशासक और नेतृत्व के गुणों से युक्त था। स्वाधीनता के सभी आन्दोलनों में वे अग्रिम पंक्ति के सेनानी रहे। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात भी वे अपने उत्तम नेतृत्व, दृढ़ इच्छा शक्ति और विरल उत्साह से भारत के भाग्य निर्णायक बनें। उनकी अप्रतिम सूझबूझ और निर्भीक चरित्र ने उन्हें 'लौहपुरूष' की संज्ञा दी। उन्होंने सत्य को डंके की चोट पर कहने में कभी संकोच नहीं किया। दीर्घ संघर्ष के बाद प्राप्ति हुई स्वाधीनता के पश्चात् नवभारत के निर्माण में उनकी एक महत्वपूर्ण भूमिका रही।

जीवन परिचय : 31 अक्टूबर, 1975 को गुजरात के खेड़ा जिले के नाडियाड ग्राम में सरदार वल्लभ भाई पटेल का जन्म हुआ। वो झबेरभाई गालाभाई पटेल की चौथी संतान थे। उनके पिता पेशे से कृषक और माता लाड बाई एक साधारण किन्तु समझदार गृहिणी थी। उनके माता-पिता में साहस, संयम और देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। यही कारण रहा कि सरदार पटेल को भी यही गुण अपने माता-पिता से विरासत में मिलो। 1910 में उन्होंने वकालत की परीक्षा प्रथम श्रेणी से प्राप्त की और ब्रिटेन से भारत लौटकर वकालत के साथ-साथ देश की राजनीति में भी भाग लेने लगे।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनका योगदान : खेड़ा सत्याग्रह- स्वतंत्रता आन्दोलन में सरदार पटेल का प्रथम प्रयास खेड़ा संघर्ष रहा। खेड़ा जिले में अतिवृष्टि के कारण फसल पूरी तरह नष्ट हो गयी थी। सरकार ने झूठे आँकड़े दिखाकर सख्ती से लगान वसूलना चाहा तब सरदार पटेल व गाँधी जी ने कृषकों का नेतृत्व किया। उन्हें कर न देने के के लिये प्रेरित किया। अन्तत: सरकार को ही झुकना पड़ा और उस वर्ष करों में राहत दी गई। यह सरदार की पहली सफलता थी। खेड़ा सत्याग्रह के विजय उत्सव में एक आम सभा में महात्मा गांधी ने सरदार के विषय में कहा था- यदि मुझे वल्लभभाई न मिले होते, तो जो सफलता हमें प्राप्त हुई है वह न मिलती। ''

बारडोली सत्याग्रह : जब व्यक्ति अपनी योग्यताओं और क्षमताओं को अपने लिए ही सीमित न करके उसे समाज के स्तर पर नियोजित करता है तो वह सम्मान का अधिकारी बनता है। आज

हमें जिन महान राष्ट्र नेताओं की कमी शिद्दत से महसूस होती है उनमें सरदार पटेल का नाम सर्वोपरि है। 1927 में सरदार ने बारडोली के किसानों पर 30 प्रतिशत लगान बढ़ा दिया। सर्वप्रथम तो किसानों की माली हालत अच्छी नहीं थी। वे पुराना कर ही चुका पाने में असमर्थ थे, तो वे बढ़ा हुआ कर कैसे चुकाते। सभी प्रयास करने के पश्चात् अंत में किसानों ने अपनी समस्या वल्लभभाई के समक्ष प्रस्तुत की। वल्लभभाई ने आन्दोलन आरम्भ करने से पूर्व गांधीजी को पूरी स्थिति समझा दी और सत्याग्रह हेतु आशीर्वाद की प्रार्थना की। गांधीजी पटेल की क्षमताओं एवं दूरदर्शिता से अब तक अच्छी तरह परिचित हो चुके थे। उन्होंने पटेल को विजयी होने का आशीर्वाद दिया। इस सम्पूर्ण आन्दोलन के दौरान सरदार ने निरन्तर बिना हताश हुए किसानों में अपने भाषण से जान फूंकी। अन्तत: अंग्रेज सरकार को कृषकों के सामने झुकना पड़ा। इस आन्दोलन की सफलता का पूरा श्रेय महात्मा गांधी ने पटेल को देते हुए उन्हें बारडोली का सरदार पटेल कह कर सम्बोधित किया। तभी से वल्लभभाई पटेल का नाम सरदार वल्लभभाई पटेल पड़ गया।

देशी रियासतों का एकीकरण : स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विभाजन की त्रासदी झेलते भारत के सामने कई चुनौतियां थी जिसमें सबसे बड़ी समस्या 562 छोटी बड़ी रियासतों के शासकों की महत्वकांक्षाएँ देश की एकता अखण्डता के लिये खतरा बन गयी थी। ऐसे में सरदार ने अपने कूटनीतिक कौशल का परिचय देते हुए देश के लिए वीरता पूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। उन्होंने अपने बुद्धिकौशल से समस्त राजा रजवाड़ों को भारत की झोली में डाल गिराया।

5 जुलाई 1947 को सरदार पटेल के नेतृत्व में रियासती विभाग अस्तित्व में आया। कांग्रेस को आशा थी कि पार्टी का यह लौह पुरूष अपनी धोती समेटकर राजाओं के पीछे पड़ जायेगा। सरदार पटेल का जोरदार व्यक्तित्व और लचीले दिमाग का संयोग इस अवसर पर और भी अधिक खतरनाक सिद्ध हुए।

5 जुलाई 1947 को ही पटेल ने राजाओं से अपील की कि वे 15 अगस्त, 1947 से पूर्व भारत संघ में सम्मिलित हो जायें। देशी राज्यों को सार्वजनिक हित के तीन विषय प्रतिरक्षा, विदेश तथा संचार संघ को सुपुर्द करने होंगे। पटेल ने इस अवसर पर राजाओं को चेतावनी भी दी कि यदि कोई राजा यह सोचता हो कि ब्रिटिश परमोच्चता उसको हस्तान्तरित कर दी जायेगी तो यह उसकी भूल होगी। अगर सरदार पटेल निरंतर प्रयास न करते तो आज भारत की जगह बहुत सारे देश होते, जो एक-दूसरे से लड़ते रहते। जम्मू-कश्मीर, हैदराबाद और जूनागढ़ ने प्रतिरोध किया पर पटेल के मजबूत इरादों ने स्पष्ट कर दिया कि भारत एक एकीकृत इकाई बनकर रहेगा। उन्होंने देशी रियासतों के शासकों का सख्ती के साथ सामना किया तथा खुली चेतावनी देते हुए एक सभा में कहा कि ''छोटे राज्य अब बने नहीं रह सकते। उनके सामने एक ही विकल्प है कि वे बड़ी तथा समुचित आकार की इकाईयों में सम्मिलित हो जायें। अब शक्ति, प्रतिष्ठा या वर्ग का चिंतन उचित नहीं होगा। पटेल ने ऐसे कार्य किए जिसे विश्व इतिहास में पहले कभी भी करने की कोशिश नहीं की गई। उन्होंने हैदराबाद और जूनागढ़ के प्रकरणों के अलावा राजा-रजवाड़ों की स्वयं की सहमति और सहयोग से 500 से अधिक राज्यों और रियासतों को एक संयुक्त भारत के लिए नया रूप दिया। उनकी इसी सफलता से उत्साहित होकर सोवियत नेता निकेता ख्रुश्चेव ने 1956 में अपनी भारत यात्रा के समय कहा था कि ''आप भारतीय अद्भुत लोग हैं। किस कौशल से आपने बिना राजाओं को हटाये राजशाही को ही विलीन कर दिया।'' यही कारण रहा कि उन्हें भारत का लौह पुरूष कहा जाता है। क्योंकि सरदार पटेल ही वह महान पुरूष हैं जिन्होंने वर्तमान आधुनिक भारत की नींव रखी।

सरदार पटेल और राष्ट्रीय एकता : वर्तमान में सरदार पटेल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का लाभ उठाने के लिये राजनीतिक दल उनके नाम का प्रयोग अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये कर रहे हैं। उनके विचारों को तोड़ मरोड़ कर पेश कर रहे हैं। किन्तु उनके नाम का प्रयोग अपने क्षुद्र लाभ के लिये करने वालों को यह समझ लेना चाहिए कि सरदार पटेल किसी एक समुदाय या राजनीतिक दल की सम्पत्ति नहीं है। उन्हें इस रूप में देखना उनके सम्पूर्ण योगदान को खारिज करने जैसा होगा। सरदार पटेल की तुलना जर्मनी का एकीकरण करने वाले बिस्मार्क से की जाती है। लेकिन उनकी सफलताएं बिस्मार्क से भी बड़ी हैं क्योंकि पटेल ने एक ऐसे काम का बीड़ा उठाया जो विश्व के कठिनतम कार्यों में से एक था। एक ऐसा देश जो कदम-कदम पर विभिन्न जाति, भाषा, वर्ग, परम्परा और धर्म में बंटा हुआ छोटी-छोटी रियासतों और जागीरों में विखण्डित था, को एक देश के रूप में अस्तित्व में लाना पटेल जैसे लौह पुरूष का ही कार्य हो सकता था। विश्व में सबसे बड़ी जनसंख्या के रूप में भारत का प्रभाव सरदार पटेल के योगदान के कारण है। उन्होंने असम्भव दिखने वाले कार्य को उस समय अंजाम दिया जब विंस्टन चर्चिल इस उपमहाद्वीप को हिन्दुस्तान-पाकिस्तान और छोटे-छोटे रजवाड़ों के समूह के रूप में बांटना चाहते थे। सरदार पटेल का कथन है कि ''एकता के बिना जनशक्ति शक्ति नहीं है जब तक उसे ठीक तरह से सामंजस्य में न लाया जाए

और एकजुट न किया जाए और तब वह आध्यात्मिक शक्ति बन जाती है'' सरदार पटेल ने राष्ट्रीय एकता का एक ऐसा रूप दिखाया था जिसके विषय में उस समय कोई सोच भी नहीं सकता था। उनके इन्हीं कार्यों के कारण उनके जन्म दिवस को राष्ट्रीय एकता दिवस के रूप में मनाया जाता है। इसकी शुरूआत भारत सरकार ने 2014 से की थी। प्रत्येक वर्ष 31 अक्टूबर को राष्ट्रीय एकता दिवस मनाया जाता है।

पटेल और नेहरू- विचारों का अन्तर्द्वन्द्व

सरदार पटेल और नेहरू गांधी विचारधारा से प्रेरित थे। इसलिये ही सम्भवतया साथ काम कर सके नहीं तो इन दोनों की सोच में गहरा का अंतर था। जहाँ पटेल जमीनी व्यक्ति थे, मिट्टी में रचे बसे साधारण व्यक्तित्व के तेजस्वी व्यक्ति थे। वहीं नेहरू जमीनी हकीकत से दूर स्वप्नलोक में विचरण करने वाले व्यक्ति थे। सपनों को पटेल में सच करके दिखाने की क्षमता थी। शैक्षणिक योग्यता हो या व्यावहारिक सोच हो इन सभी में पटेल, नेहरू से बहुत आगे थे। स्वतन्त्र भारत के दो बड़े नेताओं नेहरू और पटेल के रिश्तों की दास्तान भी अनोखी है। दोनों महान देशभक्त थे किन्तु एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी भी, दोनों के विचारों में गहरे मतभेद थे जो जब तब विवाद का रूप ले लेते थे। किन्तु दोनों ने इसे अपने सम्बन्धों पर हावी नहीं होने दिया। नेहरू के अनुसार यह भारत सरकार की जिम्मेदारी थी कि वह मुसलमानों को भारत में सुरक्षित महसूस कराए, जबकि पटेल चाहते थे कि यह जिम्मेदारी खुद अल्पसंख्यक वर्ग ही उठाए। प्रधानमंत्री नेहरू व उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल दोनों ने इंग्लैण्ड जाकर वकालत की डिग्री प्राप्त की थी, परन्तु सरदार इसमें नेहरू से बहुत आगे थे। नेहरू शास्त्रों के ज्ञाता थे तो पटेल शास्त्रों के पुजारी थे। पटेल स्वयं कहा करते थे कि''- मैंने कला या विज्ञान के विशाल गगन में ऊँची उड़ाने नहीं भरी। मेरा विकास कच्ची झोंपड़ियों में गरीब किसान के खेतों की भूमि और शहरों के गंदे मकानों में हुआ है। ''

नेहरू के जीवनीकार सर्वपल्ली गोपाल ने भावुक होकर पटेल के विषय में व्यक्त किया था कि पटेल के महान आत्मसंयम और शराफत ने दोनों के बीच होने वाली खुली लडाई को रोक दिया। पटेल को गाँधीजी से किया हुआ अपना वह वादा याद था जिसमें उन्होंने नेहरू के साथ काम करने की बात कही थी। इसके साथ ही कांग्रेस अध्यक्ष पद पर विवाद के वक्त उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था। नेहरू जब उनसे मिलने आए तो पटेल ने कहा कि जब मेरा स्वास्थ्य थोड़ा ठीक हो जायेगा तब मैं आपसे अकेले में बात करना चाहता हूँ। मुझे ऐसा लग रहा है कि आप मुझमें अपना विश्वास खोते जा रहे हैं। इसके उत्तर में नेहरू ने कहा कि मुझे लगता है कि मैं अपने आप में यकीन खोता जा रहा हूँ। इसके कुछ समय बाद 15 दिसम्बर 1950 को सरदार पटेल की मृत्यु हो गई और यह लौह पुरूष दुनिया से अलविदा हो गया और इतिहास के पन्नों पर हमेशा के लिए अमर हो गया। नेहरू ने एक एकीकृत और अखण्ड भारत के निर्माण में पटेल की प्रतिबद्धता को रेखांकित किया। साथ ही रजवाड़ों की जटिल समस्या सुलझाने में भी उनकी प्रतिभा की सराहना की।

निष्कर्ष

रियासतों के एकीकरण के अतिरिक्त सरदार ने कई और महत्वपूर्ण कार्य किये। उनमें से एक है। भारतीय नागरिक सेवाओं (आई. सी.एस.) का भारतीयकरण कर इन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) बनाया। पटेल चाहते थे कि जितनी जल्दी हो सके सिविल सेवा के ये ब्रिटिश अधिकारी भारत छोड़ कर चले जायें। अंग्रेजों की सेवा करने वाले भारतीयों को राजभक्ति से देशभक्ति की ओर उन्मुख किया। सरदार के ही अथक प्रयासों से 26 जनवरी, 1950 को देश में नया संविधान लागू किया गया। उन्होंने सोमनाथ मन्दिर के पुनर्निर्माण में भी अहम भूमिका निभायी। चीन की विस्तारवादी नीति का उन्हें पहले से ही आभास था। कदाचित इसलिए ही उन्होंने अपने एक वक्तव्य में कहा था कि बल तथा शक्ति सम्पन्न राष्ट्र किसी विषय पर शान्तिपूर्वक विचार नहीं कर सकते। '' यह सरदार पटेल की दूरदर्शिता का स्वयं सिद्ध प्रमाण हैं।

कश्मीर की समस्या पर सरदार पटेल ने बहुत दु:ख के साथ कहा था कि'' यदि जवाहरलाल नेहरू और गोपाल स्वामी आयंगर ने कश्मीर को अपना व्यक्तिगत विषय बनाकर मेरे गृह तथा रियासत विभाग से अलग न किया होता तो कश्मीर की समस्या उसी प्रकार हल होती, जैसे कि हैदराबाद की। ''सरदार पटेल जहां पाकिस्तान की चालाकी पूर्ण चालों से सतर्क थे वहीं देश के विघटनकारी तत्वों से भी सावधान रहते थे। विद्धानों का कथन है कि सरदार पटेल भारत के बिस्मार्क थे किन्तु लंदन टाइम्स ने उनके विषय में लिखा कि ''बिस्मार्क की सफलताएं पटेल के सम्मुख महत्वहीन है।'' पटेल सही अर्थों में मनु के शासन की परिकल्पना थे। वे केवल सरदार ही नहीं बल्कि भारतीय जनता के हृदय के सरदार थे। भारत का इतिहास सदैव इस कर्मठ, साहसी, निडर, लौह पुरूष का ऋणी रहेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. चोपड़ा, प्रभा, स. पी.एन. वल्लभभाई पटेल सरदार कश्मीर एव हैदराबाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 104

ISSN 2348-3857

2. चोपड़ा, प्रभा, स. पी.एन. वल्लभभाई पटेल मुसलमान और शरणार्थी प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 79
3. गुप्ता, राकेश, लौह पुरूष सरदार वल्लभभाई पटेल,डामेन्ड पोकेटस बुक्स, नई दिल्ली, 2017, पृ. 175
4. पटेल, सरदार वल्लभभाई, भारत की एकता का निर्माण, नई दिल्ली, 1954, पृ. 124
5. कालिन्स, लैरी, लैपियर, डामिनिक, आधी रात को आजादी, जयपुर-2002, पृ. 165
6. अक्कद, बी.जे., सरदार वल्लभभाई, सूरत, 1950, पृ. 201
7. गांधी, राजमोहन, पटेल-ए लाइफ, अहमदाबाद, 1992, पृ. 16
8. कृष्णा, बी., इण्डियाज बिस्मार्क सरदार वल्लभभाई पटेल, इन्डस सोर्स बुक्स मुम्बई, 2007, पृ. 158
9. शंकर, वी., माय रेमिनिर्सेसेज ऑफ सरदार पटेल (खण्ड I, II), नई दिल्ली, 1974, पृ. 345

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 124-128

अंधविश्वास और चमत्कारों का समाज

डॉ. अर्चना गोदारा

सहायक आचार्य , समाजशास्त्र
राजकीय नेहरू मैमोरियल, महाविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सारांश

बिना तर्क के विश्वास करना अंधविश्वास कहलाता है। अंधविश्वास व्यक्ति के सोचने समझने की शक्ति को क्षीण कर देता है। वर्तमान में जादू, तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत, डायन आदि के प्रति अंधविश्वास बढ़ता जा रहा है। बुजुर्ग एवं अनपढ़ लोगों का इन सब पर विश्वास होता है परन्तु वर्तमान में पढ़े लिखे व्यक्ति भी इस अंधश्रद्धा के बहाव में बह रहे हैं। बाबा, ओझा, तांत्रिक आदि के चक्करों में फंस कर व्यक्ति चमत्कारों की उम्मीद लगा बैठता है तथा अपना बहुत सा समय एवं पैसा बर्बाद कर देता है। अंधविश्वास एवं चमत्कारों से प्रभावित क्षेत्र केवल भारत ही नहीं है बल्कि विश्व के अन्य देशों में भी यह प्रचलित है। यह अंधविश्वास न केवल मानव के मानसिक विकास को अवरूद्ध कर रहा है बल्कि उसे कायर एवं डरपोक भी बनाता जा रहा है। जहां अंधविश्वास एवं जादू, टोनों से चमत्कार में विश्वास होता है वहां व्यक्ति का विकास चाहे वो सामाजिक, आर्थिक हो या वैयक्तिक, सभी अवरूद्ध हो जाते हैं। जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए घातक है। जादू, तंत्र-मंत्र से चमत्कारों का विश्वास दिला कर भोली-भाली जनता को ठगा जाता है। वर्तमान में अब यह व्यवसाय का रूप धारण कर चुका है। प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से अंधविश्वास, जादू-टोने एवं तंत्र-मंत्र में लोगों के विश्वास, क्रिया विधियां, कारण तथा उन पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने का प्रयास किया जायेगा।

संकेताक्षर : *अंधविश्वास, जादू-टोना, चमत्कार, बाबा, मौलवी, ओझा, मनौतियां, झाड़-फूंक, टोटका, तांत्रिक, डायन, तंत्र-मंत्र*

मानव जीवन में पीढ़ी दर पीढ़ी कुछ परम्पराएँ, रीति-रिवाज, प्रथाएं आस्थाएँ, अंधविश्वास आदि हस्तांतरित होते रहते हैं। जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत, डायन आदि के प्रति विश्वास भी पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। अंधविश्वास एक मान्यता है जो व्यक्ति के सोचने-समझने की शक्ति को क्षीण कर देती है जिसके प्रभाव स्वरूप मानव ढोंगी बाबाओं के चंगुल में फंस जाता है तथा चमत्कार की आस में बाहर नहीं निकल पाता। वर्तमान में शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही वर्गों में अंधविश्वास देखा जा सकता है। दुनिया में जितना विश्वास है उतना ही अंधविश्वास भी है और मनुष्य जन्म के साथ ही इसके सम्पर्क में आ जाता है। बालक के जन्म लेते ही उसकी नजर उतारना, उसे रक्षा सूत्र पहनाना, काला टीका लगाना आदि प्रक्रियाएं की जाती है। इन्हें देखते-देखते बालक स्वयं भी इस विचारधारा से जुड़ जाता है।

व्यक्ति जितना आस्तिक होगा, अंधविश्वास में उसमें उतना ही अधिक होगा। देव आस्था होने के कारण चमत्कारों की उम्मीद एवं मंत्र, कर्मकाण्ड आदि के कारण अंधविश्वास बढ़ता जाता है। भाषा, ज्ञान, वेशभूषा रहन-सहन खान-पान आदि में भिन्नता होने के बावजूद अंधविश्वास एवं जादू-टोना, तंत्र-मंत्र में विश्वास एवं आस्था एक समान स्तर है। भारतीय समाज में अंधविश्वास एवं चमत्कारों के प्रति व्यक्ति की बहुत आस्था है। भारतीय समाज में प्रत्येक कार्य के लिए मुहूर्त निकलवाना आवश्यक माना जाता है। जो कि अंधविश्वास का ही एक रूप है। अंधविश्वास:- आंखें बंद करके किसी पर विश्वास करना। अंधविश्वास के आगे तर्क समाप्त हो जाता है। केवल मात्र भरोसा एवं विश्वास होता है जो चमत्कार से जुड़ा होता है।

टूटते संयुक्त परिवार और बढ़ते शहरीकरण के प्रभाव स्वरूप व्यक्ति का सामाजिक दायरा सीमित होता जा रहा है तथा सामाजिक सम्पर्क प्रत्यक्ष रूप के स्थान अप्रत्यक्ष रूप में अधिक प्रचलित हो गया है जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति में मानसिक तनाव बढ़ता जा रहा है और वह तनाव के कारणों को जान कर समाप्त करने के स्थान पर इसके बचाव के उपाय जादू, तंत्र-मंत्र एवं टोन-

टोटकों से करवाने का प्रयास करता है। क्योंकि वह द्रुतगति से उपचार चाहता है जो इनके अनुसार केवल बाबा, ओझा के द्वारा ही सम्भव है। प्राचीन समाज में शिक्षा, ज्ञान, संचार, परिवहन के साधन आदि के अभाव था तब आसानी से उपलब्ध बाबा, ओझा, पुजारी, मौलवी आदि ही उपचारक माने जाते थे इन्हें ही ज्ञानी एवं शक्तिशाली माना जाता था। मानव के पास विज्ञान का ज्ञान, उचित-अनुचित को जांचने के साधन एवं तर्कसंगत ज्ञान का भी अभाव था। वर्तमान में मानव शिक्षा, तकनीक, विज्ञान, संचार के साधन, परिवहन के साधनों से परिपूर्ण है परन्तु फिर भी अंधविश्वास समाज में अपना स्थान बनाये हुए है।

प्रचलित अंधविश्वास

- घर में नमक किसी खुले डिब्बे में नहीं रखना चाहिए।
- यदि बिल्ली आगे से रास्ता काट जाये तो आगे नहीं बढ़ना चाहिए।
- टिटहरी यदि रात में बोले तो यह अशुभ है।
- दिन ढलने के बाद घर में झाड़ू नहीं लगानी चाहिए।
- किसी शुभ कार्य हेतु जाते समय पीछे मुड़कर नहीं देखना चाहिए।
- किसी शुभ कार्य हेतु जा रहे व्यक्ति को पीछे से आवाज नहीं लगानी चाहिए।
- यदि किसी कार्य को प्रारम्भ करते समय कोई छींक दे तो वह कार्य पूर्ण नहीं होता।
- पैर के तलवे में खुजली हो तो व्यक्ति को घर से बाहर जाना पड़ सकता है अर्थात् यात्रा करनी पड़ती है।
- घर से बाहर जाते समय गुड़ या दही खाकर जाना चाहिए।
- यदि कहीं कुत्ता अथवा बिल्ली रोने लग जाए तो वहां किसी व्यक्ति का बुरा होता है या किसी की मृत्यु होती है।
- चौराहे के बीच से नहीं जाना चाहिए।
- मेंहदी लगाकर बाहर नहीं घूमना चाहिए।
- यदि किसी महिला की दायीं आंख और पुरूष की बांयी आंख फड़कती है तो कुछ बुरा होना संभावित है।

पुनर्जन्म : भारतीय समाज में पुनर्जन्म के प्रति भी गहरी आस्था है। यह माना जाता है कि पूर्व जन्म के कर्मों का फल वर्तमान जीवन में और वर्तमान जीवन के कर्मों का फल अगले जन्म में मिलता है। अत: व्यक्ति को कर्मों का फल भुगतने हेतु बार-बार जन्म मिलता है तथा यह भी विश्वास किया जाता है कि किसी योनि में जन्म लेने वाले को उस योनि में सात जन्म लेने होते हैं। यह भी अंधविश्वास का ही एक रूप है।

मनौतियां : प्रत्येक व्यक्ति की कुछ इच्छाएं एवं महत्वकांक्षायें होती है, जिन्हें कुछ व्यक्ति तो मेहनत से प्राप्त करने का प्रयास करते हैं तथा कुछ व्यक्ति चमत्कार से प्राप्त करना चाहते हैं। अत: उनके द्वारा धार्मिक स्थलों, पेड़, किसी स्थान, बाबा, चाँद-तारों आदि से मनौतियां मांगी जाती है तथा चमत्कार की आशा की जाती है। मानव द्वारा -

मनौतियां	**मनौतियां मांगने का स्त्रोत**
संतान की प्राप्ति	दरगाह, मंदिर, बाबा
सही प्रकार से प्रसव	तांत्रिक, देवस्थल
नौकरी की प्राप्ति	बाबा, तांत्रिक, ज्योतिषी, देवस्थल
पशु की सलामती	बाबा, तांत्रिक,देवस्थल
विवाह सम्पन्न हेतु	पेड़, बाबा, ओझा, दरगाह, मजार, देवस्थल
परीक्षा में उतीर्ण हेतु	मन्दिर, बाबा
बीमारी से निजात	बाबा, तांत्रिक, दरगाह, मस्जिद, देवस्थल
धन की प्राप्ति हेतु	बाबा और ज्योतिष
पुत्र की प्राप्ति	पेड़, बाबा, दरगाह, मन्दिर

आदि विभिन्न उद्देश्यों के लिए विभिन्न स्त्रोतों के माध्यम से मनौतियां मांगी जाती है। कभी-कभी मनौतियां पूर्ण हो जाती है। यदि पूर्ण नहीं होती तो बाबा, ओझा, पुजारी, साधु-संन्यासी जिन्हें ईश्वर के करीब माना जाता है से प्रार्थना की जाती है कि वे मनौती हेतु जप-तप करें जिसमें कि मनौती पूर्ण हो जाये। यदि मनौती पूर्ण हो जाती है तो उसे चमत्कार बताकर उस बाबा, ओझा आदि का खूब प्रचार प्रसार किया जाता है तथा वे भी भोली-भाली जनता के विश्वास से छलावा करते हुए धन कमाते हैं।

झाड़-फूंक : जब व्यक्ति को नजर लग जाए, मन अशान्त हो तथा किसी भी प्रकार की कोई शारीरिक या मानसिक परेशानी हो तब बाबा, ओझा या तांत्रिक मोर की पंख, चाकू या नीम की टहनी को पीड़ित व्यक्ति के शरीर को छुते हुए या पीड़ित के शरीर पर फेरते हुए मंत्रों का जाप करता है तथा अन्त में पीड़ित के शरीर पर फूँक मारता हैं। यह प्रक्रिया झाड़-फूंक कहलाती है। नजर उतारना या अदृश्य शक्ति का प्रभाव आदि से बचाव हेतु इस प्रक्रिया को किया जाता है क्योंकि चिकित्सा विज्ञान ऐसी किसी भी समस्या को असत्य मानते हुए उपचार हेतु नकार देता है। इस प्रकार

ISSN 2348-3857

अंधविश्वास के कारण बहुत से व्यक्ति उपचार के नाम पर बड़ी संख्या में लोगों को ठग रहे हैं।

झाड़-फूंक करने हेतु सामग्री : झाड़ू, मोर-पंख, चाकू, नीम की टहनी, धागा आदि।

टोटका : किसी अप्रिय तथा हानिकारक कार्य को अपने पक्ष में करने के लिए शास्त्रों (तांत्रिक विद्या) द्वारा निर्धारित क्रिया को करना टोटका कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है। प्रथम वह जो नियमित रूप में किया जाता है। यह तब तक बार-बार किया जाता है जब तक कि व्यक्ति का उद्देश्य पूर्ण न हो जाए। दूसरा वह जो निर्धारित संख्या में किया जाता है। इसमें उद्देश्य पूर्ण होने का इन्तजार नहीं किया जाता। यह निश्चित संख्या एवं प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। यदि उद्देश्य पूर्ण नहीं होता है तो फिर से शुरूआत की जाती है या अन्य टोटके का प्रयोग किया जाता है।

टोटकों को सम्पन्न करने हेतु प्रयुक्त सामग्री :

रोली	मोली	चावल
राख	काजल	मांस
टूटा घड़ा	लाल कपड़ा	नारियल
फूल	बाल	मिट्टी
मेहन्दी	हल्दी	धागा आदि।

बाबा या गुरु : वर्तमान में बाबा तथा गुरु सामान्य जनता में बहुत प्रचलित हो रहे हैं। सामान्य जनता इन्हें अपना आदर्श मान इनके इशारों पर चलना पसंद करती हैं। धीरे-धीरे लोग इन्हें भगवान का दर्जा देना प्रारम्भ कर देते हैं तथा इन्हीं के कहे अनुरूप अपना जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर देते हैं। ये विश्वास इतना अंधा होता है कि मानव सही और गलत का भेद ही नहीं जानना चाहता है। उनके लिए गुरु ही श्रेष्ठ एवं प्रथम व्यक्ति या मार्गदर्शन बन जाता है। वे उन्हें गुरु मानने के उपरान्त स्वयं को सुरक्षित एवं भाग्यशाली मानने लगते हैं।

तंत्र-मंत्र, डोरे, ताबीज एवं यंत्र आदि हेतु प्रचलित व्यक्ति :

बाबा	मौलवी	स्वामी
तांत्रिक	ओझा	ज्योतिषी
पुजारी	अघोरी	गुरुजी

डायन : यह एक कुप्रथा है जो ग्रामीण समाजों में अधिक देखने को मिलती है। इस कुप्रथा में किसी भी महिला को डायन घोषित कर दिया जाता है तथा यह कहा जाता है कि इसमें भूत-प्रेत का साया है। यह जादू-टोना करती है। यदि किसी के पीछे पड़ जाये तो पीछा छुड़वाना अत्यन्त ही कठिन कार्य है। डायन किसी की भी धन सम्पत्ति को नष्ट कर सकती है एवं हत्या कर सकती है। इस प्रकार के अंधविश्वास भी महिलाओं के प्रति पाये जाते हैं। यह स्थिति महिलाओं के शोषण को प्रदर्शित करती है तथा भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को चित्रित करती है।

जो महिला एक बेटी, बहू, पत्नी तथा माँ जैसे देवी रूप में होती है वह डायन कैसे हो सकती है? किसी प्रकार की मानसिक या शारीरिक परेशानी के कारण महिला का व्यवहार असामान्य हो सकता है। उन कारणों को जानने एवं उनका उपचार करवाने के बजाए लोग महिला के असामान्य व्यवहार के आधार पर उसे डायन घोषित कर देते हैं जो कि अनुचित है। यह भी अंधविश्वास का एक उदाहरण है।

भूत : भूत वह है जो बीत गया। लोक जीवन में मृत व्यक्ति की आत्मा को भूत माना जाता है।

यदि कोई व्यक्ति असामान्य व्यवहार करता है तो यह माना जाता है कि उसमें किसी भूत या प्रेतात्मा का वास हो गया है तथा उपचार हेतु बाबा, ओझा आदि के पास ले जाकर उपचार करवाने का प्रयास किया जाता है। पीड़ित व्यक्ति को उपचार के नाम पर यातनाएं दी जाती है। उसे पीटा जाता है। वास्तविक कारण को जाने बिना ही किसी को भूत पीड़ित घोषित करना अंधविश्वास का ही एक रूप है। वह व्यक्ति किसी मानसिक तनाव या बीमारी से भी ग्रस्त हो सकता है। उचित कारण की जानकारी के अभाव में न केवल पीड़ित व्यक्ति बल्कि उसके परिवार को भी कष्ट पहुंचाता है तथा पाखंडी बाबाओं को झूठे कर्मकाण्ड, पाखण्ड करने तथा धन कमाने के अवसर प्राप्त हो जाते हैं जो कि अंधविश्वास को बढ़ावा देते हैं।

इस प्रकार के अंधविश्वास और चमत्कारों की उम्मीद के कारण ही तंत्र-मंत्र को बल मिला है तथा बाबा, मौलवी एवं ओझा आदि इसे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। तंत्र-मंत्र की प्रक्रिया के कई रूप है जैसे :-

- रोग निवारण- इस प्रक्रिया में तंत्र-मंत्रों के द्वारा रोगों का निवारण किया जाता है। उन रोगों को ठीक करने का दावा किया जाता है, जो चिकित्सक एवं दवा के माध्यम से ठीक नहीं हो पाते हैं।
- वशीकरण - इस प्रक्रिया में मंत्रों के द्वारा किसी भी व्यक्ति को वश में किया जा सकता है। तांत्रिक यह दावा करता है कि व्यक्ति को वश में करने के उपरान्त वशीभूत व्यक्ति किसी व्यक्ति विशेष तक ही सीमित हो जाता है। उसी से

जुड़ा रहना चाहता है तथा उसी के अनुरूप कार्य करता है।

- उच्चाटन - इस प्रक्रिया में मंत्रों के द्वारा व्यक्ति को मानसिक रूप से अस्थिर कर दिया जाता है जिससे व्यक्ति का स्थान विशेष या किसी व्यक्ति से लगाव समाप्त हो जाता है।
- मारण : इस प्रक्रिया में तंत्र-मंत्र के द्वारा किसी भी व्यक्ति को मारा जा सकता है।

ये तांत्रिकों एवं बाबाओं के द्वारा कि जाने वाले तांत्रिक क्रियाएं जिसके द्वारा वे शक्तिशाली एवं प्रभावशाली माने जाते हैं। ये बाबा तथा तांत्रिक लोगों में अंधविश्वास पैदा कर उन्हें अपने प्रभाव में लेते हैं तथा उनमें चमत्कारों की उम्मीद जगा कर धन एँठते हैं।

प्रचलित उपचार

1. ताबीज पहनना।
2. मनौतियां मांगना।
3. झाड़-फूंक करवाना।
4. टोन-टोटके करना।
5. पूजा पाठ करना।
6. तपस्या करना।
7. ताबीज को पानी में डाल कर पीना।
8. भभूत को शरीर के लगाना या खाना।
9. तंत्र-मंत्र से बचाव हेतु यंत्र रखना।
10. ईश्वर की फोटो लोकेट में डालना।
11. रक्षा-सूत्र धारण करना।
12. सुरक्षा मन्त्र का जाप करना।

अंधविश्वास के कारण इन उपायों के द्वारा व्यक्ति अपनी परेशानियों का बाबा, तांत्रिक एवं ओझा आदि से उपचार करवाते हैं।

कोई भी व्यक्ति किसी अन्य पर इतनी आसानी से विश्वास नहीं करता है जितनी तत्परता से वह समाज में प्रचलित अंधविश्वासों को मान जाता है। सामान्यतः जन समुदायों में टोन-टोटकों, जादू, तंत्र-मंत्र, के प्रति भय होता है। यह भय ही उन्हें इसमें विश्वास हेतु प्रेरित करता है। डायन, भूत, प्रेत, जादू, तंत्र-मंत्र, टोना-टोटका, पुनर्जन्म आदि सभी से मानव भयभीत रहता है। इन सभी का संबंध अलौकिक शक्ति से है जिससे बचाव के उपाय बाबा एवं तात्रिंक के पास ही माने जाते हैं। सामान्य मानव भयवश इनके सामने झुकता है तथा दबाव में रहता है। बहुत बार व्यक्ति को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है। माना जाता है कि जो व्यक्ति एक बार इनके चंगुल में फंस जाता है उसका इनसे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। वर्तमान में व्यक्ति धन कमाने हेतु अपने शहर एवं रिश्तेदारों से दूर रहता है। किसी भी प्रकार की परेशानी आने पर वह अकेला ही समाधान करने का प्रयास करता है और तनाव ग्रस्त हो जाता है। मानव तीव्र गति से विकास करना चाहता है तथा अधिक से अधिक धन कमाने की होड़ में वह अपने परिवार एवं रिश्तेदारों से दूरी बनाता जा रहा है। एकांकी जीवन जीने के कारण उसका मानसिक दबाव बढ़ रहा है। इन कारणों से मानव समस्याग्रस्त रहता है तथा अपनी समस्याओं को किसी से कहने के स्थान पर वह पाखण्डी बाबाओं से उपचार करवाने का प्रयत्न करता है जिसके प्रभाव स्वरूप बाबाओं का समाज में अस्तित्व बना रहता है। वर्तमान जीवन शैली को देखते हुए ये पाखण्डी लोग भोली-भाली जनता को ठगने का प्रयास करते हैं। आकर्षक, उद्देश्य पूर्ति, उपचार, आदि के लुभावने विज्ञापनों के द्वारा प्रचार करते हैं तथा हर बीमारी का ईलाज सम्भव है का दावा पेश किया जाता है।

जन साधारण इन लुभावने विज्ञापनों के चंगुल में फंस जाती है तथा अंधविश्वास में अपनी आस्था बनाए रखती है। मानव के अनुसार बाबा, ओझा आदि किसी भी प्रकार का चमत्कार कर सकते हैं। इन सबके बहकावे में आकर व्यक्ति अपने परिवार एवं रिश्तेदारों पर शक करने लगता है और धीरे-धीरे इनसे दूरी बना लेता है। वे सभी विश्वास जो कि अंधविश्वास है, का मुख्य कारण टूटते संयुक्त परिवार, नगरीकरण एवं औद्यागिकीकरण है। सामाजिक सम्पर्क समाप्त होते जा रहे हैं। तकनीक पर अत्यधिक निर्भरता हो रही है। जिसके परिणाम स्वरूप मानव जीवन एवं परिवार प्रभावित हो रहे हैं। अंधविश्वास एवं चमत्कार में आस्था को समाप्त करने हेतु शिक्षा एवं नैतिक शिक्षा को बढ़ावा दी जानी चाहिए। मानव को अपने परिवार के सम्पर्क में रहना चाहिए। जिससे की मानसिक तनाव कम हो और उपचार हेतु बाबा, ओझा के पास जाने से बचा जा सके। विज्ञान के ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए। वैज्ञानिक सोच विकसित की जानी चाहिए। नवीन ज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। सरकार को इन भ्रमित विज्ञापन देने वालों पर नकेल कसनी चाहिए जिससे की लोगों के साथ होने वाले धोखों को रोका जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. धाकरे, उपेन्द्र, देखने में छोटे लगें...जीवन में आनें वाली समस्याओं के सरल उपाय, निरोगी दुनिया प्रकाशन, जयपुर-16, 2012, पृ. 11
2. वरठे, डॉ चन्द्र कुमार, अंधविश्वास और चमत्कार, रचना प्रकाशन, जयपुर, 2010, पृ. 29-31

3. शुक्ल, आचार्य पं. शत्रुघ्न लाल, भारतीय तंत्र विद्या, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा, 2007
4. बहल, तांत्रिक, तंत्र-मंत्र-यंत्र रहस्य, राजा पैकेट बुक्स, दिल्ली, 2005
5. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976
6. पूनियानी, राम, धर्म का बाजार, उद्‌भावना प्रकाशन, राजनगर, गाजियाबाद
7. कविराज, गोपीनाथ, तांत्रिक साधना और सिद्धान्त, अनुवाद पं. हंसकुमार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 2009
8. चतुर्वेदी आचार्य, रहस्यवाद, बिहार-राष्ट्रभाषा, पटना-5, 1973
9. सागर, प्रमोद, मुस्लिम तंत्र, श्री सरस्वती प्रकाशन, अजमेर, 2003
10. तंत्र-मंत्र-यंत्र विज्ञान, डॉ. श्रीमाली मार्ग, हाईकोर्ट कॉलोनी, जोधपुर, राजस्थान, अप्रेल 2010, सितम्बर, 2010

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 129-134

सुशासन एवं सूचना का अधिकार

मुकेश कुमार शर्मा
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

Research Reinforcement ISSN 2348-3857

शोध सारांश

एक आम नागरिक अपने दैनिक जीवन में सुशासन की अपेक्षा रखता है और इसी की कामना करता है, कि किसी भी शासन प्रणाली में सुशासन के अपने फायदे है।'सुशासन' कोई नई तकनीक नहीं है, न नया पद, यह तो आदिकाल से चला आ रहा शासन का वह दर्शन है जिससे राज्य का काम सुचारु रूप से संचालित होता है और नागरिक बिना भय या परेशानी के अपना दैनिक जीवन आनंदपूर्वक गुजारता है। विश्व में चाहे अन्य विषयो पर शासन या सरकार में मतैक्य भले न हो सुशासन को लेकर पूरे विश्व में कही कोई शंका संदेह नहीं है। आखिर इसके दर्शन, ध्येय और लक्ष्य के अंतर्गत आम नागरिक का हित समाया हुआ है। सुशासन के लिए जिन मूल्यों की आवश्यकता होती है उनमे मिलजुलकर निर्णय लेना, उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, राजनितिक प्रणाली में दक्ष और उत्तरदायी सरंचना, कानून का शासन और निष्पक्ष समानता शामिल है। सूचना का अधिकार कानून इस दिशा में एक महत्वपूर्ण शक्तिशाली साधन है।

संकेताक्षर : *सुशासन, सूचना का अधिकार, पारदर्शिता, जवाबदेहिता, लोकतंत्र*

लोकतंत्र कि नींव आम जनता के विश्वास और सक्रिय भागीदारी पर टिकी होती है। अमरीका राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के शब्दों में जनता का जनता के लिए, जनता के द्वारा शासन प्रजातंत्र है। गोपनीयता अविश्वास कि जड़ है एवं पारदर्शिता विश्वास का आधार। जनता के शासन में गोपनीयता के आवरण लोकतंत्र को अधिकारों के गलियारे में धकेल देता है। जहाँ सिर्फ अराजकता, विखंडन और परस्पर राग द्वेष का साम्राज्य होता है। पारदर्शिता से निर्वाचित सरकार में आम जनता का विश्वास बना रहता है। यह विश्वास सरकार को हर संकट से उबारने में मददगार होता है। गोपनीयता का आवरण इस विश्वास को खंडित करता है। लोकतांत्रिक सरकार में पारदर्शिता जवाबदेहिता और संवेदनशीलता जैसे मौलिक गुण होते है। जिसे प्रजातंत्र का धर्म भी कहा जा सकता है। सूचना का अधिकार प्रशासन में पारदर्शिता और आम लोगों की सक्रिय भागीदारी का एक सुगम एवं सीधा मार्ग है। लोकतंत्र को जीवित बनाने एवं शासन प्रशासन में आम लोगों की सतत एवं सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सूचना का अधिकार जरुरी है। सूचना का अधिकार लोकतंत्र का आधार स्तम्भ है। इससे पारदर्शिता एवं जवाबदेहिता के माध्यम से भ्रष्टाचार पर रोक संभव है। साथ ही जनसहभागिता के द्वारा लोकतंत्र में वास्तविक आदर्शो को भी प्राप्त किया जा सकता है।[1] सूचना का अधिकार जनता और शासन के बीच संतुलन स्थापित करता है। अब प्रशासन को सोचना है कि उसे सूचनाएँ छिपाकर अविश्वसनीय अर्थात भ्रष्ट सरकार कहलाना पसंद है या आगे बढ़कर जनशक्ति के साथ इस कानून का सही क्रियान्वन कर विश्वसनीय एवं सुशासन कहलाना।

एक आम नागरिक अपने दैनिक जीवन में सुशासन की अपेक्षा रखता है और इसी की कामना करता है, कि किसी भी शासन प्रणाली में सुशासन क अपने फायदे है।'सुशासन' कोई नई तकनीक नहीं है, न नया पद ,यह तो आदिकाल से चला आ रहा शासन का वह दर्शन है जिससे राज्य का काम सुचारु रूप से संचालित होता है और नागरिक बिना भय या परेशानी के अपना दैनिक जीवन आनंदपूर्वक गुजारता है। विश्व में चाहे अन्य विषयो पर शासन या सरकार में मतैक्य भले न हो सुशासन को लेकर पुरे विश्व में कही कोई शंका संदेह नहीं है। आखिर इसके दर्शन, ध्येय और लक्ष्य के अंतर्गत आम नागरिक का हित समाया हुआ है। सुशासन के लिए जिन मूल्यों की आवश्यकता होती है उनमे मिलजुलकर निर्णय लेना, उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, राजनितिक प्रणाली में दक्ष और उत्तरदायी सरंचना, कानून का शासन और निष्पक्ष समानता

शामिल है। सूचना का अधिकार कानून इस दिशा में एक महत्वपूर्ण शक्तिशाली साधन है।

इस प्रकार सूचना के अधिकार एवं सुशासन की अवधारणाएं अंतर्संबंधित रही है। अर्थात कहा जा सकता है कि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है। सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 सुशासन के लिए मील का पत्थर है। विशेषत: जनता अर्थात गरीबो और वंचितों के लिए इसके माध्यम से नागरिकों कि सहायता की जा सकती है। प्रशासन में जनता कि भागीदारी सुनिश्चित करने की लिए सूचना का अधिकार आवश्यक है। इसके परिप्रेक्ष्य में ही सामान्य जन अपनी भूमिका से अवगत होता है और ऐसी स्थिति में कोई भी सरकार निरकुंश नहीं हो पाती।

सुशासन शब्द सामान्यत: अंग्रेजी के 'गुड गवर्नेन्स' शब्द के हिंदी रूपांतर के रूप में प्रयुक्त होता है। यह शब्द वर्तमान लोकतंत्र के साथ अभिन्न है। हम जिस वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में रहते हैं वह अंग्रेजी के 'डेमोक्रेसी' शब्द का हिंदी रूपांतर है और इसका उद्भव भी पश्चिम के देश हैं, इसलिए हम इस लोकतंत्र के साथ उनसे जुड़े दूसरे शब्द भी उसी अनुरूप लेते हैं। इस समय सुशासन की ज्यादातर अवधारणाएं और विचार विश्व के पश्चिमी विकसित देशों को आदर्श बनाकर पेश करती है। उनका राजनीतिक ढ़ांचा, आर्थिक विकास, व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उनका व्यवहार, उनके मानवाधिकार, उनकी न्याय प्रणाली, पुलिस व्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य ढ़ांचे आदि सुशासन के आदर्श हैं जिनका अनुकरण करके हमें भी अपने देश या राज्य को उसी तरह बनाना है। ऐसा करने में हम जितने सफल होंगे, सुशासन के मापदंड पर हम भी उतने ही सफल माने जाएंगे। आज का सच यही है कि पूरी दुनिया के लिए सुशासन के उपर्युक्त मॉडल सर्व-स्वीकृति है और ज्यादातर देश उन्हीं का अनुसरण कर रहे है। वास्तव में देखा जाये तो 'प्रशासन' से तात्पर्य 'निर्णय-निर्माण' की क्षमता एवं उन निर्णयों को लागू करने या न करने से है। सुशासन निर्णय-निर्माण एवं क्रियान्वयन की क्षमता का सद्भावना पर आधारित होना है।[2]

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने भी सुशासन की कल्पना दी है यानी- लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, आधुनिक शिक्षा प्रणाली, स्वास्थ्य, गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों, बच्चों, वृद्धों और महिलाओं की सुरक्षा, मानवाधिकार, श्रम के नियम, व्यापार के नियम, न्याय प्रणाली आदि सारे मॉडल उन देशों द्वारा ही तैयार किए गए है। इनमें निस्संदेह सुशासन जन कल्याण के तत्व है, पर वे पूर्ण है, आदर्श है ऐसा मानना उचित नहीं होगा। वैसे यह भी सच है वर्तमान लोकतंत्र के आने से पूर्व तत्कालीन परिस्थितियों और समाज व्यवस्था के अनुरूप विश्व एवं भारत के न जाने कितने चिंतको, मनीषियों, राजनेताओं ने सुशासन के बारे में गहन विचार किया।

सुशासन का अर्थ एवं परिभाषाएँ

सुशासन का तात्पर्य सही गलत, न्याय, अन्याय, नैतिक-अनैतिक के मध्य पहचान करने की क्षमता तथा जनहित में नीतियों के क्रियान्वयन से है अर्थात सुशासन का तात्पर्य जनहित के लिए किए गए शासन से है। सुशासन मान्य योग्य, खुला हुआ, साफ-सुथरी नीतियों का निर्माण करने वाला नियम व कायदों से युक्त संस्थान है। जो उन विशेषज्ञों से युक्त है। जो पारदर्शी प्रक्रिया के द्वारा कानूनों के नियमों तथा जनहित में कार्य करते है तथा सुशासन एक सशक्त जनसमाज है जो नागरिक मुद्दों में प्रमुख भागीदारी रखता है।[3]

जबकि दूसरी तरफ कुशासन गलत नीतियों, असंगठित नियम वाली संस्थाओं युक्त, अन्याय युक्त तंत्र, शक्ति का गलत इस्तेमाल करने वाला, भ्रष्टाचार युक्त नागरिकों के हित को नकारने वाला होता है। सुशासन के विभिन्न अर्थो के आधार पर सुशासन को भिन्न रूपों में परिभाषित किया जा सकता है-भारतीय स्वरूप में कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में उस राजा के शासन को सुशासन कहा जाता था जो राजा अपनी प्रजा की खुशी में ही अपनी खुशी मानता है। प्रजा के कल्याण में स्वयं का कल्याण मानता है, स्वयं के हित को नहीं अपितु जनहित को सर्वोपरि मानता है। ऐसे प्रशासन को सुशासन माना जाता था।[4]

पाई के अनुसार-''सुशासन वह है जिसमें प्रजा एक शांतिपूर्ण, नियमयुक्त समृद्धि युक्त जीवन जीए।''

जॉन हैले एवं मार्क रॉविन्सन-प्रथम के अनुसार-''सुशासन एक प्रभावी संगठन है, जिसमें नीति-निर्माण, विशेष रूप से आर्थिक नीतियाँ, स्थिरता एवं जनहित शामिल है।''

कॉफी अन्नान ने लिखा है-''सुशासन विकास को बढ़ावा देने वाला एवं गरीबी को घटाने वाला शायद एक मात्र महत्वपूर्ण कारक है।'' एक अन्य रूप में एच.के. एस्मेरोम सुशासन को परिभाषित करते हुए लिखते है कि-''एक प्रजातंत्र की रूपरेखा में ही सुशासन प्रभावी एवं क्षमतायुक्त होता है।'' विवके चौपड़ा के अनुसार-''सुशासन वह है जो समाज की कीमत समझे एवं उसे बढ़ाए।''

मिनोचा के अनुसार-''सुशासन वह है जिसमें राजनीतिक हिस्सेदारी, स्वतंत्रता का अधिकार, नियमयुक्तवातावरण, सूचना एवं पारदर्शिता हो तथा जनता एवं सरकार के मध्य प्रभावी सामंजस्य हो।'' यू.एस. अग्रवाल के अनुसार-''एक सुशासन वह है जिसका लक्ष्य उसकी नीतियों एवं उनको लागू करने के तरीकों तथा

उनके नतीजों में हो व इनकी जनता के तरफ जिम्मेदारियों, जनता से व्यवहार, जनता के लिए विभिन्न वायदों व उनकी ईमानदारी में ही इनका लक्ष्य समाहित है। ऐसा शासन ही सुशासन है।''

यतीश मिश्रा के अनुसार-''सुशासन वह है जिसमें देश का उत्तरदायित्व रखने वाले राजनीतिक संगठनों के लोगों के कार्य के तरीके, उनकी जिम्मेदारियों तथा उनके जनता की भलाई के लिए किये गये कार्य तथा सभी जन हेतु संघर्ष करने की कार्यशैली सम्मिलित है।''

मार्टिन मिनो गाउन ने अच्छे सुशासन को एक व्यापक सुधार रणनीति माना है तथा यह व्यक्त किया है कि सरकार को जवाबदेह, पारदर्शी तथा लोकतांत्रिक बनाने के लिए सभ्य समाज को सशक्त करने की पहल करना सुशासन का अभिन्न अंग है।

यूनान के दार्शनिक प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य, राजा, न्याय व्यवस्था आदि का विस्तृत वर्णन किया है। अरस्तु के चिंतन में राज्य, संविधान, कानून, शासक, नागरिक आदि का उस समय के संदर्भ में विशद वर्णन है। अरस्तु की कुछ पंक्तियों पर नजर दौडाइए 'राज्य कुलों और ग्रामों का एक ऐसा समुदाय है जिसका उद्देश्य पूर्ण और आत्मनिर्भर जीवन की प्राप्ति है।' 'राज्य का उदय जीवन के लिए हुआ और सद्जीवन के लिए उसका अस्तित्व बना हुआ है।' 'राज्य एक सकारात्मक अच्छाई हैं, अत: इसका कार्य बुरे कामों अथवा अपराधों को रोकना नहीं, वरन मानव को नैतिकता और सद्गुणों के मार्ग पर आगे बढ़ाना है।' आज के संदर्भ में प्लेटो एवं अरस्तु के राज्य और शासन संबंधी विचारों की आलोचना होती है, लेकिन सुशासन की दृष्टि से उनके दर्शन के अनेक पहलुओं की प्रासंगिकता हर काल में बनी रहेगी। इसके बाद हॉब्स, लॉक, रूसो, बेंथम, मिल एक लम्बी श्रृंखला उन विचारकों और नेताओं की है जिन्होनें अपनी दृष्टि से तत्कालीन स्थान, समय और परिस्थितियों के अनुसार सुशासन की कल्पना की है। लेकिन हमें यह सच स्वीकार करना होगा कि सुशासन का जितना गहरा और विशद विचार भारतीय मनीषियों ने किया उतना दुनिया में कहीं नहीं हुआ। अलग-अलग प्रश्नों के उत्तर में राज्य, राजा, प्रजा, अधिकारी सबके कर्त्तव्यों का जो वर्णन हैं वही वस्तुत: सुशासन है।[5]

इस प्रकार सुशासन का तात्पर्य है-''अच्छा शासन'' या अभिशासन, जो कुशासन से मुक्ति तथा विधि के अनुरूप लोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा कानून का शासन स्थापित करता है। कुशासन एक व्यवस्थित ढाँचा है, जो जनहित को बढ़ावा देता है। इसके अंतर्गत प्रशासन में पारदर्शिता तथा लोगों को एक बेहतर जीवन प्रदान करने की भावना अंतर्निहित है। सुशासन से नागरिकों का बेहतर वर्तमान व उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित होता है। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि वर्तमान लोकतांत्रिक सरकार ''जनता के लिए, जनता द्वारा व जनता की होती है।'' अत: किसी की शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु 'जनता' ही होती है। सुशासन का उद्देश्य जनता की अपेक्षाओं व आशाओं को पूरा करना होता है।

बैन्थन सुशासन को अत्यधिक लोगों द्वारा पसंद किए जाने वाला शासन मानते है जबकि भारत में हम लोग ''सर्व जना: हिताय, सर्वजना: सुखाय'' वाली नीति पर विश्वास करते है इस नीति के अंतर्गत सभी की समृद्धि को सर्वोपरि रखा जाता है। इस प्रकार सुशासन का तात्पर्य उन सभी निर्णयों, नीतियों एवं कार्यों से है जिनका उद्देश्य सभी की सुख समृद्धि है।[6] सुशासन में एक प्रजातंत्र कातात्पर्य जनता की सरकार, जनता के द्वारा चुनी सरकार जनता के लिए बनी सरकार से है। जिसके अंतर्गत जनता की सुख-समृद्धि पसंद एवं शासन की समस्त पर्याप्त शर्तो एवं अच्छी बातों का ध्यान रखा जाता है।

सुशासन को परिभाषित करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुशासन विस्तृत अर्थो वाली प्रभावी जनहितकारी व राजनीतिक तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा देने वाली प्रक्रिया हैं।[7]

जवाबदेहिता लोकतांत्रिक प्रशासनिक संस्.ति को बनाए रखने के लिए अति आवश्यक है। सूचना प्राप्ति का अधिकार लोकतंत्र के इसी विशेष रूप को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। सुशासन लोकतांत्रिक व्यवस्था का प्राण है जिसे सूचना के अधिकार से प्राणवायु प्राप्त होती है। अत: लोकतंत्र में सुशासन एवं सूचना का अधिकार अन्तर्सम्बंधित अवधारणाएँ है। ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट है कि लोकतांत्रिक शासन में जनता कि अधिकतम भागीदारी होती है। इसीलिए अब्राहम लिंकन ने इसे 'जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए शासन कहा है।' अत: इसे खुला, जवाबदेह तथा पारदर्शी होना चाहिए। किसी भी सच्चे लोकतंत्र तथा सुशासन के लिए जरुरी है कि शासन के कार्यो में अधिकतम पारदर्शिता हो जिससे सूचना के अधिकार के तहत नागरिको को अधिकतम सूचनाएँ आसानी से हासिल हो सकें। इस प्रकार सूचना का अधिकार सुशासन को गति प्रदान करने में शस्त्र का काम करता है। यही कारण था कि भारत में सन 2005 में सूचना के अधिकार को संपूर्ण रूप में राष्ट्र में लागू कर दिया है। जिससे प्रशासन तंत्र में पारदर्शिता और जबावदेहिता के माध्यम से भ्रष्टाचार पर रोक संभव हो। साथ ही जनसहभागिता के द्वारा लोकतंत्र के वास्तविक आदर्शो को प्राप्त किया जा सकता है।[8]

सुशासन को संपूर्ण रूप से लागू करना कठिन है इस दिशा में कार्य करने के लिए 'सूचना का अधिकार' एक अत्यंत महत्वपूर्ण

ISSN 2348-3857

उपाय है जिसके द्वारा द्वारा सुशासन कि अवधारणा को साकार किया जा सकता है। सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 को संसद ने 15 जून , 2005 को जारी किया गया। यह कानून 13 अक्टूबर, 2005 से पुरे भारतवर्ष में लागू हुआ। इस अधिनियम के अनुसार नागरिको को केंद्र सरकार व राज्य सरकार के रिकॉर्ड को देखने परखने का अधिकार मिल गया है। सन 1975 में सर्वो च्च न्यायालय ने ऐतिहासिक निर्णय देते हुए व्यवस्था की है कि '' जनता को प्रत्येक उस लोक कार्य को जानने का अधिकार है जिसे लोक सेवकों द्वारा आम तौर पर किया जाता है।[9]''

इसी के अनुसार सूचना के अधिकार का प्रादुर्भाव हुआ जिसमे कोई भी नागरिक ''लोक सूचना अधिकारी (सरकारी या सरकार द्वारा अधिकृत व्यक्ति) से सूचना मांग सकता है। जिसे 30 दिन के अंदर प्रदान करना करना होता है। अधिनियम के अनुसार प्रत्येक लोक प्राधिकरण द्वारा अपने रिकॉर्ड को कम्प्यूटरीकृत करने का निर्दे श दिया गया है, ताकि सभी सूचनाए आधिकारिक व्यक्तियों तक पहुँचे। सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 के अंतर्गत यह भी प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक लोक विभाग सुशासन सुनिश्चित करने हेतु अपने विभाग की समस्त सूचनाएं स्वयं प्रकाशित करवाए ताकि लोगों को उक्त अधिनियम की अंतर्गत सूचना मांगने की आवश्यकता ही न पड़े।

सूचना की अधिकार ने देश को नए लोकतंत्र का आधार दिया है। अब तक शासकीय गोपनीयता अधिनियम, 1923 का सहारा लेकर तमाम सार्वजनिक सूचनाओं पर पर्दा डाल दिया जाता था। सूचनाधिकार ने इस पर्दे को तार तार कर दिया है। इसने नए लोकतंत्र की नींव रखने वाले नए नायक भी सामने ला दिए है। अधिनियम के अनुसार भारत के संविधान ने लोकतांत्रिक गणतंत्र की स्थापना की है। लोकतंत्र में नागरिको के सूचना संपन्न होना तथा सूचनाओं की पारदर्शिता का होना आवश्यक हैं इससे भ्रष्टाचार पर लगाम लगायी जा सकती है। सरकारी व उससे जुड़े लोगों को शासितों के प्रति उत्तरदायी बनाया जा सकता है। किसी भी सच्चे लोकतंत्र या सुशासन के लिए जरुरी है की शासन के कार्यों में अधिकतम पारदर्शिता हो तथा नागरिको को सूचनाये आसानी से हासिल हो सकें। सूचना संपन्न नागरिक ही इस बात की समीक्षा भी कर सकते है कि उनके संसाधनों का प्रबंधन करने तथा शासन का दायित्व संभालने वाले लोग वास्तव में किस हद तक सुशासन कि ओर बढ़ रहे है इसी के आधार पर यह भी तय होता है कि शासन और प्रशासन से जुड़े लोग अपनी जिम्मेदारीयो के प्रति कितने जवाबदेह तथा नागरिकों के प्रति किस हद तक उत्तरदायी है।

आस पास की सड़कें खराब हालत में हों, सरकारी अस्पतालों में मशीन खराब होने के नाम पर जांच न हो, हेल्थ सेंटर्स में डॉक्टर या दवाइयां न हों, अधिकारी काम के नाम पर रिश्वत मांगे या फिर राशन की दुकान पर राशन ही न मिले तो आप सूचना के अधिकारी यानी आरटीआई के तहत ऐसी सूचनाएं पा सकते है। यह अधिकार आपको और ताकतवर बनाता है।

क्या है आरटीआई?

सरकारी कार्यप्रणाली में खुलापन और पारदर्शिता लाने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 लाया गया है। यह लोकतांत्रिक संस्थानों को मजबूत बनाने, भ्रष्टाचार हटाने, जनता को अधिकारों से लैस बनाने और राष्ट्र के विकास में नागरिकों की भागीदारी बढ़ाने में मील का पत्थर साबित हुआ है।

क्या हैं अधिकार?

- हर पब्लिक अथॉरिटी में एक या अधिक अधिकारियों को जन सूचना अधिकारी के रूप में नियुक्त करना जरूरी है। आम नागरिकों द्वारा मांगी गई सूचना को समय पर उपलब्ध कराना इन अधिकारियों की जिम्मेदारी होती है।
- इस अधिनियम में राइट टू इंफॉर्मेशन सिर्फ भारतीय नागरिकों को ही मिलता है। इसमें निगम, यूनियन, कंपनी वगैरह को सूचना देने का प्रावधान नहीं है, क्योंकि ये नागरिकों की परिभाषा में नहीं आते।
- अगर किसी निगम, यूनियन, कंपनी या एनजीओ का कर्मचारी या अधिकारी आरटीआई दाखिल करता है तो उसे सूचना दी जाएगी, बशर्ते उसने सूचना अपने नाम से मांगी हो, निगम या यूनियन के नाम पर नहीं।

कैसी जानकारी या सूचना?

- जनता को किसी पब्लिक अथॉरिटी से ऐसी सूचना मांगने का अधिकार है जो उस अथॉरिटी के पास उपलब्ध है या उसके नियंत्रण में है। इस अधिकार में उस अथॉरिटी के पास या नियंत्रण में मौजूद कृति, दस्तावेज या रिकॉर्ड, रिकॉर्डो या दस्तावेजों के नोट्स, प्रमाणित कॉपी और दस्तावेजों के सर्टिफाइड नमूने लेना शामिल है।
- नागरिकों को डिस्क, फ्लॉपी, टेप, वीडियो कैसेट या किसी और इलेक्ट्रॉनिक या प्रिंटआउट के रूप में सूचना मांगने का अधिकार है। शर्त यह है कि मांगी गई सूचना उसमें पहले से मौजूद हो।
- आवेदक को सूचना आम तौर पर उसी रूप में मिलनी चाहिए जिसमें वह मांगता है। अगर कोई विशेष सूचना दिए

जाने से पब्लिक अथॉरिटी के संसाधनों का गलत इस्तेमाल होने की आशंका हो या इससे रिकॉर्डो के परीक्षण में किसी नुकसान की आशंका होती है तो सूचना देने से मना किया जा सकता है।

कैसे भरें आरटीआई?

- सूचना पाने के लिए कोई तय प्रोफार्मा नहीं है। सादे कागज पर हाथ से लिखकर या टाइप कराकर 10रूपये के निर्धारित शुल्क के साथ अपना आवेदन संबंधित सूचना अधिकारी के पास किसी भी रूप में खुद या डाक द्वारा जमा कर सकते है। किसी खास तरह से आवेदन करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।
- आप हिंदी, अंग्रेजी या किसी भी स्थानीय भाषा में आवेदन दे सकते है।
- आवेदन फीस नगद, डिमांड ड्राफ्ट या पोस्टल ऑर्डर से दी जा सकती है।
- डिमांड ड्राफ्ट या पोस्टल ऑर्डर संबंधित विभाग (पब्लिक अथॉरिटी) के अकाउंट ऑफिसर के नाम पर होना चाहिए।
- डिमांड ड्राफ्ट के पीछे और पोस्टल ऑर्डर में दी गई जगह पर अपना नाम और पता जरूर लिखें।
- आरटीआई एक्ट जम्मू और कश्मीर के अलावा पूरे देश में लागू है।
- अगर आप फीस नकद जमा कर रहे है तो रशीद जरूर ले लें।
- गरीबी रेखा के नीचे की कैटेगिरी में आने वाले आवेदक को किसी भी तरह की फीस देने की जरूरत नहीं है। इसके लिए उसे अपना बीपीएल प्रमाण पत्र की कॉपी आरटीआई आवेदन के साथ लगानी होगी।
- सिर्फ जन सूचना अधिकारी को आवेदन भेजते समय ही फीस देनी होती है। पहली अपील या सेन्ट्रल इंफॉर्मेशन कमिश्नर को दूसरी अपील के लिए किसी प्रकार की फीस नहीं देनी होती।
- अगर सूचना अधिकारी आपको समय पर सूचना उपलब्ध नहीं करा पाता है और आपसे तीस दिन की समय सीमा गुजरने के बाद कागजात उपलब्ध कराने के नाम पर अतिरिक्त धन राशि जमा कराने के लिए कहता है तो यह गलत है। इस स्थिति में अधिकारी आपको मुफ्त कागजात उपलब्ध कराएगा। चाहे उनकी संख्या कितनी भी हो।[10]
- आवेदक को सूचना मांगने के लिए कोई वजह या पर्सनल ब्यौरा देने की जरूरत नहीं है। उसे सिर्फ अपना पता देना होगा।

आवेदन देने के बाद

- अगर आपने अपना आवेदन जन सूचना अधिकारी (पीआईओ) को दिया है तो वह आपको 30 दिन के अंदर सूचना मुहैया कराएगा। साथ ही उसके जवाब में प्रथम अपीलीय अधिकारी का नाम व पता भी दिया जाना जरूरी है। अगर आपने अपना आवेदन सहायक सूचना अधिकारी को दिया है तो उसकी समयसीमा 35 दिन है।
- आवेदक द्वारा मांगी गई सूचना का संबंध अगर किसी व्यक्ति की जिंदगी या आजादी से जुड़ा हो तो सूचना अधिकारी को आवेदन मिलने के 48 घंटों के अंदर जानकारी देनी होगी।

आवेदन लेने से इनकार

- कुछ विशेष परिस्थितियों में ही जनसूचना अधिकारी आपके आवेदन को लेने से इंकार कर सकता है।
- अगर आवेदन किसी और जन सूचना अधिकारी या पब्लिक अथॉरिटी के नाम पर हो।
- अगर आप ठीक तरह से सही फीस का भुगतान न कर पाये हों।
- अगर आप गरीबी रेखा से नीचे के परिवार के सदस्य के रूप में फीस से छूट मांग रहे है, लेकिन इससे जुड़ा प्रमाण पत्र नहीं दे सकते।

यहाँ नहीं लागू होता कानून

- किसी भी खुफिया एजेंसी कि ऐसी जानकारिया जिनके सार्वजनिक होने से देश कि सुरक्षा और अखंडता को खतरा हो को इस कानून के दायरे से बाहर रखा गया है। निजी संस्थानों को भी इस दायरे से बाहर रखा गया है, लेकिन इन संस्थानों कि सरकार के पास उपलब्ध जानकारी को संबधित सरकारी विभाग से प्राप्त किया जा सकता है। इंटेलिजेंस एजेंसियो द्वारा मानवाधिकार उल्लघंन होने और इन संस्थानों में भ्रष्टाचार के मामलों कि जानकारी ली जा सकती है। अन्य देशों के साथ भारत के संबध से जुड़े मामलो कि जानकारी को भी इस कानून के दायरे से बाहर रखा गया है।[11]

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि सूचना के अधिकार के माध्यम से सुखद भविष्य एवं सुदृढ़ राष्ट्र अर्थात सुशासन कि स्थापना संभव है।

निकफोर्ड की यह टिप्पणी कितनी सुन्दर है - ''आप बीते हुए समय को नहीं बदल सकते, पर आने वाले समय में गलतियों को नियंत्रित कर सकते है।'' सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 में प्रभावी होने के फलस्वरूप हमारा भारतीय जनतंत्र अब सही अर्थो में जनतंत्र बन गया है। इसने पहली बार जनतंत्र कि अवधारणाओं को विधिक मान्यता देते हुए देश कि जनता की हाथो में ऐसा शक्तिशाली अस्त्र सौंप दिया है जिसके द्वारा अब सामान्य जनता सामान्य जीवन को प्रभावित करने वाली लगभग सभी शासकीय, नीतियों, निर्णयों, कार्यक्रमो व योजनाओ इत्यादि के बारे में कोई भी जानकारी प्राप्त कर अपनी भागीदारी प्रदान कर सकती है। प्रशासन व सरकार कि स्पष्ट नीतियाँ जनता कि स्पष्ट सहभागिता एवं भागीदारी ही सुशासन कि स्थापना की लक्ष्य को पूर्ण कर सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. गोयल, सी.एल., राइट टू इनफार्मेशन एंड गुड गवर्नेंस, ईस्टर्न बुक कारपोरेशन , लखनऊ , 2007 , पृ. 18-21
2. बर्थवाल, सी.पी., गुड गवर्नेंस इन इंडिया, दीप एंड दीप पब्लिकेशन्स, न्यू दिल्ली, 2003, पृ. 5
3. राव, एम.जी. रमाकांत, गुड गवर्नेंस, मॉडर्न ग्लोबल एंड रीजनल पर्सपेक्टिव्स, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008, पृ 3-5
4. कश्यप, सुभाष, कांसेप्ट ऑफ गुड गवर्नेंस एंड कौटिल्य अर्थशास्त्र, इंडियन कॉउन्सिल ऑफ सोशल रिसर्च, दिल्ली, 2003
5. अवस्थी, अमेश्वर, आधुनिक भारतीय एवं राजनितिक चिंतन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1989 , पृ. 48
6. मोदी, रंजन, डेमोक्रेसी एंड गुड गवर्नेंस, मंगलदीप पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2004 पृ. 41
7. बर्थवाल, सी.पी., गुड गवर्नेंस इन इंडिया, दीप एंड दीप पब्लिकेशन्स, न्यू दिल्ली, 2003, इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन स्पेशल नंबर ऑन गुड गवर्नेंस, वॉल्यूम-44 , न.-13 जुलाई - सितम्बर 1998
8. पांडे, शुचि एवं सिंह, शेखर, राइट टू इनफार्मेशन एक्ट : अ प्राइमर, नेशनल बुक ट्रस्ट पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2007, पृ. 59
9. यादव, अभय सिंह, द राइट टू इनफार्मेशन एक्ट 2007 एंड एनालिसिस, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 98
10. सैनी, आर.डी., एवं मंगलानी, रूपा, सूचना का अधिकार, पृ. 36
11. जागरण, 27 जनवरी, 2015

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
UGC App. No. 64785 | Impact Factor (IIJIF): 4.213 | Vol. 6, Issue 1 | May 2018 - Oct. 2018 | pp. 135-138

स्त्री अस्मिता और नासिरा शर्मा

डॉ वंदना बरमेचा
सह आचार्य, हिंदी
राजकीय महाविद्यालय, दूदू, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

समय परिवर्तन के साथ - साथ मानव समाज में स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ। उसने घर के बाहर निकलना, कमाना तथा आर्थिक आजादी के लिए, खुद को साबित करने के लिए अधिक जिम्मेदारियों को ओढ़ना शुरू कर दिया। उसने तो जिम्मेदारियों को निभाने की पूरी कोशिश की लेकिन समाज और उसका एक बड़ा तबका (जिसमें पुरुषों के साथ महिलाएं भी शामिल हैं) इसे आसानी से पचा नहीं पाया और स्त्री के अस्तित्व और और उसकी शुचिता पर प्रश्नचिन्ह लगे। नासिराजी ने समाज की जागरूक, एवं स्त्री अस्मिता के प्रति सरोकार रखने वाली महिला होने के कारण अपने चिंतन और सृजन में सम्बंधित प्रश्नों और समस्याओं को उठाया है। असल में स्त्रियों ने हौंसला तो दिखाया है पर मर्द का जादू नहीं तोड़ पाई। कमाने की आजादी तो मिली पर मन मुताबिक खर्च करने की आजादी नहीं ले पाई। कई सवालों के घेरे में उसका अस्तित्व उलझ जाता है। इन सवालों को, इन मुश्क़िलों को नासिराजी ने देखा,समझा और जिया है और बखूबी साहित्य में अभिव्यक्त किया है।

संकेताक्षर : *नासिरा शर्मा, स्त्री सरोकार, स्त्री संघर्ष*

नारी के सरोकारों के बारे में कुछ लिखने का अभिप्राय न तो यह स्थापित करने का प्रयास है कि पुरूष स्त्री का दुश्मन है और स्त्री को आगे बढ़ना है तो उसे इस प्रत्यक्ष शत्रु के खिलाफ तलवार उठानी है और न ही 'औरत ही औरत की दुश्मन' है इस मुद्दे पर कोई वक्तव्य देना है। असल में पूर्व में स्त्री के अधिकारों के दमन के चाहे जो भी कारण रहे हो सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था का परिणाम या पुरुष सत्तात्मकता के कारण या फिर स्वयं नारी के ही अति ममतामयी, त्यागमयी स्वभाव के कारण, हकीकत यह है कि उसके सारे अधिकार लुप्त होते चले गए।

समाज में स्त्री की स्थिति के ग्राफ पर प्रारम्भ से अब तक दृष्टि डालें तो अत्यधिक उतार-चढ़ाव दृष्टिगोचर होता है। वैदिक युग में आदरणीय, सम्माननीय एवं प्रतिष्ठित धरा पर स्थापित नारी की स्थिति रामायण और महाभारत युग से गुजरते हुये नाथ एवं सिद्ध साहित्य के युग में अत्यंत विकट हो गयी। उसक़ा जीवन अत्यंत संकुचित एवं कुरीतियों का शिकार हो गया। चाहे भारत हो या इंग्लैंड, उन्नीसवीं सदी तक यही स्थिति बनी रही। भारतीय समाज में तो नारी की स्थिति पशु से भी दयनीय हो गयी थी। इसके पश्चात् धीरे-धीरे विभिन्न समाज सुधार आंदोलनों के माध्यम से उसकी स्थिति में सुधार आना प्रारम्भ हुआ।

सीधे-सीधे वर्तमान स्थितियों की बात करें तो जीवन के विविध क्षेत्रों में सर्वत्र अस्मिताओं का टकराव दृष्टिगोचर होता है। कहीं स्त्री अधिकारों को जानती ही नहीं है, कहीं जानती है पर पाने के लिये संघर्ष नहीं कर पाती, कहीं संघर्षरत है, कहीं अधिकारों को प्राप्त कर चुकी है। इसी का दूसरा पक्ष यह है कि अधिकारों को पाकर वह अमर्यादित होकर भागे चली जा रही है। उसे अपने अस्तित्व की गरिमा का भी ख्याल नहीं रहता। अतिवादी प्रवृत्ति तो कहीं भी ठीक नहीं होती है।

आये दिन अखबारों एवं न्यूज़ चैनलों के माध्यम से कभी पहाड़ियों पर तो कभी अनाथालय की सीढ़ियों पर नवजात कन्याओं को छोड़ने के समाचार आते रहने वाले इस देश में स्त्री की अस्मिता के सवाल पर, जाति एवं धर्म के नाम पर जो टकराव दृष्टिगोचर हो रहा है, उसमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि स्त्री के समक्ष साफ परिदृश्य हो अर्थात वह क्या कहती है, कहाँ पहुँचना चाहती है - यह सब वह स्पष्ट रूप से तय कर चुकी हो। उसे अपनी दृष्टि

साफ एवं लक्ष्य स्थिर रखना ही होगा।[1] (शृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा, पृष्ठ 35) लेकिन यह सब भी नारी को कभी प्राप्त नहीं हुआ। स्वत्व के प्राप्त न होने के कारण क्षुब्ध एवं विद्रोही बने नारी के मन ने आत्मा का हनन करने वाली परंपराओं को नकार दिया है। उसकी चेतना उसे युग संघर्ष के मैदान में उतार चुकी है। वह साफ साफ कह रही है :

उड़ लेने दे सखी आज मुझे
ऊँचे गगन विशाल में
तेज हवा का झोंका अब नहीं मुझे डरायेगा
तराश लिए हैं 'पर' मैंने अपने
टकरा-टकरा पिंजरे से सैयाद के।[2]

महिलाओं के लिए किए गये चिंतन के क्रम में नासिरा शर्मा के चिंतन ने एक व्यवस्थित रूपाकार प्रस्तुत किया है। दस कहानी संकलन एवं पांच उपन्यास लिख चुकी नासिरा शर्मा पेशे से पत्रकार है एवं साहित्य के अन्य विविध क्षेत्रों में भी सक्रिय है। यों तो उनकी सभी रचनाओं में एवं विशेष रूप से 'औरत के लिए औरत' पुस्तक में नारी जीवन के विभिन्न सरोकारों पर सुस्पष्ट चिंतन है।

वस्तुत: नासिराजी का स्त्री की अस्मिता के संदर्भ में चिंतन जीवन के प्रति जागरूक लेखिका के सरोकार हैं, जो औरत के द्वारा आबाद दुनिया में उसको बेहतर जिन्दगी जीते देखने की कामना से लबरेज है।[3] पिछली एक सदी में स्त्री में अपनी अस्मिता के प्रति ज़बर्दस्त जागरूकता आयी है। स्वाभाविक सी बात है कि एक दबा, सोया पक्ष गतिमान होगा तो समाज के दूसरे पक्ष यदि उस गति के साथ न चले तो अस्मिताएं टकराएगी। इससे कुछ विध्वंस होगा तो कुछ नवनिर्माण भी अवश्य होगा। असल में भारत में पुरुष सत्तात्मक समाज का पुरुष शायद कभी यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि स्त्री आत्मनिर्भर हो जाये। वह छतनार के वृक्ष की भांति औरत को चढ़ती बेल की तरह लिपटाये रखना चाहता है। उसे कब सहन है कि वह बेल एक छोटा पौधा बन जाये और खुद जमीन से रस खींचकर मोतिया की तरह महकने लगे या टमाटर की तरह पलने लगे।[4]

नासिराजी के अनुसार स्त्री की वह लडाई स्त्री बनाम पुरुष की लडाई नहीं है फिर भी दोनों में संघर्ष या टकराहट इसलिए हो ही जाती है क्योंकि स्त्री जितना बदली है, पुरुष स्वयं को नहीं बदल पाया है। नारी में इतनी शक्ति होती है कि यदि वह तय कर ले कि गैर जरूरी मुद्दों पर नहीं झुकना है, तो वह ऐसा कर सकती है। उसके हाथों में परिवार की बागडोर रहती है, अत: देश की आबादी का यह हिस्सा किसी बात पर अड़ जाये तो जीत अवश्यम्भावी है। महिलाओं को पुरुषों की गलत हरकत का विरोध करना ही चाहिए। वे कहती हैं कि जब मैं पिछले पचास वर्षों को एक औरत की नज़र से देखती हूं, तो मुझे लगता है कि औरतों ने एक जुझारू राह जरूर अपनायी है, मगर मर्द के जादू को तोड़ नहीं पाई है। जिसके कारण आज भी उनके मन मस्तिष्क में मर्द कभी भय के रूप में, कभी बुद्धि के रूप में, कभी उनके स्वामी के रूप में उभरता है। मगर कभी वे एक साथी के रूप में उसका ध्यान नहीं कर पाती हैं। स्त्रियों से जुड़ी समस्याओं को नासिराजी व्यापक समाज की समस्याएं मानती हैं। उनका कहना है कि इन समस्याओं को व्यापक संदर्भों में देखा जाना चाहिए।

नासिराजी ने औरत के जीवन संघर्ष को अच्छी तरह समझा है। वे कहती हैं कि स्त्री के कुछ करने के सपने अधूरे रहकर उसे मुँह चिढ़ाते रहते हैं। इसका जिम्मेदार कौन है? धर्म, परिवार या देश? इस पर विचार करना आवश्यक है। वे देश के विभिन्न वर्गों की औरतों की समस्याओं से परिचित हैं। मजदूर औरतों के शोषण के स्तरों को उजागर करती हुई वे कहती हैं - बेकारी और रोटी के बीच पिसती ये औरतें पति के रहते हुए भी सामंती व्यवस्था से प्रभावित ठेकेदारों के आगे घुटने टेकने पर अक्सर मजबूर हो जाती है।[5]

औरत के मन के धरातल को नासिराजी ने कई स्तरों पर उजागर किया है। शिलांग में औरतों की सत्ता होने के बावजूद उन्हें खुश नहीं देखकर वे साफ-साफ कहती हैं कि स्त्री -पुरुष सम्बन्धों में संशोधन और परिवर्तन की सख्त जरूरत है। नैनीताल की गूजर समाज की औरतों के बारे में बताते हुए वे कहती हैं कि उन गरीब व अनपढ़ स्त्रियों में भी स्वाभिमान है। उन्हें पुरुषों द्वारा किया जाने वाला अपना अपहरण अपमानजनक लगता है। स्त्री की अस्मिता की टकराहट आर्थिक अधिकारों के क्षेत्र में भी दृष्टिगोचर होती है। औरतों को कमाने की आजादी तो मिल गयी है पर अपनी कमाई पर उनका पूरा अधिकार नहीं है। विवाहित महिला माँ-बाप की सेवा तन-मन से नहीं कर पाती है। पारिवारिक व्यवस्था में भी उन्हें जूझना पड़ता है क्योंकि पति अपनी तयशुदा आदतों को बदलने के लिए तैयार नहीं होता।

नासिराजी स्त्री आरक्षण की खिलाफत करते हुए कहती है कि स्त्री की लडाई इस संजीदगी से लड़ी जाये कि उसकी ताकत उभरकर सामने आ सके। वे स्त्री के अस्तित्व को रियायतों की बैसाखियों पर टिका हुआ देखना नहीं चाहती। मुस्लिम समाज में औरतों की स्थिति पर नासिराजी ने खूब लिखा है : चिंतन में भी एवं सृजन में भी। इस्लाम ने औरतों को बहुत सारे अधिकार दे रखे हैं परंतु अज्ञानता एवं अशिक्षा के चलते ज़लालत की जिंदगी जीने

पर मजबूर हो जाती हैं। बंटवारे के पश्चात मुस्लिम महिलाओं की अतिरिक्त सुरक्षा एवं भय की मानसिकता का फायदा सियासी नेताओं एवं ज़ाहिल मौलवियों ने उठाया, जिनको वोट एवं रोजी की जरूरत थी। .... औरत चारों तरफ से घिर गई। एक तो वह अपने धर्म के बारे में जानती न थी, क्योंकि वह अरबी भाषा मैं है दूसरे जो उर्दू में भी है, तो वह शिक्षित नहीं कि उर्दू भी पढ़ सके। सो वह पूरी तरह पति और मौलवी पर निर्भर है।[6] (औरत के लिए औरत- नासिरा शर्मा, पृष्ठ 62) 'खुदा की वापसी' कहानी में फरजाना का शौहर जुबेर फरजाना की मेहर के सम्बंध में अज्ञानता का फायदा उठाता हुआ कहता है -वह औरत शौहर के लिए बहुत मुबारक होती है जो पहली रात अपने शौहर का मेहर माफ कर दे।[7] (खुदा की वापसी -नासिरा शर्मा, पृष्ठ 18)

धर्म के नाम पर स्त्रियों पर अनेक अत्याचार हुए हैं। न जाने कितनी औरतों का सतीत्व भंग हुआ है। धर्मोंन्माद में दंगे, फसाद एवं क्रूरतम कृत्य तो होते ही रहते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि जो धर्म को नहीं जानते वे ही धर्म के ठेकेदार बने बैठे हैं। इसके नाम पर समाज में अनेक कुरीतियाँ व्याप्त हुई है। वस्तुत: समाज के इन ठेकेदारों ने धर्म की सही गलत व्याख्या करके स्त्रियों को नियंत्रित करने का प्रयास किया है। हमें बाँधा इसलिये जाता है कि हम ठीक से खुद को जान न सके, धर्म की इतनी मोटी परत चढ़ी रहे, तो जानना हो भी कैसे सकता है। ? धर्म की परत हमारे व्यवहार को कंट्रोल में रखती है।[8]

अन्तरधर्मीय विवाहों के बारे में नासिराजी का चिंतन व्यावहारिक एवं महत्वपूर्ण है। हर वर्ष ऐसे विवाहों की संख्या बढ़ती जा रही है। घर - बाहर के मेल - जोल से अलग-अलग धर्म के स्त्री पुरुषों में भी एक-दूसरे के प्रति सहज आकर्षण पहले प्रेम में एवं तत्पश्चात विवाह में परिवर्तित हो जाता है। घर एवं बाहर के वातावरण में अत्यधिक अंतर होता है। घर में धर्म, रीति-रिवाज, बिरादरी, रिश्ते एवं मर्यादा महत्वपूर्ण होती है। आधुनिक समय में ऐसे विवाहों को सामाजिक स्वीकृति तो मिल जाती है किंतु कालांतर में जब कभी भी धार्मिक झुकावों के कारण टकराहट पैदा होती है तो भावनायें आहत होती हैं और उनके बीच एक अमूर्त दीवार खड़ी होने लगती है। नासिराजी का इस सम्बन्ध में स्पष्ट मत है कि जब आप किसी अन्य धर्म वाले से विवाह तय करते हैं तो इस बात पर ध्यान देना बेहद जरूरी है कि आपका जीवन साथी जिस धर्म, परिवेश, भाषा, खानपान का आदी रहा है, उसको उसके सुख से अलग करने का आपका कोई अधिकार मानवीय दृष्टि से नहीं बनता है। यदि वह खुलापन दोनों के नजरिये में नहीं रहा है कि वे एक दूसरे के धर्म का सम्मान कर सके, तो फिर इस शादी का कोई अर्थ नहीं रह जाता।''[9] (औरत के लिए औरत- नासिरा शर्मा, पृष्ठ 16) नासिराजी स्त्री के अस्तित्व एवं स्वाभिमान की पूर्णत: रक्षा करती है। वे उसके अधिकारों को लड़कर लेने की बात भी करती हैं परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि स्त्रियों को विद्रोहिणी बन जाना है। उनकी शाल्मली पति से असंतुष्ट होकर भी घर नहीं तोड़ती है अपितु पति में बदलाव की प्रतीक्षा करती है। वह कहती है - ''मेरा विश्वास न घर तोड़ने पर है न आत्महत्या पर।[10]

स्त्री की अस्मिता के सम्बन्ध में नासिराजी के चिंतन के ये प्रमुख बिंदु स्पष्ट करते हैं कि उनका चितन नारी को ध्वंसात्मक नहीं अपितु सृजनात्मक बनाने पर जोर देता है। वे मर्द का विरोध नहीं करती पर ये अवश्य चाहती है कि समय आ गया है कि उसे भी स्वयं को बदल ही लेना चाहिए। पुरूष बदलेगा तभी समाज बदलेगा। समाज, व्यवस्था या पुरूष से भी पहले स्त्री की लडाई स्वयं से है। सबसे पहले उसे खुद को अबला मानना छोड़ना होगा। चूंकि आज की दुनिया में कोई भी मामला व्यक्तिगत नहीं रहा है, सब राजनीतिक है। अत: स्त्री पुरूष का मुद्दा भी राजनीतिक स्तर पर लाया जाना चाहिए।

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि नारी विकास एवं प्रगति के रास्ते पर बढ़ रही है। वह अपनी अस्मिता के लिये जागरूक है। लड़कर भी अपना हक ले रही है। अस्सी के दशक के बाद तो उसका विद्रोही रूप सामने आ गया है। आधुनिकता एवं परम्परा के द्वंद्व से उबरकर अपनी अस्मिता के लिए खुलकर सामने आई है। साहस बटोरकर अपनी आवाज को पैनापन, बौद्धिकता एवं आत्मसम्मान का रंग देकर वह आगे बढ़ रही है, पर अस्मिता की टकराहट अभी भी चल रही है। आज भी दहेज के लिए हत्या हो जाती है, गर्भ परीक्षण करवा कर लड़की को मार दिया जाता है या जन्म लेने के पश्चात जंगल में चट्टानों पर छोड़ दिया जाता है। यह सब देखकर भी वह अपनी अस्मिता की लडाई बन्द नहीं कर सकती।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, महादेवी, शृंखला की कड़ियां, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 1942, पृ. 35
2. खान, डॉ शमा, महिला लेखन में चेतना के बदलते स्वर, राज पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2007
3. शर्मा, नासिरा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, आवरण पृष्ठ

4. जैन, इंदु, नारी मुक्ति आंदोलन की एक लेखिका की दृष्टि में, सा.हि.ब., 11 मार्च 1973, पृ. 18
5. शर्मा, नासिरा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 128
6. शर्मा, नासिरा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 62
7. शर्मा, नासिरा, खुदा की वापसी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2001, पृ. 18
8. अंसल, कुसुम, अपनी- अपनी यात्रा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1987, पृ. 38
9. शर्मा, नासिरा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 16
10. शर्मा, नासिरा, शाल्मली, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ. 197